
RANJAN
Revised
Price
Rs. 125/-
PUBLICATIONS



रुद्रयामल तन्त्र

तन्त्र–शास्त्र का अद्भुत विश्वकोश

(सर्वतोभद्र साधनाओं का सिद्धिप्रद संग्रह)

लेखक एवं सम्पादक :

डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी

एम. ए. (संस्कृत एवं हिन्दी), पी–एच. डी., डी. लिट.

(मन्त्रशक्ति, तंत्रशक्ति, यन्त्रशक्ति, दत्तात्रेयतंत्र, सौन्दर्य लहरी, महामृत्युंजय साधना एवं सिद्धि तथा बटुक भैरव साधना आदि ग्रन्थों के लेखक)



रंजन पब्लिकेशन्स

16, अन्सारी रोड, दरियागंज

नई दिल्ली–110002

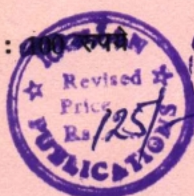
प्रकाशक :

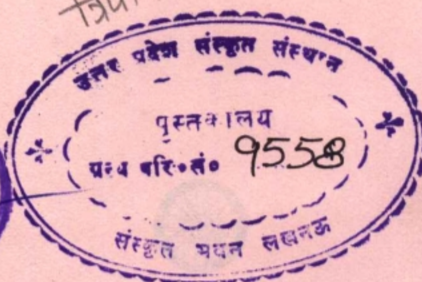
रंजन पब्लिकेशन्स

16, अन्सारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली–110002
फोन : *327 88 35*

संस्करण : 1994

मूल्य : 100 रुपये





लेजर टाईप सैटिंग :
वर्द्धमान एन्टरप्राइजिज, दिल्ली-32

मुद्रकः
मित्तल प्रिण्टर्स,दिल्ली–32

विषयानुक्रमणिका

परिचय–विभाग

प्रयोग–विभाग

ग्रन्थ–परिचय एवं लेखकीय निवेदन

भारतीय तन्त्र–साहित्य की परिधि और उसकी वैचारिक गहराई विशाल समुद्र के समान है। इसमें लौकिक और पारलौकिक समुन्नति के वे सभी साधन उपलब्ध हैं, जिनसे सामान्य बुद्धि वाले तथा गहन शास्त्रों के ज्ञाता दोनों ही अपनी–अपनी रुचि के अनुसार इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति के मार्ग–निर्देशन प्राप्त कर सकते हैं। आस्तिक–जगत् में व्याप्त आस्था की मूल धरोहर तन्त्रशास्त्र ही हैं। धर्म–कर्म की शिक्षा देने वाले अन्य सभी शास्त्र तन्त्रों के प्रति श्रद्धा रखते और तदनुसार आचरण एवं साधना पर भी पूरा बल देते रहे हैं। लोक–कल्याण का सुगम मार्ग तन्त्रशास्त्र ही बताते आये हैं, यह किसी से छिपा नहीं है।

तन्त्रशास्त्र–1. **आगम** 2. **यामल**, और 3. **तन्त्र** के रूप में विभक्त है अतः वह ब्रह्मा, विष्णु और शिव की 'त्रिमूर्ति' माना जाता है। इनमें 'यामल' ग्रन्थों का महत्त्व इसलिए भी अधिक है कि ये **'शिव और शक्ति की एकता के प्रतीक'** हैं। यामल को सर्वशास्त्रों का बोधक भी कहा गया है। ऐसे अनेक यामल–ग्रन्थों में मूर्धन्य ग्रन्थराज **'रुद्रयामल'** है। यह तन्त्र और इससे सम्बद्ध सभी शास्त्रीय प्रक्रियाओं का दर्शक होने से **'तान्त्रिक–विश्वकोश'** ही है

प्रस्तुत **'रुद्रयामल–तन्त्र : सर्वोपयोगी सार–संग्रह'** ग्रन्थ रुद्रयामल के नाम से प्राप्त उन सभी सुलभ और दुर्लभ ग्रन्थों और पाण्डुलिपियों के गहन अध्ययन से निर्मित है, जिनके नाम तो विद्वानों के मुख से सुनने में आते हैं, किन्तु वास्तविकता का ज्ञान नहीं हो पाता था।

इसकी रचना–पद्धति में 'परिचय और प्रयोग' को लक्ष्य में रखकर सरस एँवँ सरल भाषा में विषय को समझााने का पूरा प्रयास किया गया है रुद्रयामल के महत्त्वपूर्ण प्रयोगों को अन्य मन्त्रशास्त्रों की सहायता से विधि सहित प्रस्तुत करते हुए साधना के मार्ग को व्यवस्थित रूप दिया है । यह भी ध्यान में रखा गया है कि अनावश्यक विस्तार न हो, इस दृष्टि से हमने हमारे द्वारा पूर्व–रचित 'मन्त्रशक्ति, यन्त्रशक्ति (दो भाग) तन्त्रशक्ति, महामृअत्युंजय साधना 'बटुक भैरव साधना' आदि में जो लिख दिया है उसका यहां सूचन मात्र किया है और यहां श्री गुरु उपासना से आरम्भ करके सर्वसाधारण के लिए नित्य, नैमित्तिक और काम्य–कर्मो को लक्ष्य में रखकर कर्त्तव्य–कर्मो का संकलन इसकी अपनी विशेषता तो है ही, साथ ही इसमें ऐसे अनेक नवीन प्रयोगों को भी स्पष्ट रुप से समाविष्ट किया गया है, जिनका सूत्रात्मक संकेत तो रुद्रयामल में था, किन्तु पूरा विधान नहीं प्राप्त होता था ।

इसी प्रकार पुनरुक्ति से बचने के लिए यहां बहुत प्रचलित प्रयोगों को नहीं लिखा गया है, जबकि दुर्लभ एवं गुरु परम्परा से प्राप्त साधना–विधानों को अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त करके लिखा गया है । तन्त्र का एक अर्थ 'क्रिया विस्तार' भी है और इसी दृष्टि से रुद्रयामल में मन्त्र–जप के 'पूर्वांग' और 'उत्तरांग' के रूप में ऐसी अनेक मार्मिक बातें बतलाई हैं जिनके बिना साधना की सर्वांग पूर्णता नहीं मानी जाती है । अतः यहां 'ज्योतिषशास्त्रीय मूहूर्तादि ज्ञान, धर्म–शास्त्रीय व्रत–पर्व– कालादि ज्ञान, योगशास्त्रीय बाह्य और आभ्यन्तर योगज्ञान, चिकित्सा शास्त्रीय औषध–विज्ञान, रसायन विज्ञान एवं उदककल्प' जैसे विषयों पर भी सप्रमाण उपयोगी विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम, आवरणार्चन, तर्पण, हवन जैसे अनेक विषयों का ऐसा अनूठा संकलन तन्त्र–ग्रन्थों की श्रृंखला में यहां सर्वप्रथम हुआ है, यह कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है ।

लेखक की दीर्घकालीन तपस्या, शास्त्रीय परम्परा–ज्ञान तथा गवेषणा दृष्टि के साथ ही गुरु कृपा से पर्याप्त मंथन करके प्राप्त किया गया यह ग्रन्थ 'चिन्तामणि' के समान पाठकों की सभी जिज्ञासाओं की पूर्ति में अवश्य सहायक होगा, ऐसा हमें पूरा विश्वास है ।

समग्र ग्रन्थ की रचना में यह ध्यान रखा गया है कि कोई अशास्त्रीय बात इसमें नहीं आने पाये। सर्वांश में शुद्ध एवं मंगलकारी मार्ग का अनुसरण करते हुए इहलौकिक तथा पारलौकिक पथ को प्रशस्त करने के इच्छुक साधकगण इससे लाभ उठायेंगे, किन्तु यह अवश्य ध्यान रहे कि किसी योग्य विद्वान् का मार्गदर्शन अवश्य प्राप्त कर लें, जिससे कोई त्रुटि न हो।

प्रस्तुत ग्रन्थ के मुद्रण में यत्र–तत्र कुछ अशुद्धियाँ सम्भव हैं, जो कि मानव सुलभ हैं। अतः पाठक उन्हें सुधार कर पाठादि करें तथा इसमें दिये गये प्रयोगों के बारे में कोई विशेष ज्ञातव्य रह गया हो, तो उसे लेखक को बतलाने का कष्ट करें, जिसे भविष्य में लोकोपकारार्थ संयोजित कर प्रकाशित कर लिया जाएगा।

इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के लेखन की प्रेरणा मुझे प्रकाशक द्वारा ही प्राप्त हुई तथा उनके सतत आग्रह से ही यह लिखा भी गया। उन्होंने रुचिपूर्वक सुन्दर–सुसज्जित रूप से इसे प्रकाशित भी किया। वस्तुत : आज की इस महंगाई में आर्यविद्या के प्रति अनुत्साही वातावरण में सत्साहित्य प्रकाशन की रुचि का ही यह फल है कि यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका। एतदर्थ मैं प्रकाशक के प्रति आभार व्यक्त करता हूं तथा सभी के मंगल की कामना करता हूं।

श्री कृष्णजन्माष्टमी — **विद्वद्वशंवद**

13/8/1990 — **डा० रुद्रदेव त्रिपाठी**

एक दृष्टि में

□ तन्त्र साहित्य का विश्वकोश ।

□ साधना व सिद्धि पर अभूतपूर्व सामग्री ।

□ प्राचीन तन्त्र साहित्य का सारसंक्षेप ।

□ त्रिकूटा रहस्य व दस महाविद्याएं : सिद्धि के सोपान ।

□ गायत्री साधना के आश्चर्यपूर्ण विधान ।

□ अजपा जप, वनस्पति तन्त्र व रस तन्त्र के प्रयोग ।

□ गणपति–भैरव–शिव–यक्षिणी की विविध साधना ।

□ दुर्गा सप्तशती के तान्त्रिक रहस्य ।

□ प्राचीन ग्रन्थों पर आधृत 'रुद्रयामल' ।

□ धर्मार्थ काम की संसिद्धि ।

□ दूर्वा, विजया (भांग), बिल्व पत्र के तान्त्रिक प्रयोग ।

□ निर्गुण्डी व काली तुलसी के विचित्र प्रयोग ।

□ सर्वतोभद्र साधना का सिद्धिप्रद संग्रह ।

□ अन्य भी बहुत कुछ, तन्त्र मर्मज्ञ की लेखनी से ।

□ शोधपूर्ण रचना व प्रस्तुति ।

□ विपत्ति निवारण : सम्पत्ति की प्राप्ति : मनोरथ सिद्धि ।

(तन्त्र का मर्म व साधनाकर्म : दीर्घकालीन श्रम)

परिचय-विभाग

'रुद्रयामल'-समुद्र-निःसृतं परिचयामृतम्

रुद्रयामल-मंगलानि

ओङ्कारः सकलागम-प्रसृमर-ब्रह्मोपमः सर्वदा,
स्वच्छन्दः श्रुति-सार-सम्भृत-वर-स्वारस्य-सन्तर्पितः ।
ओमादि-त्रितयेन यः स्वरयुतः सव्यञ्जनो यामलः,
स्वान्तर्नाद-निनादितः स दिशतु श्रेयः सदा बिन्दुयुक् ॥१॥
बिन्दोः पश्चात् त्रिकोणं यदतिरुचिकरं राजते यन्त्रराजे,
तस्मिन् दिव्यं गुरूणां त्रितयमपि लसत्पञ्जसैवौघरूपम् ।
यस्य प्राप्य प्रसादं तरति भुवि जनः सागरं संसृतेः स्राग्,
दिव्याद्योघत्रयं तत्सुचरणसरणिः संनिधत्तां हृदब्जे ॥२॥
हृद्यानां सर्वविद्यानां, विद्योतन-पटीयसी ।
सच्चिदानन्द कलिका, चिदुद्याने विकासताम् ॥३॥
तन्त्राणांसकलाऽपि वाङ्मयसरिद् यस्याननान्निःसृता,
भूलोकं पुरुषार्थ-साधनविधौ सम्प्रेरयन्ती सुखम् ।
सा मन्त्रोर्जित-यन्त्र-तन्त्र-निचिता योगक्रियाऽऽयोजिता,
नानाऽर्चा-विधि-राजिताऽमृतमयी विश्वं सदा सिञ्चति ॥४॥
योऽवातीतरदत्र यामलमयं तन्त्रं स्वतन्त्रं दिशन्,
विश्वेषां निगमागमोदितशुभज्ञानक्रमाणां निधिम् ।
लोकानां हितसाधनाय भुवने प्रासारयत् सर्वतो,
भूयाद् भूतिविभूषणः सः भगवान् रुद्रः सदा श्रेयसे ॥५॥
अनेक-तत्त्व-सङ्कुलं, विभिन्न-मार्ग-मञ्जुलं,
शिवा-शिवोक्तिजं फलं, पवित्रयच्च भूतलम् ।
उपासना-विधेर्बलं प्रवर्धितुं सुनिश्चलं,
मलं हरद् धियामलं चकास्तु 'रुद्रयामलम्' ॥६॥
यद् भैरवी-भैरव-भाव-भूषितं, तन्त्रांगणे कल्पतरूपमं स्थितम् ।
पुष्पैः फलैः सर्वसमोहितप्रदं, राराजतां तद् भुवि 'रुद्रयामलम्' ॥७॥

—रुद्रदेव त्रिपाठिनः

॥ ॐ नमस्तस्यै चित्कलामय्यै ॥

निगमागम-विज्ञान-विश्वकोश-विभावितम् ।
श्रयामि सुश्रियेऽश्रान्तं रुद्रोऽहं रुद्रयामलम् ॥

दयामय दिव्य दम्पती और उनकी अपूर्व देन

अपार करुणामूर्ति जगज्जननी भगवती शिवा और शिव ही समस्त सृष्टि के स्रष्टा हैं। इनकी कृपा से ब्रह्मादि देव आविर्भूत होकर आदेशानुसार सृष्टि, स्थिति और संहृति में प्रवृत्त होते हैं। अखिल ब्रह्माण्डनायिका भगवती एवं अखिल ब्रह्माण्डनायक भगवान् एकरूप होते हुए भी लोकानुग्रह के लिए द्विधा रूप ग्रहण करते हैं और दिव्य-दम्पती के रूप में शब्दार्थमयी सृष्टि को भी विकसित करते हैं। ये ही ब्रह्मस्वरूप हैं, अतः निगम और आगम की सृष्टि भी इनके द्वारा ही हुई है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव में कोई भेद नहीं है। लोक बोध के लिए इनका पृथक्-पृथक् निरूपण किया गया है, किन्तु तत्त्वतः इनकी पृथक्ता नहीं है। वैसे यह भी स्पष्ट है कि इनके मूल में शक्ति ही आदि तत्त्व है, जिसके द्वारा स्वेच्छा-विलास के लिए देव-सृष्टि हुई है।

तन्त्र शास्त्रों के अनुसार ये आदि दम्पती लोक कल्याण की उदार भावना से परस्पर संवाद रूप में, प्रश्नोत्तर रूप में कर्त्तव्य कर्मों का चिन्तन प्रस्तुत करते रहते हैं। इनकी अनन्तरूपता के अनुसार ही अनन्त शास्त्रों का उद्भव होता रहा है। यह आवश्यक भी है, क्योंकि माता-पिता यदि बालकों की शिक्षा-व्यवस्था न करें तो और कौन करे? जब स्वयं ब्रह्मादि देव भी प्रादुर्भूत होने के पश्चात् अबोध की भांति 'कोऽहं कुतः आयातः, का मे जननी को मे तातः ?' इत्यादि नहीं जान पाए तो उन्हें भी इन्हीं ने कृपापूर्वक ज्ञान दिया था। निगम और आगमों के सम्बन्ध में 'सर्वोल्लास-तन्त्र' का स्पष्ट कथन है कि—

निर्गतं शिववक्त्रेभ्यो गतश्च गिरिजाननम् ।
मतः श्रीवासुदेवस्य तस्मान्निगम उच्यते ॥

तथा—**'आगतः शिववक्त्रेभ्यो'** इत्यादि। इसके अनुसार दोनों ही शास्त्र शिव और गिरिजा के समन्वित विचारों की परिणति हैं और भगवान् विष्णु इनके सम्मति-सहमति दाता हैं। आगमों का विस्तार पारम्परिक ज्ञान-प्रदान से होता रहा है। सर्वप्रथम वासुदेव ने निगम-आगम के ज्ञान को सुना। उन्होंने गणेश को सुनाया और गणेश ने नन्दीश्वर को। इस प्रकार क्रमशः निगमागम ज्ञान भूतल पर व्याप्त हो गया। आर्य शास्त्रों की परम्परा में निगम शब्द का तात्पर्य 'वेद' माना गया है और आगम शब्द समस्त तन्त्र शास्त्रीय ग्रन्थों का परिचयात्मक माना जाता है।

यहां यह भी नहीं भूलना चाहिए कि शिव-शक्ति द्वारा केवल आगमों का प्रकाशन नहीं किया गया, अपितु आगमों के अतिरिक्त यामल, डामर तथा तन्त्र के नाम से व्याप्त सभी साहित्य की सर्जना भी इन्हीं के द्वारा हुई है। तन्त्र-साहित्य में आम्नाय, सूत्र, संहिता, उड्डीश अर्णव, कल्प, मत, अष्टक, चूडामणि, चिन्तामणि आदि जो विभिन्न प्रकार का साहित्य उपलब्ध होता है, वह सभी इस दिव्य-दम्पती की दया का ही परिणाम है। अनन्त तन्त्र शास्त्र उनकी अपूर्व देन है।

माता की दया चराचर में प्रसिद्ध है। 'कुपुत्रो जायेत् क्वचिदपि कुमाता न भवति' यह उक्ति सर्वांश में सत्य है। भगवान् शिव 'भोले बाबा' हैं। उनकी कृपा का क्या वर्णन किया जाए? वे तो मुक्त रूप से भक्तों को कृपा-दान करते ही रहते हैं। इसी साहजिक स्वाभाविक प्रकृति के कारण तन्त्रों के माध्यम से लोक-कल्याणकारी अपूर्व ज्ञान की सृष्टि करने वाले दिव्य-दम्पती को हमारे कोटि-कोटि प्रणाम हैं—

याभ्यां व्याप्तं जगत्यामखिलजनिजुषां मङ्गलार्थं महीयः,
शास्त्रं तन्त्राख्यामयं विविधविधियुतं भोग-मोक्षैकमूलम्।
दिव्याभ्यां दम्पतीभ्यां परमकरुणयाऽऽपूरिताभ्याञ्च ताभ्यां,
साष्टाङ्गाः सन्तु भक्त्या त्रिकरणरसिताः कोटिशो नः प्रणामाः॥

—रुद्रः

आगम और आगमिक साहित्य

तन्त्र शास्त्र मानव जीवन के यथार्थों से अनुप्राणित हैं। ये शास्त्र कालान्तर की असंख्य दर्शन-पद्धतियों के स्रोत हैं। दर्शन-जगत् के समस्त विषय तन्त्र शास्त्र में अन्तभूॅत हैं। तन्त्र शास्त्र गम्भीर, स्पष्ट तथा उच्च चिन्तन के भण्डार हैं। सम्प्रति 'तन्त्रवाद' का जो अर्थ प्रायः शक्ति और काम (वासना) के अर्थ में लिया जाता है वह नितान्त भ्रामक है। इस भ्रामक प्रचार का निवारण करने के लिए समग्र तन्त्र शास्त्रीय वाङ्मय का अनेक रूपों में अनेकशः अनुशीलन परमावश्यक है। तन्त्र शब्द की पवित्रता एवं व्यापकता से परिचित होने के लिए उसके गम्भीरार्थ का चिन्तन भी किया जाना चाहिए। क्योंकि तन्त्र शब्द विस्तार जैसे सर्व-प्रसिद्ध अर्थ के अतिरिक्त बीजगणित के सूत्र के समान अतिसूक्ष्म सूत्रार्थ को भी व्यक्त करता है। तभी तो इसमें मन्त्रों के अनेक वर्णों की समष्टि निहित है। मानव-जीवन के मनोभाव तथा आत्म-कल्याण के समस्त क्षेत्र से सम्बद्ध व्यावहारिक प्रयोगों के सौम्य साधन इसमें विद्यमान हैं।

मनोवैज्ञानिक स्वस्थता, मानस-प्रभुत्व, व्यवहार, विनम्रता, शुद्धता, शारीरिक आकर्षण तथा त्रिविध तापों की निवृत्तिपूर्वक मोक्ष-मार्ग का प्रकाशन तन्त्रों का प्रमुख लक्ष्य रहा है, किन्तु गुप्त रहस्यों को गुप्त सांकेतिक भाषा में कहने की इसकी परम्परा है। इसीलिए उलट-बांसियो की तरह तन्त्र-शास्त्रों में भी यत्र-तत्र वैसे कथन हुए हैं, जिनका व्यवस्थित तात्पर्य परम्परा से ही ज्ञातव्य है। महर्षि अरविन्द ने यह ठीक ही कहा है कि—'तन्त्र व्यक्तित्व के विकास में निहित विभिन्न प्रकार के वैशिष्ट्य तथा पद्धतियों का एकीभाव है।'[1]

इस प्रकार तन्त्रशास्त्र के समन्वित-साहित्य में प्रथम स्थान आगम को प्राप्त है। यह भी कहा जाता है कि—'तन्त्रशास्त्रं प्रधानं त्रिधा-विभक्तम्-आगम-यामल तन्त्रभेदतः।' अतः आगम के सम्बन्ध में कुछ विचार यहां प्रस्तुत हैं—

---

१. दि अरविन्दो ऑन तन्त्र, पृ० १।

आगम—'शिव के मुख से आगत, गिरिजा के मुख में गत और विष्णु के द्वारा सम्मत' होने में सर्वमान्य हुए हैं। आगमों की मान्यता सम्पूर्ण तान्त्रिक वाङ्मय में आदि और आर्ष-ग्रन्थों के रूप में व्याप्त है। वैदिक-साहित्य के समान ही आगमों की उत्पत्ति भी दैवी मानी गई है। यदि वेद ब्रह्मा के उच्छ्वास हैं तो आगम भगवान् शिव के उच्छ्वास से प्रादुर्भूत हैं—

'आज्ञावस्तु समन्ताच्च गम्यत इत्यागमो मतः'

इस तान्त्रिक परिभाषा के अनुसार 'सभी ओर से कर्तव्य कर्मों की आज्ञा रूप वस्तु की प्राप्ति होने से से 'आगम' कहलाते हैं।' आगमिक साहित्य यद्यपि बहुत कम प्राप्त होता है, तथापि उसके बारे में अनेक विद्वानों ने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों से जो कुछ स्वरूप प्रकाशित किया है, उसका सार इस प्रकार है—

आगमिक साहित्य—शैव और शाक्त आगम शिव के पंचमुखों से निःसृत माने जाते हैं। ईशान, तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव और अघोर—शिव के ये पांच मुख हैं। इन मुखों से क्रमशः सिद्ध, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया—ये पांच शक्तियां प्रकट होती हैं। सदाशिव के पंचमुख के संघटन से भेद, भेदाभेद तथा अभेद दशाओं का आविर्भाव होता है। महेश्वर की भेद प्रधान १०, भेदाभेद प्रधान १८ और अभेद प्रधान ६४ अवस्थाएं मानी गई हैं। ये ही अवस्थाएं आगमिक साहित्य को जन्म देती हैं।

परम-शिव ही भेद दशा में शिव, भेदाभेद दशा में रुद्र तथा अभेद दशा में 'भैरव' संज्ञा को प्राप्त करते हैं। इनसे सम्बद्ध आगमों को क्रमशः **'शैवागम'**, **'रुद्रागम'** और **'भैरवागम'** कहा जाता है।

शैवागम—शैवागम संख्या में १० हैं। कहा जाता है कि जगत् की सृष्टि के बाद परमेश्वर ने सर्वप्रथम १० शिवों की सृष्टि करके उनमें से प्रत्येक को अपने अविभक्त महाज्ञान का एक-एक भाग दिया। इन मूल शिवागमों की संख्या तथा नाम इस प्रकार हैं—

१. **कामिकागम**—दस शिवों में सर्वप्रथम नाम है—प्रणव शिव। परमेश्वर से उन्हें प्राप्त आगम 'कामिक' है। इस आगम को प्रणव शिव से त्रिकल ने प्राप्त किया और त्रिकल से हर ने। 'किरणागम' तथा 'कामिकागम' में ग्रन्थ का नाम 'कामिक' ही निर्दिष्ट है, किन्तु जयरथ

द्वारा उद्धृत 'श्रीकण्ठसंहिता' के अनुसार इस आगम का नाम 'कामज' है।[1]

२. **योगज आगम**—इस आगम में श्लोकों की संख्या एक लाख बताई जाती है। इसके पांच भेद हैं। परमेश्वर से सर्वप्रथम इस आगम को 'सुधा' नामक शिव ने प्राप्त किया। सुधा से भस्म और भस्म से प्रभु के माध्यम से इस आगम की परम्परा आगे बढ़ी।

३. **चिन्त्य आगम**—इस आगम में भी श्लोकों की संख्या एक लाख बताई जाती है। सर्वप्रथम इस ज्ञान को परमेश्वर से 'दीप्त' ने ग्रहण किया। दीप्त से गोपति ने और गोपति से अम्बिका ने इस आगमिक ज्ञान को प्राप्त किया और आगे बढ़ाया।

४. **कारण आगम**—इस आगम में श्लोकों की संख्या एक करोड़ बताई जाती है। इस आगम के सात भेद हैं। इस आगम-ज्ञान को सर्वप्रथम 'कारण' ने प्राप्त किया। कारण से शर्व ने और शर्व से प्रजापति ने इस ज्ञान को प्राप्त किया।

५. **अजित आगम**—इस आगम में श्लोकों की संख्या एक लाख बताई जाती है। इस आगम के चार भेद हैं। यह आगमिक परम्परा सुशिव, उमेश तथा अच्युत से क्रमशः आगे बढ़ती गई।

६. **सुदीप्तक आगम**—इसमें भी श्लोकों की संख्या एक लाख बताई जाती है। इस आगम के नौ भेद हैं। इस आगमिक ज्ञान को सर्वप्रथम 'ईश' ने प्राप्त किया। ईश से त्रिमूर्ति ने और त्रिमूर्ति से हुताशन ने इस ज्ञान को प्राप्त किया।

७. **सूक्ष्म आगम**—इस आगम का भी परिमाण एक लाख बताया जाता है। यह आगमिक परम्परा क्रमशः सूक्ष्म, भव, प्रभंजन आदि के माध्यम से विकसित हुई।

८. **सहस्र आगम**—इस आगम के दस भेद बताए जाते हैं। इस ज्ञान को सर्वप्रथम 'काल' ने प्राप्त किया। काल से भीम ने और भीम से खग ने प्राप्त किया।

९. **सुप्रभेद आगम**—इस आगम में श्लोकों की संख्या तीन करोड़ बताई जाती है। इसका कोई भेद नहीं मिलता। यह आगम धनेश, विश्वेश तथा शशि से विकसित हुआ।

१. तन्त्र और आगम शास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ० ६० पर उद्धृत।

१०. अंशुमान आगम—इस आगम के बारह भेद बताये जाते हैं। इस आगम ज्ञान को सर्वप्रथम अंशु ने प्राप्त किया। इसके बाद अंशु से अग्र ने तथा अग्र से रवि ने इस ज्ञान को प्राप्त किया।

रुद्रागम—

सदाशिव की भेदाभेद दशाओं पर आधृत रुद्रागमों की संख्या १८ बताई जाती है। यहां पर रुद्रागमों के नाम तथा उनके आविर्भावक और प्रथम श्रोता का उल्लेख किया जा रहा है—

१. विजय—अनादि रुद्र—परमेश्वर।
२. निःश्वास—दशार्ण—शैलजा।
३. परमेश्वर—रूप—उशना।
४. प्रोद्गीत—शूली—कवच।
५. मुखबिम्ब—प्रशान्त—दधीचि।
६. सिद्ध—विन्दु—चण्डेश्वर।
७. सन्तान—शिव लिंग—हंसवाहन।
८. नारसिंह—सौम्य—नरसिंह।
९. चन्द्रांशु—अनन्त—बृहस्पति।
१०. वीरभद्र—सर्वात्मा—वीरभद्र महागण।
११. स्वायम्भुव—निधन—पद्मज।
१२. विरक्त—तेज—बृहस्पति।
१३. कौरव्य—ब्रह्मपोष—नन्दिकेश्वर।
१४. माकुट या मुकुट—शिवाख्य या ईशान—महादेव ध्वजाश्रय।
१५. किरण—देवपिता—रुद्रभैरव।
१६. गणित—आलय—हुताशन।
१७. आग्नेय—व्योम—शिव।
१८. वातुल (कुछ ग्रन्थों में १७ रुद्रागमों की संख्या मिलती है)।

'श्रीकण्ठी संहिता' में विरक्त, कौरव्य, माकुट तथा आग्नेय के स्थान पर रौरव, विमल, विस्तर तथा सौरभेय नाम मिलते हैं।

रुद्रभेद चूंकि द्विविध है, इसलिए सम्पूर्ण रुद्रज्ञान ३६ आगमों में विभक्त मालूम होता है। दस शिवागमों को लेकर उनमें पुनः द्विविध रुद्रभेद का योग करने पर शिव की ३० भेद दशाएं हो जाती हैं और इस

प्रकार सम्पूर्ण सिद्धान्त-ज्ञान की संख्या ६६ मानी जा सकती है।[1]

निःश्वास संहिता में रुद्रागमों की केवल १७ संख्या दी गई है—निःश्वास, स्वायम्भुव, वातुल, वीरभद्र, रौरव, मुकुट, विरस, चन्द्रहास, ज्ञान, मुखबिम्ब, प्रोद्गीत, ललित, सिद्ध, सन्तान, सर्वोद्गीत, किरण और परमेश्वर। इसी प्रकार दस शिव आगमों के नाम इस प्रकार दिए गए हैं—कामिक, योगज, दिव्य, कारण, अजित, दीप्त, सूक्ष्म, साहस्र, अंशुमान तथा सुप्रभेद। उक्त कुल २८ आगमों का आविर्भाव शिव के पांच मुखों से बताया जाता है—

१. सद्योजात—कामिक, योगज, चिन्त्य, कारण, अजित
२. वामदेव—दीप्त, सूक्ष्म, सहस्र, अंशुमत, सुप्रभेद।
३. अघोर—विजय, निःश्वास, स्वायम्भुव, आग्नेय, वीर
४. ईशान—रौरव, मुकुट, विमल, चन्द्रकान्त, बिम्ब
५. तत्पुरुष—प्रोद्गीत, ललित, सिद्ध, सन्तान, सर्वोक्त, परमेश्वर, किरण और वातुल।

इन १८ रुद्रागमों के १९८ विभागों की चर्चा भी कहीं-कहीं मिलती है।[2]

भैरवागम—

परम शिव की अभेद दशा से ६४ प्रकार के भैरवागमों का आविर्भाव माना जाता है। शिव के दक्षिणी वक्त्र का नाम 'योगिनी' है, जो शिव का अद्वय रूप है। अन्यान्य वक्त्रों में प्रत्येक के उद्भवोन्मुख, उद्भूत, तिरोधानोन्मुख तथा तिरोहित आदि ४-४ रूप हैं। इस प्रकार इन चार वक्त्रों के कुल १६ रूप हैं। चारों वक्त्रों के अन्तर्लीन होकर परस्पर मिलने से ६४ प्रकार की अद्वय भैरव अवस्थाएं प्रकट होती हैं। जब योगिनी वक्त्र में एक ही समय में अन्य चार मुखों का लय होता है तब भैरवागमों का आविर्भाव होता है।

कौल मार्ग शिव की अद्वय दशा से सम्बद्ध है। यहां शिव और शक्ति का ऐक्य स्वीकार किया जाता है। ६४ भैरवागम कौल मार्ग से सम्बद्ध हैं। वे इस प्रकार हैं—

---

१. तन्त्र और आगम शास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ० ६१।
२. वही, पृ० ६४।

१. **भैरवाष्टक**—स्वच्छ, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, असितांग, महोच्छूष्म, कंकालीश (आठवें का नाम नहीं मिलता)।

२. **यामलाष्टक**—ब्रह्म, विष्णु, शक्ति, रुद्र, आथर्वण, रुरु, वेताल, स्वच्छन्द।

३. **मताख्याष्टक**—रक्ताख्य, लम्पटाख्य, लक्ष्मी, मत, चालिका, पिंगल, उत्फुल्लक, विश्वाद्य।

४. **मंगलाष्टक**—भैरवी, पिचुतन्त्र, समुद्भव, ब्राह्मीकला, विजया, चन्द्राख्या, मंगला, सर्वमंगला।

५. **चक्राष्टक**—मन्त्र, वर्ण, शक्ति, कला, बिन्दु, नाट गुह्य, ख चक्र।

६. **शिखाष्टक**—भैरवी, वीणा, वीणामणि, सम्मोह, डामर, आथर्वक, कबन्ध, शिरश्छेद।

७. **बहुरूपाष्टक**—अन्धक, रुरुभेद, अज, मल, वर्णकण्ठ, विडंग, ज्वालिन्, मातृरोदन।

८. **वागीशाष्टक**—भैरवी, चित्रिका, हंसा, कादम्बिका, हृल्लेखा, चन्द्रलेखा, विद्युल्लेखा, विद्युन्मान।

ये ६४ भैरवागम तथा शुभागम की ५ संहिताएं शाक्त आगमों के अन्तर्गत स्वीकार की जाती हैं। सम्मोहन तन्त्र (अध्याय ६) के अनुसार तो शाक्त तन्त्रों के अन्तर्गत ६४ तन्त्र, ३२७ उपतन्त्र, यामल, डामर तथा संहिताओं को भी स्वीकार किया जाता है।

वैखानस तथा पांचरात्र आगम

यह आगम-परम्परा यहीं समाप्त नहीं हो जाती है, अपितु शिव-शक्ति के अतिरिक्त वैष्णव, सौर और गाणपत्य आगम भी बहुधा प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओं तथा जैन-बौद्ध सम्प्रदायों में भी आगम नाम को स्वीकार करते हुए ग्रन्थों का संकलन हुआ है। इनमें वैष्णव-आगमों के दो भेद प्रमुख माने गये हैं—१. वैखानस तथा २. पांचरात्र। ये दोनों ही अपने में सर्वथा पूर्ण आगम हैं। इनका अपना विपुल साहित्य एवं सुदृढ़ प्राचीन परम्परा भी है। यह साहित्य क्रिया और दर्शन प्रधान है तथा विशेष रूप से वैष्णवों के दैनन्दिन जीवन के

साथ प्रवर्तमान है। वैखानस आगम के ६० ग्रन्थों का पता चलता है किन्तु अभी १७ ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। वैखानस ऋषि के ९ शिष्य—१. काश्यप, २. अत्रि, ३. मरीचि, ४. वशिष्ठ, ५. अंगिरा, ६. भृगु, ७. पुलस्त्य, ८. पुलह और ९. क्रतु ही इस वैखानस आगम के प्रवर्तक रहे हैं। ग्रन्थों में 'कल्प, पटल, संहिता और तन्त्र' नामों का प्रयोग हुआ है। इन ग्रन्थों की चार सूचियां प्राप्त होती हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि इनमें कई लाख पद्यों में विषम-वस्तु का विस्तृत वर्णन हुआ है।

वैष्णवों की 'पंचकाल-प्रक्रिया' के आधार पर प्रवर्तित पांचरात्र-आगम 'शतपथ-ब्राह्मण' में निर्दिष्ट पांच रात्रियों में सम्पन्न होने वाले यज्ञ में नारायण को इसका सम्पादक कहा है। नारायण की विश्वरूपता का संकेतक प्रसंग होने से सम्भवतः इसी के आधार पर 'पांचरात्र शास्त्र' की प्रवृत्ति हुई हो। विष्णु तन्त्र के अनुसार—'पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश' ही पांच रात्रि के रूप में कथित हैं। इस आगम में १. ब्रह्मरात्र, २. शिवरात्र, ३. इन्द्ररात्र, ४. नागरात्र और ५. ऋषिरात्र होने से भी ये 'पांचरात्र' कहे गये हैं। इस आगम का साहित्य 'संहिता, श्रुति, उपनिषत्' आदि शब्दों से भी ग्रथित है। वैसे भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में पांचरात्र शब्द के अर्थ भिन्न-भिन्न रूप से भी दिखाए गए हैं। वस्तुतः अज्ञान-नाशनपूर्वक भगवदाराधन इसका मुख्य प्रतिपाद्य है। मार्कण्डेय संहिता में कहा गया है कि—

सार्धकोटिप्रमाणेन कथितं तस्य विष्णुना।
रात्रिभिः पंचभिः सर्वं पांचरात्रमतः स्मृतम्॥
(१/२२-२३)

तथा— भगवद् भक्तिरेव स्याद् भक्तानां मुक्तिसाधनम्।
तद्भक्तिबोधकं शास्त्रं पांचरात्रागमस्थितम्॥
(पुरुषोत्तम संहिता, अ० १, श्लो० ४)

इस आगम की अभिवृद्धि में भी सनत्कुमार, नारद, मार्कण्डेय, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अनिरुद्ध, ईश्वर, भारद्वाज आदि अनेक महर्षियों का योगदान है। वैष्णवों की पंचकाल-प्रक्रिया में प्रातः से आरम्भ कर रात्रि के उत्तर भाग पर्यन्त विविध आचार सम्पादन के लिए—'१. अभिगमन, २. उपादान, ३. इज्या, ४. स्वाध्याय तथा ५. योग' कालों का निर्देशन है।

सिद्धान्त रूप से पांचरात्र की दो शाखाएं हैं—१. बड़कलै (औदीच्य ज्ञान) तथा २. टेङ्कलै (दक्षिणात्य ज्ञान)। इन आगमों में भगवान् के विग्रहों की अर्चना के विविध प्रकारों के साथ ही कामना भेद से की जाने वाली अर्चनाओं के भी निर्देश है।

आगमों की समानता में ही 'यामलों' की सृष्टि हुई है। बहुधा विषय-साम्य होने से आगमों से यामल-ग्रन्थों को पृथक् भी नहीं माना जाता, तथापि वक्तृ-श्रोतृ भेद से यामलों की स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता शास्त्रों में प्रतिपादित है, जिसका समुचित विचार अग्रिम पंक्तियों में प्रस्तुत है।

यामल और यामल-साहित्य

तन्त्रों की व्यवस्था '१. शैव, २. शाक्त और ३. यामल' रूप भेदों से भी की गई है। तदनुसार शैवतन्त्र में शिव भट्टारक का, शाक्त तन्त्र में शिवा भट्टारिका का तथा यामल तन्त्र में शिव और शिवा दोनों का अभेद निरूपित हुआ है। यहां शिव अर्थ रूप हैं और शक्ति शब्द रूप हैं। अतः तन्त्र में इनकी भेद कल्पना सर्वथा असहनीय है। 'जो शब्द है वही अर्थ है, और जो अर्थ है वही शब्द है' इस दृष्टि से शक्ति और शिव में भी 'जो शक्ति है वही शिव है तथा जो शिव है वही शक्ति है', इस प्रकार का सिद्धान्त यामल-तन्त्र में प्रतिपादित है। जहां सामान्य और विशेष की समान स्थिति है, सूर्य, सोम आदि इच्छात्मक पदार्थों की अविनाभाव से स्थिति है, वहीं यामल-तन्त्र का स्वरूप परिलक्षित होता है, वहीं तत्त्व परिलक्षित होता है। इसीलिए यामल को 'युगलतत्त्व' भी कहा गया है। "शिव और शक्ति के सामरस्य का जिस उपासक में समुदय होता है, वही अमृत का आस्वाद प्राप्त करता है" यह स्वयं रुद्रयामल में कहा गया है—

चिच्चन्द्रः कुण्डली शक्तिः सामरस्य महोदयः।
व्योमपंकज निस्यन्द-सुधापानरतो नरः॥

(२६/१३७)

इस अपूर्व महिमा से मण्डित 'यामल' तन्त्र शास्त्रों में महत्त्वपूर्ण माने गए हैं। इसके विभिन्न स्वरूप, विभिन्न विषय एवं विभिन्न आख्यान भी इसकी महत्ता को व्यक्त करने में अग्रणी हैं। साथ ही यह युगल देवताओं द्वारा कथित होने के कारण भी अधिक उपादेय माना जाता है। एक स्थान पर तो वेदों की प्रवृत्ति भी यामल से ही बतलाई गई है—**'यामलाद् वेदः संजातः'** इत्यादि। (सर्वोल्लासतन्त्र, १/२१)

यामल—'यामल' शब्द 'यमल' का भाववाचक है (यमल+अण्)। यमल का अर्थ है 'मिथुन'। 'यामल' का शाब्दिक अर्थ है 'मिथुन वाला'। चूंकि यामल शब्द एक विशेष शास्त्र के लिए प्रयुक्त है, इसीलिए इसकी व्युत्पत्ति की सार्थकता इस अर्थ में हो सकती है कि जो शास्त्र दो दैवी शक्तियों के कथनोपकथन के द्वारा विषयवस्तु का प्रवर्तन करता है उसे **'यामल'** कहा जा सकता है। यह अर्थ इसलिए भी समीचीन लगता है, क्योंकि जितने भी यामल ग्रन्थ हैं, वे सब भैरवी-भैरव, भैरव-भैरवी, उमा-महेश्वर, शिव-ब्रह्मा, नारद-महादेव, पार्वती-महेश्वर आदि देवी-देवताओं के परस्पर वार्तालाप-प्रश्नोत्तर से विषय का प्रतिपादन करते हैं। विज्ञान भैरव के प्रथम श्लोक में प्रयुक्त 'यामल' शब्द का अर्थ टीकाकार ने "रुद्र और उसकी शक्ति का सामरस्य" किया है[1]। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार वैदिक वाङ्मय ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् की परम्परा से अनुस्यूत है, उसी प्रकार तान्त्रिक वाङ्मय के अन्तर्गत आगम, यामल और तन्त्र की युग-परम्परा है। सूत्र और भाष्य-काल के समान इन तन्त्रों की भी परम्परा रही है। गोपीनाथ कविराज ने चौसठ भैरवागमों के अन्तर्गत आठ प्रकार के यामलों की गणना की है, साथ ही 'तान्त्रिक साहित्य' में उन्होंने अन्य बहुत से यामल ग्रन्थों का नामोल्लेख भी किया है, जिनमें से कुछ का उल्लेख मात्र ही मिलता है। 'वाराही तन्त्र' के अनुसार जिस शास्त्र में १. सृष्टि, २. ज्योतिष, ३. नित्यकृत्य का उपदेश, ४. क्रम, ५. सूत्र, ६. वर्ण-भेद, ७. जाति-भेद और ८. युग धर्म—इन आठ विषयों पर चर्चा की गयी हो, उसे 'यामल' कहते हैं—

---

१. विज्ञानभैरव, पृ० १।

सृष्टिश्च ज्योतिषाख्यानं नित्यकृत्य प्रदीपनम्।
क्रमसूत्रं वर्णभेदो जातिभेदस्तथैव च॥
युगधर्मश्च संख्यातो यामलस्याष्टलक्षणम्।[1]

'सर्वोल्लास तन्त्र' में सर्वानन्दनाथ ने यामलोत्पत्ति पर प्रकाश डाला है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि परमशक्ति सूक्ष्म रूप में निर्मल तथा स्थूल रूप में यामल (मिथुन) रूप है। उस देवी का विग्रह रूप ही 'यामल' है। यामल ग्रन्थ सभी शास्त्रों का बोध रूप है—

सूक्ष्मेऽपि निर्मला या च स्थूले सा यामले शिवे।
यामलोक्तं स्थूलरूपं सर्वशास्त्रस्य बोधनम्॥

यामल साहित्य—

भैरवागम के अन्तर्गत यामलाष्टक में 'ब्रह्म, विष्णु, शक्ति, रुद्र, आथर्वण, रुरु, वेताल और स्वच्छन्द'—इन ८ यामलों की गणना की गई है। 'ब्रह्मयामल' (नेपाल दरबार लाइब्रेरी में उपलब्ध) की एक पाण्डु-लिपि में 'रुद्र, स्कन्द, ब्रह्म, विष्णु, यम, वायु, कुबेर तथा इन्द्र'—इन ८ यामलों का उल्लेख किया गया है, जिनके वक्ता क्रमशः स्वच्छन्द, क्रोध, उन्मत्त, उग्र, कपाली, झंकार, शेखर तथा विजय हैं।[2] विद्यानन्द ने यामलाष्टक के अन्तर्गत 'ब्रह्म यामल, विष्णु यामल, रुद्र यामल, जयद्रथ यामल, स्कन्द यामल, उमा यामल, लक्ष्मी यामल और गणेश यामल' को स्वीकार किया है।[3] 'विद्यापीठ' में रुद्र यामल, स्कन्द, ब्रह्म, विष्णु, यम, वायु, कुबेर और इन्द्र यामल' का उल्लेख हुआ है 'श्रीकण्ठी संहिता' में 'ब्रह्म, विष्णु, स्वच्छन्द, रुरु, आथर्वण, रुद्र तथा वेताल' आदि सात यामलों का उल्लेख हुआ है। 'जयद्रथ यामल' में 'ब्रह्म, रुद्र, स्कन्द, गौतमी, रुरु तथा हरि'—इन छः यामलों का निर्देश किया गया है।[4] इससे स्पष्ट होता है कि उक्त छः यामल जयद्रथ यामल के पूर्ववर्ती हैं। 'सम्मोहन तन्त्र' में दो शैव यामल, एक वैष्णव यामल, दो सौर यामल

---

१. तन्त्र कल्पतरु, पृ० ६६ पर उद्धृत।
२. तन्त्र कल्पतरु, पृ० ६६।
३. नित्यषोडशिकार्णव तन्त्र, १/१५ की अर्थ रत्नावली टीका, पृ० ४३।
४. स्टडीज इन द तन्त्राज, भाग १, पृ० १११।

तथा एक चन्द्र यामल का उल्लेख हुआ है। 'आगम तत्त्व विलास' में 'ब्रह्म, आदि, रुद्र, बृहद् तथा सिद्ध यामल' का उल्लेख मिलता है।

म० म० गोपीनाथ कविराज ने अपने ग्रन्थ 'तान्त्रिक साहित्य' में बहुत से यामल ग्रन्थों का वितरण प्रस्तुत किया है, जिनमें से कुछ तो प्रकाशित हैं, कुछ की पाण्डुलिपियां उपलब्ध हैं तथा कुछ का विभिन्न ग्रन्थों में नामोल्लेख मात्र हुआ है। उनका विवरण इस प्रकार है—

१. **अघोर यामल तन्त्र** (लिखित), २. **आदित्य यामल** (तन्त्रसार तथा पुरश्चर्यार्णव में उल्लिखित), ३. **इन्द्र यामल तन्त्र** (ताराभक्ति सुधार्णव में उल्लिखित), ४. **उमा यामल** (लिखित), ५. **काली यामल** (कुलपूजन चन्द्रिका में उल्लिखित), ६. **कृष्ण यामल** (लिखित), ७. **गणेश यामल** (लिखित), ८. **गौरी यामल** (ताराभक्ति सुधार्णव तथा पुरश्चर्यार्णव में उल्लिखित), ९. **ग्रह यामल** (लिखित), १०. **चन्द्र यामल** (ताराभक्ति सुधार्णव में उल्लिखित), ११. **जयद्रथ यामल** (लिखित), १२. **पंच यामल** (कुल प्रदीप में उल्लिखित), १३. **बिन्दु यामल** (लिखित), १४. **बृहद् रुद्र यामल** (लिखित), १५. **ब्रह्म यामल** (लिखित), १६. **ब्रह्मांड यामल** (लिखित), १७. **भैरव यामल** (लिखित), १८. **रुद्र यामल** (लिखित), १९. **रुद्र यामल उत्तर षटक** (लिखित), २०. **लक्ष्मी यामल** (लिखित), २१. **विष्णु यामल** (लिखित), २२. **वीर तन्त्र यामल** (प्राणतोषिणी तथा विज्ञानभैरव में उल्लिखित), २३. **वीरभद्र यामल** (लिखित), २४. **वीर यामल** (विज्ञान भैरव की शिवोपाध्याय कृत टीका में उल्लिखित), २५. **संकेत यामल** (लिखित), २६. **सिद्ध (सिद्धि) यामल** (लिखित), २७. **स्कन्द यामल** (प्राण तोषिणी में उल्लिखित), २८. **स्वच्छ यामल तन्त्र** (योगिनी हृदय में उल्लिखित), २९. **हंस यामल** (लिखित)। एम० कृष्णमाचारी ने 'तंज़ौर पैलेस लाइब्रेरी' में उपलब्ध ३२ यामल ग्रन्थों का संकेत किया है।

यामल-साहित्य की इस सुदीर्घ शृंखला में '**रुद्रयामल**' की विशिष्टता सर्वोपरि है। यह 'उत्तरतन्त्र' अर्थात् सर्व तन्त्रों से उत्तरकाल में कथित है अथवा 'उत्तरकाण्ड' के रूप में कहा गया है। रुद्रयामल के अनुसार विष्णु यामल और ब्रह्मयामल के पश्चात् उपदेश होने से भी रुद्रयामल को उत्तरतन्त्र कहा गया है। इसके साथ ही यह भी स्मरणीय है कि रुद्रयामल के नाम से उद्धृत ग्रन्थों और ग्रन्थांशों की संख्या भी

अगणित है। अतः रुद्रयामल की दिव्यता, स्वरूप एवं साहित्य-सम्पदा पर क्रमिक विचार किया जा रहा है।

रुद्रयामल की दिव्यता

'रुद्रयामल' केवल यामल-ग्रन्थों का ही नहीं, अपितु समग्र आगम-तन्त्र ग्रन्थों का चूड़ामणि ग्रन्थ है। आप किसी भी तन्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ का अवलोकन कीजिए। किसी-न-किसी रूप में वहां रुद्रयामल की साक्षी अवश्य मिल जाएगी। **'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'**—'जो यहां है 'वह और वही', अन्यत्र है और जो यहां नहीं है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है' यह उक्ति इसके लिए पूर्णरूप से सत्य सिद्ध होती है। इसीलिए तो रुद्रयामल को एक पुस्तक मात्र मानने वालों को अत्यन्त नराधम की संज्ञा देते हुए भगवान् शिव ने स्वयं कहा है कि—

दुर्गेयं मृण्मयी ज्ञानं रुद्रयामल-पुस्तकम्।
मन्त्रमक्षरसंज्ञानं करोत्यतिनराधमः॥

(चंडी विधान)

अर्थात् दुर्गा की मूर्ति को मिट्टी की समझने, रुद्रयामल को पुस्तक मात्र समझने यथा मन्त्र को अक्षर मात्र समझने की जो धृष्टता करता है वह अति नराधम है।

रुद्रयामल को प्रायः अनेक रूपों में पूर्वापर ग्रन्थकारों ने उद्धृत किया है। वे **'विश्वसार तन्त्र, विश्वसारोद्धार तन्त्र, रुद्रयामल-षटतन्त्र'** आदि नामों से इसे सम्बोधित करते हैं। इन नामों से यह समस्त तन्त्रागम ग्रन्थों का सार अथवा 'सारोद्धार' है, यह स्पष्ट प्रमाणित होता है। साथ ही इसके नाम से मिलने वाले पृथक्-पृथक् प्रयोगों, स्रोतों और प्रमाणों से ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक सर्वमान्य आगम ग्रन्थ था, जो कि तन्त्र-सम्बन्धी, समस्त प्रक्रियाओं को प्रस्तुत करने वाला एक **'तान्त्रिक-विश्वकोश'** था।

बहुधा यह भी देखने में आता है कि पूर्वाचार्यों ने रुद्रयामल में दिए गए तान्त्रिक विधानों के संकेतात्मक स्वल्पांशों को लोककल्याण

के लिए गुरु परम्परा प्राप्त एवं स्वानुभूत प्रयोग पद्धतियों से भी उन्हें पल्लवित्त किया है। भारत के विभिन्न भण्डारों में चिर-सुरक्षित रुद्र-यामल्ल की पाण्डुलिपियों में ऐसे-ऐसे अनूठे प्रयोग दिए गए हैं कि जिनका समग्र संकलन इस लघु-ग्रन्थ में कथमपि सम्भव नहीं है। इसके साथ ही यह भी स्मरणीय है कि प्रमुख तन्त्र शास्त्रों के टीकाकारों ने रुद्रयामल के नाम से जिन प्रमाणों को यत्र-तत्र प्रस्तुत किया है, वे भी यदि संकलित किए जाएं तो इसके अनेक दुर्लभ अंशों की पूर्ति हो सकती है।

हमने प्रस्तुत संकलन में पाठकों की अभिरुचि एवं सुख-साध्यता को ध्यान में रखकर यह प्रयास किया है कि विस्तृत जानकारी के साथ-साथ कतिपय प्रामाणिक प्रयोगों का भी परिज्ञान हो, और वे इससे लाभान्वित हों।

आज का समाज अपनी-अपनी परिधि में रहकर ही साधना-उपासना के प्रति अग्रसर होना चाहता है। उसकी काल सापेक्ष मर्यादाएं, कर्त्तव्य-कर्मों की पूर्ति के लिए की जाने वाली क्षमताएं भी सीमित हैं। प्राचीन काल की सामाजिक स्थिति और आज की परिस्थिति में भी पर्याप्त अन्तर आया है और इन सबके अतिरिक्त तन्त्र-मार्ग के प्रामाणिक ज्ञाता गुरुजनों की भी न्यूनता-दुर्लभता पूर्णतः स्पष्ट है। ऐसी स्थिति में हमने विशुद्ध, सरल एवं सहज साधना-पद्धति को ही यहां व्यक्त करने की चेष्टा की है। साधनागत आचारों की जटिलता, मार्गों की अज्ञानता तथा परिष्कृत पद्धति के ज्ञान के बिना मनमाने प्रयोगों में आसक्त होना सर्वथा अनुचित है, यह सदा ध्यान में रखकर सात्त्विक साधना करने वालों के लिए हमारा यह लघु प्रयास है।

यह नितान्त स्पष्ट है कि इतने विशाल 'तान्त्रिक-विश्वकोश' को कुछ सीमित पृष्ठों में परिभाषित करना एक दुष्कर कार्य है, किन्तु हमारे द्वारा पूर्वनिर्मित मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र साधना की प्रामाणिक पुस्तकों को पढ़कर स्वयं पाठकों ने ही हमें यह कार्य करने की प्रेरणा दी है। उत्तम कार्य के लिए प्रेरित करने वाले उपकारी ही होते हैं। उनका यह उपकार न केवल कुछ साधकों तक ही सीमित रहे, अपितु जन-जन तक सन्मार्ग प्रवृत्ति का सन्देश भी दे, इस पवित्र भावना से रुद्रयामल रूप

महासागर से कुछ रत्नकण अथवा अमृतबिन्दु संगृहीत कर उनसे परिचित कराने का प्रयास इस ग्रन्थ में समाविष्ट है।

रुद्रयामल की दिव्यता का यत् किंचित् परिचय हो यहां दिया जा सका है, क्योंकि इसमें आगम और मन्त्र-तन्त्र विद्याओं के अतिरिक्त ज्योतिष, धर्म शास्त्र, पुराण, कर्मकाण्ड, आयुर्वेद तथा ऐसी हो अनेक विद्याओं के सम्बन्ध में निर्देश प्राप्त होते हैं। योग शास्त्र की सभी धाराओं—राजयोग, हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग का इसमें अच्छा प्रतिपादन हुआ है और वनस्पति-विज्ञान, शरीर-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान आदि विषयों की भी सामग्री अनेक रूपों में व्यक्त की गई है। हां, इतना अवश्य है कि यह देव-भाषित संवादात्मक साहित्य से परिपुष्ट है, इसलिए कहीं अतिविस्तार से, कहीं अल्पविस्तार से और कहीं केवल सूत्ररूप से ही विषयों का विवेचन इसमें प्राप्त है।

युगों पूर्व इसके संकलन में क्या-क्या रहा होगा यह नहीं कहा जा सकता, किन्तु दीर्घ-सुदीर्घ काल के बीत जाने पर विभिन्न समय के थपेड़ों के बाद जो प्राप्त है, उसका 'वैचारिक विमर्श' यहां प्रस्तुत है। आइए इसका आनन्द/ज्ञान प्राप्त करें।

रुद्रयामल : स्वरूप-दर्शन

आशुतोष भगवान् शिव के द्वारा कहे गए तन्त्रों की संख्या चौसठ कही गई है और उनमें भी **'राधाख्यं मालिनी-तन्त्रं रुद्रयामलमुत्तमम्'** कहकर रुद्रयामल-तन्त्र को उत्तम बतलाया है। जिस महाग्रन्थ में तन्त्र शास्त्र की परिधि में आने वाले तथा उन-उन विषयों से सम्बद्ध अन्य शास्त्रों के उपयोगी विषयों का प्रामाणिक वर्णन हुआ हो, उसे 'उत्तम' ही क्यों 'परमोत्तम' कहना चाहिए। इस यामल को तन्त्र की संज्ञा दी गई है, अतः तन्त्र की परिभाषा पर कुछ विचार भी अपेक्षित है। यह वचन प्रसिद्ध है कि—

तनोति विपुलानर्थान् तत्त्वमन्त्र-समन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधोयते ॥[1]

१. कामिक आगम, तन्त्रान्तर-पटल।

व्यवहारः कथ्यते यत्र तथा चाऽध्यात्म-वर्णनम् ।
इत्यादि-लक्षणैर्युक्तं तन्त्रमित्यभिधीयते ॥

केवल तत्त्वपूर्ण वचनों/विषयों से समन्वित विपुल अर्थों का विस्तार एवं उनके ही माध्यम से साधकों का संरक्षण करने वाला शास्त्र तन्त्र कहलाता है। इसी प्रकार १. व्यवहार का कथन और २. अध्यात्म का वर्णन आदि करने वाला शास्त्र भी 'तन्त्र' कहा जाता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से '१. तननं तन्त्रम्, २. तन्यतेऽनेनेति तन्त्रम्, ३. तन्त्रणं तन्त्रम्, ४. तन्त्र्यतेऽनेनेति तन्त्रम् तथा ५. तनोति त्रायते चेति तन्त्रम्' के अनुसार भी उपर्युक्त अर्थों की पुष्टि होती है। सम्भवतः इन्हीं सब अर्थों को ध्यान में रखकर कहा गया है कि—

सर्वेऽर्था येन तन्यन्ते त्रायन्ते च भयाज्जनाः ।
इति तन्त्रस्य तन्त्रत्वं तन्त्रज्ञाः परिचक्षते ॥

इसी प्रकार सर्वविध उपायों का विस्तार और उनके द्वारा उत्पन्न भय से लोगों की रक्षा ही तन्त्र का चरम और परम लक्ष्य निर्धारित हो गया। जब उपर्युक्त तान्त्रिक विषयों का प्रतिपादन तथा विस्तारपूर्वक विवेचन प्रस्तुत होने लगा तो वे ग्रन्थ भी 'तन्त्र' की संज्ञा को प्राप्त हो गए। इसी बात को पुष्ट करते हुए कहा गया है कि—

यत्र चोपासना-मार्गो देवतानां प्रदर्शितः ।
तं ग्रन्थं तन्त्रमित्याहुः पुरातन-महर्षयः ॥

इस दृष्टि से रुद्रयामल को 'तन्त्र' कहना तो सार्थक है ही, साथ ही यह तन्त्र के व्यापक अर्थ में आने वाली सभी विधाओं को भी अपने में समेटे हुए है। जैसे इसमें **१. ज्ञान, २. योग, ३. क्रिया** और **४. चर्या** से सम्बद्ध विषयों पर पर्याप्त विवेचन प्राप्त होता है। **ज्ञान** की विवेचना में यहां आध्यात्मिक-दर्शन का विस्तृत विचार है। दर्शन का प्रमुख लक्ष्य 'मोक्ष' ही तान्त्रिक-साधना का चरम लक्ष्य बताते हुए साधना पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी गई है। **योग** पर तो इस ग्रन्थ में इतना अधिक और उत्तम लिखा गया है कि अन्यत्र प्रायः वह विषय दुर्लभ ही है। तन्त्र साधना का मूल आधार ही 'योग' सिद्ध किया गया है और 'मन्त्र योग' की भूमिका पर कर्त्तव्य कर्मों का निर्देश किया गया है। **क्रिया**—ज्ञान को रूप में विकसित करने के लिए विभिन्न क्रिया-अनुष्ठानों की पूर्ण

आवश्यकता रहती है। 'क्रियादक्षो दक्ष:', 'क्रिया केवलमुत्तरम्' तथा 'यस्तु क्रियावान् कुशल: स:' इत्यादि सूक्तियां क्रिया की महिमा बतलाती हैं। अत: यहां अनेक प्रकार की प्रयोगरूप क्रियाएं दिखलाई हैं। **चर्या**—ज्ञान, योग और क्रिया में निरन्तरता लाना और स्वयं आचरण द्वारा उसे अनुभव में उतारना भी आवश्यक कहा गया है। इसी में पर्व, उत्सव, व्रत, याग और सामाजिक अनुष्ठान भी समाविष्ट होते हैं जो कि रुद्रयामल में शास्त्रीय प्रमाणानुसार वर्णित हैं।

हजारों वर्षों से चली आ रही शास्त्र परम्पराओं में देश, काल एवं व्यक्ति की विभिन्नता के कारण हमारे शास्त्रों के यथार्थ रूपों में यत्र तत्र न्यूनाधिकता भी आई है। साक्षात् उपदेश से प्राप्त ज्ञान की सुरक्षा के लिए पूर्वाचार्यों ने कहीं संकेतात्मक और व्याख्यात्मक रूप में विषयों का निर्देश किया है तो कहीं गोपनीय अंशों को या तो छोड़ दिया है अथवा कहीं गोपनीय पद्धति विशेष से उसका निर्देश दिया है। पारम्परिक उपदेशों के अभाव में स्वैच्छिक स्वानुभूत और स्वाधीत प्रज्ञा के बल पर जो प्राप्त हुआ तथा हो रहा है, उसे उपकार-परायण विद्वज्जन उन शास्त्रों में प्रस्तुत करते रहे हैं, यह हमारा सौभाग्य है।

'रुद्रयामल' यामल-ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसकी सर्वशास्त्र-बोधकता ही इसके श्रेष्ठत्व को उजागर करने में सर्वसिद्ध प्रमाण है। भिन्न-भिन्न ग्रन्थागारों में तन्त्र के नाम से प्राप्त होने वाली पाण्डुलिपियों में रुद्रयामल से उद्धृत अंशरूप कृतियों की संख्या हजारों की संख्या में प्राप्त हैं। उनका इस प्रकार का संकलन सम्भवत: इसलिए किया जाता रहा कि व्यक्तिगत उपयोग में पूरे ग्रन्थ को साथ रखना शक्य नहीं था। जो जिस इष्ट देवता की उपासना करता था, वह उतने ही अंश को अपने लिए लिख लेता था। यही कारण है कि कहीं केवल मन्त्र-विधान है तो कहीं कवच, सहस्रनाम आदि। कहीं केवल स्तवराज है तो अन्यत्र यन्त्र-विधान। इन सबका समन्वित रूप—क्रमिक रूप मिलना अथवा मिल पाना भी आज तो एक कठिन श्रमसाध्य कार्य बन गया है।

वाराही तन्त्र के अनुसार रुद्रयामल षड्यामलों में चौथा यामल-ग्रन्थ है। इसी को आदि, विष्णु और ब्रह्म यामलों के पश्चात् उपदिष्ट

होने के कारण 'उत्तर तन्त्र' भी कहा गया है। इसकी श्लोक संख्या का वहीं निर्देश है कि—

कालसंख्यासहस्राणि वेदसंख्याशतानि च।
पंचषष्टिस्तथा श्लोकाः कनिष्ठे रुद्रयामले।।

इसके अनुसार ३४६५ श्लोक रुद्रयामल में बतलाए गए हैं, किन्तु यह स्थूल निर्देश मात्र है, क्योंकि 'महासिद्ध-सारस्वत-तन्त्र' में स्पष्ट कहा गया है कि—

न शक्यं विस्तराद् वक्तुमपि वर्षशतैरपि।

अतः निश्चय ही 'रुद्रयामल' अत्यन्त विस्तृत ग्रन्थ रहा होगा। इसकी साहित्य सम्पदा से भी यही प्रमाणित होता है।

'रुद्रयामल—उत्तर तन्त्र' के नाम से वाराणसी से प्रकाशित ग्रन्थ में ६० पटल हैं। इसमें सभी पटलों के सम्मिलित श्लोकों की संख्या ७७२० है। जबकि अन्यान्य पृथक्-पृथक् प्राप्त पंचांग-स्तोत्र-सहस्रनामादि की पद्य संख्या कितनी होगी? यह कह पाना नितान्त कठिन है। इस ग्रन्थ के प्रत्येक पटल के अन्त में दी गई पुस्पिकाओं से ज्ञात होता है कि—यह महातन्त्रोद्दीपन, महायन्त्रोद्दीपन तथा महामन्त्रोद्दीपन, सर्वचक्रानुष्ठान और षट्चक्र प्रकाश जैसे विभिन्न विषयों की परिधि में मुख्यतः योग शास्त्रीय साधना-विधानों से परिपूर्ण है। दक्षिण और वाम आचारों को निःशंक भाव से व्यक्त करते हुए भी यौगिक साधना पर विशेष बल दिया है और 'मन्त्र योग' की प्रक्रिया को महत्त्व देते हुए कवच, स्तोत्र एवं सहस्रनाम आदि के पाठों को भी अत्यावश्यक सिद्ध किया है।

योग साधना में सफलता प्राप्त करने में शारीरिक नैरोग्य परमावश्यक है। इस दृष्टि से यहां अनेक स्थानों पर औषध-प्रयोग भी प्रदर्शित किए हैं और उनमें कार्यकर्तृत्व शक्ति का आधान करने के लिए मन्त्रजपादि के द्वारा अभिमन्त्रण का भो आदेश किया है।

इस प्रकार रुद्रयामल का स्वरूप विराट्-स्वरूपात्मक है, यही कहना उचित है, पर्याप्त है और वास्तविक भी है।

रुद्रयामल की पाण्डुलिपियां

भारत के ग्रन्थागारों में संगृहीत पाण्डुलिपियों का समुचित संरक्षण चिरकाल से चला आ रहा है, किन्तु बीच-बीच देश पर आए विधर्मियों के संकट तथा आक्रमण के कारण हमारा दुर्लभ ग्रन्थ धन विनष्ट होता रहा है। इसके साथ ही विदेशी शासन के काल में कतिपय महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपियां विदेशों में चली गईं। इस पर भी जो कुछ बची हुई हैं उन्हीं की रक्षा भी हमारे द्वारा व्यवस्थित रूप से नहीं हो पा रही है, यह दु:ख का विषय है।

उपलब्ध पाण्डुलिपियों में 'रुद्रयामल' की हस्तलिखित प्रतियां जो प्राप्त हैं उनकी संख्या 'तान्त्रिक साहित्य' ग्रन्थ के आधार पर मुख्यत: १३ है। सम्भवत: कुछ और भी प्रतियां होंगीं, किन्तु उनका पूरा परिचय नहीं प्राप्त होता। इन प्रतियों में कुछ तो विषयानुसारी हैं और कुछ स्वतन्त्र संकलन की हुई हैं। भण्डारों के संक्षिप्त नाम तथा वहां की क्रम संख्या भी इनके साथ यहां दिखलाई गई है और उपलब्ध परिचय भी कुछ दिया गया है—

रुद्रयामल अथवा रुद्रयामल तन्त्र

१. भैरव-भैरवी (उमा महेश्वर) संवादरूप यह अनुत्तर तन्त्र और उत्तर तन्त्र भेद से दो भागों में विभक्त है। दोनों में कुल मिलाकर ५४ पटल हैं। —ए० बं० ५८६२, ५८६३

२. यह भैरव-भैरवी संवादरूप है। भैरव प्रश्न-कर्त्ता और भैरवी उत्तर देने वाली है। श्रीयामल, विष्णुयामल, शक्तियामल और ब्रह्म-यामल इन सब यामलों का उत्तरकाण्ड रूप रुद्रयामल है। इसनें ६३ पटल हैं। —ने० द० २/२४६ (छ)

३. भैरव-भैरवी संवादरूप यह ३२ पटलों में पूर्ण है।

—ने० द० २/२४६ (ई)

४. यह ६४ पटलों में पूर्ण है। इसमें प्रतिपादित विषय आनन्द-भैरव के प्रति आनन्दभैरवी की उक्ति रूप यह निगम है। इसमें यामल

शब्द की व्युत्पत्ति, तन्त्र का माहात्म्य निरूपण, भाव शब्द का निर्वचन, सुरा-पान विधि, दिव्य, वीर और पशुभाव के भेद से भाव तीन प्रकार का है, आदि वर्णित हैं। नो० सं० १/३२३

५. महादेव-पार्वती संवादरूप। इसमें **'गायत्री महाचक्र'** का प्रतिपादन है। श्लोक सं० १३५ —ट्रि० कै० १००७ (ख)

६. भैरव-भैरवी संवादरूप। इसमें ६००० श्लोक, ६७ पटल हैं। इसमें प्रतिपादित विषयों में कतिपय मुख्य-मुख्य विषय हैं—सिद्ध-मन्त्र प्रकरण, महागुरु प्रकरण, भावनिर्णय प्रकरण, चक्रानुष्ठान प्रकरण, कुमारी उपचर्या विन्यास प्रकरण, कुमारीपूजनादि निरूपण, कुमारीकवच, कुमारी के अष्टोत्तर शत और सहस्र नाम, पशुभाव-विचार, आज्ञाचक्र संगति, सिद्धमन्त्र प्रकरण, आज्ञाचक्रसार सकेत कथन, भरणी आदि सत्ताईस नक्षत्रों के फलाफल का कथन, वेद प्रकरण, वेदभाषा परिच्छेद, अथर्ववेद-प्रकरण, चतुर्वेदोल्लास आदि।

—रा० ला० २६२

७. यह मौलिक तन्त्र है। इसमें प्रायः सम्पूर्ण शाक्त-सिद्धान्त, ज्ञान, धार्मिक और सामाजिक रीतिरस्म, विधियां, जातियां, तीर्थ, व्रत उत्सव आदि वर्णित हैं। —बी० कै० १३०६

८. भैरव प्रोक्त, उत्तर काण्ड सम्पूर्ण। —जं० का० १०७५

९. श्लोक सं० ६३२७, पूर्ण। —र० मं० ४६५०

१०. (क) श्लोक सं० लगभग १०००, **रसार्णवकल्पकथन पर्यन्त** पूर्ण।

(ख) श्लोक सं० लगभग ७५०, अपूर्ण।

(ग) श्लोक सं० लगभग १४०, अपूर्ण।

—सं० वि० (क) २३८४८, (ख) २५५३६, (ग) २६००८

उ०—सौन्दर्य लहरी टीका लक्ष्मीधरी, कुलप्रदीप, तारारहस्य-वृत्ति, ताराभक्तिसुधार्णव, आगमतत्वविलास, सर्वोल्लास, कालिका-सपर्याविधि, तत्वबोधिनी (आनन्द लहरी की टीका) तथा तन्त्रसार में।

११. रुद्रयामल (उत्तरषट्क)—उमा-महादेव संवादरूप रुद्रयामल 'अनुत्तर' और 'उत्तर' दो षट्कों में विभक्त है जैसा कि पहले कहा गया है। उसका यह 'उत्तर-षट्क' छह पटलों में पूर्ण है। उनके विषय ये हैं—

षट्चक्र-ध्यान, त्रिपुरा के मन्त्रों का निर्णय, कामतत्त्वसाधन, त्रिपुरा का ध्यान, सिद्धियां और विद्याकोष। सुना जाता है कि रुद्रयामल सवा लाख श्लोकात्मक है। —म० द० ५७१०-११

१२. **रुद्रयामल तन्त्र**—यह 'धातुकल्प' का प्रतिपादक तन्त्र है। इसके अन्त में सुवर्ण-प्रशंसा दी गयी है।
(यह पूर्वोक्त रुद्रयामल से भिन्न प्रतीत होता है)। —तै० म० ६५५

१३. **रुद्रयामलमतोत्सव तन्त्र**—उमा-महेश्वर संवादरूप।
—ए० बं० ५८५८

इनके अतिरिक्त रुद्रयामल के नाम से जो विशाल साहित्य प्राप्त होता है, उसका निदर्शन निम्नलिखित है।

रुद्रयामल की साहित्य-सम्पदा

भारत के प्राचीन ग्रन्थागारों में रुद्रयामल-तन्त्र से उद्धृत साहित्य का पर्यालोचन करने से ज्ञात होता है कि इस महाग्रन्थ में अनेकानेक विषयों का सांगोपांग विवेचन किया गया था। सम्भवतः भारतीय आस्तिक सम्प्रदाय में प्रचलित सभी शास्त्रीय उपासना-विधानों की एक व्यवस्थित परम्परा का उद्घाटन जैसा रुद्रयामल में हुआ वैसा अन्यत्र नहीं हुआ। एक साधक को यह महाग्रन्थ परिवार के वृद्ध पितामह द्वारा किसी अबोध बालक को अंगुली पकड़कर मार्ग दिखाने के समान ही पूरा निश्छल मार्ग दिखलाता है। आज हमारे समक्ष यह ग्रन्थ अपने पूर्ण स्वरूप में उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि रुद्रयामल का पूरा कलेवर सवा लाख पद्यों से अलंकृत था। महाभारत में १ लाख पद्यों की स्थिति का उल्लेख प्राप्त होता है, उससे भी २५ हजार पद्य इसमें अधिक थे। कालबल से वह समग्र साहित्य यत्र तत्र बिखर गया है। उत्तर तन्त्र के रूप में रुद्रयामल का एक भाग हमें मुद्रित प्राप्त होता है किन्तु उसके अतिरिक्त शताधिक ऐसे प्रकाशित अप्रकाशित ग्रन्थ भी हैं जिनमें पूर्णतया अथवा कुछ अंशों में रुद्रयामलोक्त साहित्य का संग्रह मिलता है। हमने विभिन्न मुद्रित तथा पाण्डुलिपियों में सुरक्षित साहित्य का गहन अध्ययन करते हुए कुछ ऐसे ही ग्रन्थों की एक सूची तैयार की है जिसे पाठकों के परिज्ञान के लिए यहां देना उपयुक्त

समझते हैं। यह सूची मुख्यतः विभिन्न भण्डारों में स्थित पाण्डुलिपियों की है—

१. अघोर-पंचांग	(रुद्रयामलान्तर्गत)	न्यू केट्० कैट० १/४७
२. अघोर-पूजा पद्धति	"	सं० वि० वि० वा० २४४९५
(अघोरसहस्रकल्पगत श्लोक १०२, पूर्ण)		
३. अंग-भैरव	"	न्यू केट्० कैट० १/४७
४. अन्नपूर्णाकल्प	"	" १/१९
५. अन्नपूर्णा सहस्रनाम	"	" २/४
६. अन्नपूर्णेश्वरी-पंचांग	"	" "
७. अयोध्यामाहात्म्य	"	हरगौरीसंवादरूप, एशिया बं० ५८८७
८. "	"	केट० कैट० ३/७
९. आपदुद्धर-पद्धति	"	न्यू केट० कैट० २/१२२
१०. आपदुद्धर-कवच	"	" "
११. आम्नाय-पद्धति	"	श्लोक सं० १५००, अ० ब० १०६९१
१२. आम्नाय अपूर्ण	"	सं० वि० वा० २६५७९
१३. आम्नाय चारपटल	"	न्यू केट० कैट० २/१४७
१४. इन्द्राक्षी-पंचांग	"	ए० बं० ६४३२
१५. उग्रतारा-पंचांग	"	सं० वि० वि० वा० २५०६३
१६. उग्रतारा-स्तोत्र	"	ए० बं० ६३३२
१७. "	"	न्यू के० कै० २/२८
१८. कालीत्राण पंचक	"	स्वतन्त्र संग्रह
१९. कालीभुजंग स्तोत्र	"	"
२०. कालिका स्तवराज	"	"
२१. चक्रनिरूपण	"	उमामहेश्वर संवादरूप, "

इसमें महाकुलाचार-क्रम से ५ चक्र, उनके आचार तथा विधि-विधान का वर्णन है। रुद्रयामलोक्त श्रीतन्त्र में दिए गए निर्देशानुसार ऐहिक सुखदायक और मोक्षप्रद इन चक्रों के नाम—१. राजचक्र, २. महाचक्र, ३. देवचक्र, ४. वीरचक्र तथा ५. पशुचक्र की विधि-विधान से पूजा करने से लाभ होता है। इसी ग्रन्थ में सुरूपा चारों वर्णों

की कुमारियों की पूजा का भी विधान है। यवनी, योगिनी, रजकी, श्वपची और मल्लाह की कन्या, ये पांच शक्तियां कही गई हैं। इनके अभाव में यथालब्ध जाति की कन्या के पूजन का भी विधान है। यन्त्रराज की पूजा में—१. तुलसीदल, २. बिल्वदल तथा ३. धात्रीदल का प्रयोग करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होने का भी संकेत है।

२२. चण्डोनवार्णपटल " ए० बं० ५८६६

इसमें चण्डी के नवार्णमन्त्र से सम्बद्ध विस्तृत चर्चा है।

२३. चन्द्रोन्मीलन " बी० कै० १२६३

इसमें ४६ पटलों में अनेक विषय चर्चित हैं जिन्हें रुद्रयामल के अतिरिक्त **ब्रह्म**, विष्णु, उमा तथा **बुद्धयामल** से भी लिया गया है।

२४. चिन्तामणि-प्रयोग	"	स्वतन्त्र संकलन
२५. छिन्नमस्ता कल्प	"	पटल १ से १८, अ० ब० १६६२ तथा म० द० ७८३६, श्लोक सं० ५००
२६. ज्वाला-कवच	"	क० का० ७८
२७. ज्वाला-पटल	"	" ८०
२८. ज्वाला पूजन पद्धति	"	" ८०
२९. ज्वालामुखी पंचांग	"	२३२ श्लोक, र० म० ४८३५
३०. ज्वाला सहस्रनाम	"	" "
३१. तारा-पंचाग	"	२०८ पद्य, सं० वि० वि० वा०
३२. त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रगर्भ सहस्रनाम	"	अ० ब० १२१८०
३३. त्रिकूटा-रहस्य	"	ए० बं० ५८८२
३४. त्रिपुरसुन्दरी तत्त्व विद्यागर्भि-सहस्रनाम	"	पद्य २९२, र० म० ९७०
३५. त्रिपुरसुन्दरी दीपदानविधि	"	"
३६. त्रिपुरसुन्दरी पंचांग	"	श्लो० ३५० "
३७. त्रिपुरसुन्दरी पटल	"	अ० ब० ५८८६
३८. त्रिपुरसुन्दरी पूजाविधि	"	अ० ब० २४७६
३९. त्रिपुरसुन्दरी स्तोत्र	"	शिवकृत, क० का० ३५
४०. त्रिपुरा पटल	"	सं० वि० वि० वा० २५१३७

४१. त्रिपुरा स्तव " ने० द० ला० १/१३७६
४२. त्रिपुरा हृदय " के० कै० २/५६
४३. त्रैलोक्यमोहन कवच " र० मं०
४४. त्रैलोक्य कालिकाकवच " के० कै ३/५२
४५. त्रैलोक्य विजय कवच " श्लो० ३०, अ० ब० ३५३१
४६. त्वरित रुद्रविधान " श्लो० १३२,
सं० वि० वा० २३८५
४७. दक्षिणकालिका पंचांग " श्लो० १५००,
अ० ब० १३७८२
४८. दक्षिणकालिका स्तोत्र " "

यह राजराजेश्वरी अनिरुद्ध सरस्वती दक्षिणकालिका देवी का संसारतारक स्तोत्र है। ए० बं० ६६३७

४९. दक्षिणकाली कवच " के० कै० ३/५२
५०. दत्तात्रेय-हृदय " श्लो० ४२, नो० सं० २/९६
५१. दुर्गानाम-माहात्म्य " बं० पू० ३८३ ख
५२. दुर्गा-पंचांग " देवी भैरव संवाद रूप,
अ० ब० ११२९५
५३. दुर्गा पूजा पटल " उत्तरखण्ड में अ० ६ तक,
सं० वि० वा० २४११५
५४. देवदूतीपूजाविधि " श्लो० २९६ " २४३९०
५५. देवी चरित्र " श्लो० १०००,
ए० बं० ५८७९

यह नवरात्रोत्सव पर की जाने वाली दुर्गापूजा का प्रतिपादक ग्रन्थ है। इसमें १३ अध्याय हैं जिनमें उमा पूजा विधि, देवी प्रभाव, देवी-रहस्य आदि विषय वर्णित हैं।

५६. देवी रहस्य अथवा
पराहस्य " इं० ऑ० २५४६

इसमें ६० पटल हैं तथा यह पूर्वार्ध और उत्तरार्ध रूप दो भागों में है।

५७. देवी रहस्य (तन्त्रोक्त-
विशेष प्रक्रिया रूप) " बी० कै० १२६२

५८. देवी रहस्य " अ० ब० ८/३००

२५ पटलों में शाक्तमत के मुख्य-मुख्य तत्त्वों का निदर्शन। अन्यत्र ३५ पटलों में विभिन्न देवियों की पूजा २००० पद्यों में वर्णित है। र० मं० ५२६०

५९. देवीरहस्य-तन्त्र " सूर्य एवं गणपति पूजा सहित, अ० बं० १३६८०

६०. देवीसूक्त " अ० ब० (क) ३४५८

६१. देवीसूक्त वर्णन " श्लो० ११०, र० मं० ५०२८ (ख)

६२. धूमावती दीपदान पूजा " बी० कै० १३११

६३. नरसिंह-पंचांग " श्लो० ४६८, र० मं० ४८१७

६४. नवग्रहसिद्धयन्त्रपूजा " ए० बं० ५८८९

६५. नवदुर्गा पूजा रहस्य " ११ पटल

६६. नवदुर्गा पूजा विधि एवं देवदूती-पूजाविधि " २९५ पद्य, सं० वि० वा० २४३९०

६७. नवरात्रकृत्य (उत्तरखण्डस्थ) " ३५७ पद्य, सं० वि० वा० २४१२६

६८. नवार्णचण्डी-पंचांग " श्लो० ८९२, र० म० ४८१८

६९. नित्यामृत-कल्प " १ पटल, सं० वि० वा० २५०२५

७०. नित्यदीप विधि " ४६० पद्य, अ० ब० ३४५९

७१. नीलसरस्वती प्रयोग विधि " ९० पद्य मात्र, सं० वि० वा० २५४८०

७२. पंचचक्र पूजन " क० का० ५२

७३. पंचदश यन्त्र विधान " ७२ पद्य, सं० वि० वा० २६२२४

७४. पंचमीवरिवस्या रहस्य " कें० कै० १/३१५

७५. पंचमी स्तवराज " र० म० ४४७८ तथा अ० ब० ५१४३

(वल्गा-पंचमी) के० के० ३/३१५

७६. पंचमी हनुमत्कवच " अ० ब० ९००१

७७. पंचाक्षरी-मन्त्रोपदेश	"	कैट्० कैट्० १/३१७
७८. परमहंस पंचांग, परमहंस पटल, पटल आदि	"	ए० बं० ६५१६, ६८०५, नो० सं० २/११५, ए० म० ४८१५, कै० कै० १/३२५
७९. परादेवी रहस्य, पत्र २२५	"	सं० वि० २५४३३, कै० कै० १/३२७
८०. पात्र-वन्दन-नवस्तोत्र	"	ने० द० ला० २/पे० २०७
८१. पात्र-स्तव-विधि, पत्र २४०	"	सं० वि० २४०३३
८२. पार्थिव पूजा, पत्र ९३	"	सं० वि० २४३३३
८३. पार्थिवलिंग पूजा विधि	"	क० का० ४७
८४. पार्थिवेश्वर-पूजा विधि, पत्र ७२	"	कै० कै० २/७५
८५. प्रत्यंगिरा-पंचांग	"	ए० बं० ६४३०, ६७१५ अ० ब० १०१५१, सं० वि० २३८८८, (ख) २४०१५, २४५१२
८६. प्रत्यंगिरा-पटल	"	सं० वि० २४६४४, २४६५३
८७. बकारादि बालात्रिपुर सुन्दरी रहस्य	"	र० मं० ११३३
८८. बटुक दीपदान-प्रकार	"	कै० कै० २/८२
८९. बटुक भैरव-पंचांग, ३६२ पत्र	"	सं० वि० २४००८, र० मं ४८५०
९०. बटुक-भैरव-पूजा-प्रयोग	"	सं० वि० २५०७७
९१. बटुक भैरव बकरादि सहस्रनाम	"	ए० बं० ६७५०
९२. बटुक भैरव सहस्रनाम	"	कै० कै० २/८२
९३. बाल-भैरव-सहस्रनाम	"	" २/७७
९४. बाला-भैरवी-सहस्रनाम	"	नो० सं० १/२४६
९५. बाला-कवच	"	अ० ब० ११४२०
९६. बाला खड्गमाला, ६५ पत्र	"	ट्रि० के० ११०६ ख
९७. बालात्रिपुरसुन्दरी		

नित्यपूजापद्धति, ६०० पत्र	"	अ० ब० ८०५४
९८. बाला सहस्रनाम	"	क० का० ९
९९. बाला सुन्दरी स्तवराज पत्र ३०	"	ट्रिं० के० (ख) ११०६
१००. बाला त्रिपुरा पटल, पत्र १५०	"	अ० ब० १६९४
१०१. बाला पंचांग, पत्र ८५२	"	र० मं० ४८१९
१०२. बाला पूजा-पद्धति, पत्र ७००	"	अ० ब० १६८३
१०३. भवानी-कवच	"	" ३४७७
१०४. भवानी-पंचांग, पत्र ६३०	"	र० म० ४८१९
१०५. भवानी पूजा-पद्धति, पत्र २२०	"	" ४८६६
१०६. भवानी सहस्रनाम पटल, पत्र ७८	"	सं० वि० २६६७५
१०७. भवानी सहस्रनाम स्तोत्र, पत्र २२४	"	र० वि० ५३४
१०८. भवानी स्तवराज, पत्र १५०	"	र० ला० ३७८
१०९. भुवनेश्वरी कल्प	"	कै० कै० ३/४१४
११०. भुवनेश्वरी नित्यपूजा पद्धति	"	सं० वि० २६३७३
१११. भुवनेश्वरी दीपदान	"	बी० कै० १३१७
११२. भुवनेश्वरी पंचांग	"	ए० बं० ६३८४
११३. भुवनेश्वरी पद्धति	"	रा० पु० ७०५६
११४. भुवनेश्वरी रहस्य, २६ पटल पत्र २५००	"	अ० ब० १०६९०
११५. भुवनेश्वरी स्तोत्र १३० पद्य	"	र० मं० ४४९२
११६. भैरव सहस्रनाम	"	कै० कै० १/४१७
११७. मंगल विधि	"	ए० बं० ५८९१
११८. मतोत्सव	"	" ५८६८
११९. महाकाल-पंचांग, पत्र ४४८	"	र० मं० ४८२८

१२०. महाकाली प्रस्ताररराज कथन, १२४ पत्र	"	" ११२५
१२१. महाकाली सूक्त, पत्र २७०	"	डे० का० ३६५
१२२. महागणपति पंचांग, पत्र ३०६	"	सं० वि० २४००५
१२३. महागणपति विधान	"	रा० पु० ५०४६
१२४. महात्रिपुरसुन्दरी पद्धति	"	सं० वि० ३६५५१
१२५. महात्रिपुरसुन्दरी पादुकार्चनक्रमोत्तम	"	
१२६. महात्रिपुरसुन्दरी पूजापद्धति	"	
१२७. महात्रिपुरसुन्दरी पूजाविधि	"	
१२८. महात्रिपुरसुन्दरी वरिवस्या विधि	"	" २४८०३
१२९. महाषोडशी सहस्रनाम	"	कै० कै० २/२१७
१३०. महाराज्ञी कवच (श्लोक ६०)	"	र० मं० क० ११५४
१३१. मातंगी दीपदान विधि	"	बी० कै० १३१३, १२२६
१३२. मेघमाला, ११ अध्याय	"	बी० कै० १३१४
१३३. योगिनी दशा, श्लोक १८३	"	अ० ब० ९२५७
१३४. योगिनी विभाग (५०७ अ०)	"	सं० वि० वि० वा० २४३३४
१३५. योगिनी सहस्रनाम, श्लोक २००	"	रा० ला० ८७८
१३६. रजस्वला मन्त्रोद्धार श्लो० ४०	"	सं० वि० २५०६०
१३७. रजस्वला स्तोत्र	"	ए० बं० ६७३२
१३८. रसकल्प	"	ए० बं० ५८७१, बं० पं० १०८३
१३९. रसरत्नाकर श्लो० ५७८	"	डे० का० २४८
१४०. रस-हृदय, १८ पटल, पत्र ६७५	"	सं० वि० २६७०५, ट्रिं० कै० ११०९ ग
१४१. रसार्णव-कल्प (रसकल्प)	"	ए० बं० ५८७०

(पारद से विविध रसों का निर्माण-शोधन, मारणादि)

१४२. राज्ञी पंचांग, प० ४६४	"	र० मं० ४८४६
१४३. राधा सहस्रनाम, पद्य ३१७	"	रा० ला० ३१२४
१४४. रामनाम लिखन विधि	"	रा० ला० ४२१७
१४५. रामनाम प्रयोग चक्र	"	र० मं० ११२१, सं० वि० २४७६६
१४६. राम मन्त्र विधि	"	सं० वि० ४३९७१
१४७. राम सहस्रनाम (अकारादि क्रमेण)	"	ए० बं० ६७६५
१४८. रुद्रचण्डी (चार अध्याय)	"	ए० बं० ५८७२, सं० वि० २५२३१
१४९. रुद्रचण्डी कवच	"	बं० प० ११४८
१५०. रुद्रयामल-तन्त्र	"	(परिचय में देखें, अनेक प्रतियां प्राप्त हैं)
१५१. वंश कवच	"	बं० प० ४३३ क
१५२. बगलामुखी कवच	"	बं० प० ८०१
१५३. बगलामुखी दीपदान	"	बी० कै० १३१७
१५४. बगलामुखी त्रैलोक्य विजय कवच	"	ए० बं० ६३९१, र० मं ४८५१
१५५. बगलामुखी पंचांग	"	सं० वि० २४२०५
१५६. बगलामुखी रहस्य	"	अ० बं० १०६६१
१५७. वज्रपंजर सूर्य कवच	"	ए० बं० ६७८६
१५८. वरदगणेश-पंचांग	"	रा० पु० ५१२९, सं० वि० २५९७५
१५९. वर्णाभिधान, प० १९०	"	ए० बं० ६२६२, सं० वि० २४७४५
१६०. विज्ञान भैरव/ विज्ञान भट्टारक	"	ने० द० २/२४६ डी०
१६१. विधान-मुक्तावली (रु० या० मतोत्सव)	"	"
१६२. विश्वावसु गन्धर्वराज तन्त्र	"	सं० वि० २५४६१

१६३. शकुन	"	र० मं० ४०४१
१६४. शक्ति पूजन विधि	"	अ० ब० ६५८०
१६५. शत्रुविमोचन बगला कवच	"	रा० ला० ६६०
१६६. शारदा-पंचांग	"	र० मं ४८४७
१६७. शारिका-भगवती पंचांग, पत्र ५०५	"	इ० आ० २५४६
१६८. शिवपंचांग, पत्र ५०६	"	र० मं ४८२०
१६९. शिव सहस्रनाम स्तोत्र	"	ब० पं० ५१०/ख ४४६
१७०. शिवसहस्रनाम गद्यमय नमोऽन्त	"	ए० बं० ६७४३
१७१. शिवाम्बु कल्प, पत्र १०४	"	र० मं० ११२३, सं० त्रि० २४५५१
१७२. श्यामास्तोत्र(महद् विशेषण)	"	ए० बं० ६३३५
१७३. षट्चक्रप्रपंच	"	ब० पं० १२१२
१७४. षटचक्रप्रपंच विवरण	"	सं० त्रि० २४६४६
१७५. षष्ठीविद्या प्रशंसा (१२५०६० श्लोक)	"	ने० द० २/३६१ डी०
१७६. षोढान्यास क० ४००, ख० २२०	"	अ० ब० ७१४१, ११७३०
१७७. संवित् सेविनो मन्त्र	"	अ० ब० ८३३४
१७८. सदाशिव-कवच	"	बं० पं० ८६२
१७९. समयाचार तन्त्र	"	सं० वि० २३६२४
१८०. समयाष्टक (कोलाचार क्रम सदाचार)	"	सं० त्रि० २५३८३
१८१. सर्वज्वर विपाक ज्वर चिकित्सा	"	बी० कै० १३१५
१८२. सर्वमंगल मन्त्र पटल	"	र० मं० ४६४४
१८३. साम्राज्य षोडशी लघुमकरन्द स्तोत्र	"	र० मं० १०६४
१८४. सुदर्शन चक्र	"	र० मं० २६७३
१८५. सुमुखी पंचांग,	"	रा० पु० ६६ क

१८६. सुमुखी पटल		
(उच्छिष्ट मातंगी आदि)	"	ए० ब० ६३०९ (२)
१८७. सुमुखी विधान	"	रा० पु० ७६९२
१८८. सूर्य पंचांग	"	सं० वि० २५२२४
१८९. सूर्य पटल	"	ए० बं० ५८८८
१९०. स्वर्णाकर्षण		
भैरवदीप-प्रकाश	"	सं० वि० २५८७५
१९१. हनुमत्कल्प	"	सं० वि० २६१८१
१९२. हनुमत्कवच	"	ए० बं० ६७८०

उपरि वर्णित ग्रन्थों की सूची के अतिरिक्त भी अनेक स्तोत्र और अन्यान्य तान्त्रिक विषयों के विवेचक छोटे-बड़े ग्रन्थों में भी रुद्रयामल का विषय प्रतिपादित है। यह एक स्वतन्त्र गवेषणा का विषय ही है कि महान् उत्तरवर्ती आचार्यों ने अपने कथन तथा विवेचन की पुष्टि के लिए कहां-कहां रुद्रयामल के वचनों को उद्धृत किया है। हम इसी प्राप्त सामग्री के आधार पर कुछ आवश्यक, अनति प्रसिद्ध और सर्वोपयोगी महत्त्वपूर्ण प्रयोगों का संक्षिप्त परिचय एवं प्रयोग-विधि सहित मूल-पाठ के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

विषय की विविधता, पाठकों की आवश्यकता, कर्म की उपयोगिता एवं स्वल्प प्रयास से करणीय विधानों की बहुलता के साथ ही अनेक तान्त्रिक-प्रक्रियाओं का परिचय आस्तिक साधकों को प्राप्त हो और वे अपनी साधना-सरणि में परिष्कार लाते हुए निरन्तर आगे बढ़ें—यह दृष्टि इस विवेचन में प्रस्तुत रूप से संकलित है।

आज तक 'उत्तर तन्त्र' के नाम से 'रुद्रयामल' का प्रकाशन हुआ है जिसमें योग-तन्त्र का ही अधिक विस्तार से वर्णन हुआ है। इस ग्रन्थ में हमने उपर्युक्त रुद्रयामल के नाम से विख्यात पाण्डु-लिपियों का परिश्रमपूर्वक अवलोकन करके उनमें से बहुत से प्रयोगों का विस्तृत विचार, विधि और अन्यान्य तन्त्र ग्रन्थों में उनसे सम्बद्ध मन्त्रादि का भी परिचय इसमें जोड़ दिया है। यह स्वाभाविक है कि हजारों वर्षों से चली आ रही साधना-परम्परा में साधकों को गुरु-कृपा से प्राप्त और स्वानुभव से सिद्ध विधि-विधानों से यत्र तत्र न्यूनाधिकता प्रविष्ट हुई हो, किन्तु उनका मूल रुद्रयामल में निश्चित ही विद्यमान है।

पूर्वकाल में आचार की दृष्टि से मद्य-मांस-पशु बलि आदि का प्रयोग सशक्त साधक किया करते थे और यह देशाचार तथा साधक के आहार-व्यवहार पर भी निर्भर था। 'यदन्नो वै पुरुषस्तदन्ना वै देवाः' इस उक्ति के अनुसार जो व्यक्ति जिस प्रकार का आहार लेते थे, वे वैसा ही नैवेद्य भी अर्पित करते थे, किन्तु आज स्थिति वैसी नहीं है। अतः हमने ऐसे विषयों से पूरी तरह बचने का प्रयास किया है। शुद्ध दक्षिणाचार का ही हमें ज्ञान है, यह भी इसमें एक कारण है।

यामलीय उपासना-दृष्टि

'यामल' शब्द की परिभाषाओं में एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि—**'यामिनी-विहितानि कर्माणि समाश्रीयन्ते तत् तन्त्रं नाम यामलम्'**—अर्थात् रात्रि में विहित कर्मों का जिसमें आश्रय लिया जाए वह तन्त्र 'यामल' है। इस कथन से यह अभिप्राय लिया जाता है कि तान्त्रिक साधनाएं गुप्त रखनी चाहिएं, इस दृष्टि से यामलोक्त उपासना-कर्म रात्रि में करने का निर्देश है। इसमें यह भी अभिप्राय समाविष्ट है कि रात्रि जागरणपूर्वक कठिन साधना की प्रक्रिया यामलों में कही गई है। गीता के वाक्य—'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी' भी इसमें हेतु माना गया है। यह भी कहा जाता है कि शिव का गुप्त रहस्य शक्ति और शक्ति का गुप्त रहस्य शिव ही जानते हैं, और शिव-शक्ति के गुप्त रहस्य को जो जानता है, वह साधक यामलीय उपासना कर सकता है अथवा करता है। यामल की महिमा वर्णन करते हुए भी कहा गया है—

ये जानन्ति महाकालयामलं कलिपावनम्।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं करे तस्य न संशयः॥
यस्माद् रुद्रो भवेज्ज्ञानी नानातन्त्रार्थपारगः।
यामिनीविहितं कर्म कुलतन्त्राभिसाधनम्॥
महावीरहितं यस्मात् पंचतत्त्वस्वरूपकम्।
लङ्घनं नास्ति मे नाथ! अस्मिन् तन्त्रे सुगोपनम्॥
ततो यामलमाख्यातं चन्द्रशेखर शंकर!

यदि नो पठ्यते तन्त्रं यामलं सर्वशंकरम् ॥
तदा केन प्रकारेण साधकः सिद्धिभाग् भवेत् ।

इस दृष्टि से शिव-शक्ति की अभेद भावना यामलीय उपासना का लक्ष्य है और ऐसी भावना हो जाने पर अनुग्रह की प्राप्ति होती है। उनके अनुग्रह से ही महान् सुख मिलता है तथा वह मोक्ष प्राप्त करता है। इस को भाव, अनुग्रह, महासुख, ज्ञान और मोक्ष तक पहुंचाने में सक्षम मार्ग कहा है। निरतिशय सुख ही मोक्ष को उपलब्ध कराता है और वैसा सुख तन्त्र शास्त्र द्वारा प्रतिपाद्य ज्ञान का हेतु होते हुए भी समस्त संसार के अधिष्ठाता परम शिव और उनकी प्राण शक्ति रूप त्रिपुर-सुन्दरी के सायुज्य के बिना आस्वादित होना कथमपि सम्भव नहीं है। अतः यामल प्रोक्त उपासना आवश्यक है।

यामल के लक्षणों में **'नित्यकृत्य-प्रदीपन'** तथा **'क्रमसूत्र'** का निर्देश महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों लक्षणों की पूर्ति में 'यामलीय उपासना-दृष्टि' सर्वात्मना अभिव्यक्त है। नित्यकृत्य में ब्राह्ममुहूर्त में शय्यात्याग के पश्चात् करणीय कर्मों का व्यवस्थित कथन करते हुए सम्पूर्ण दिन की चर्याओं का क्रम निर्दिष्ट है तथा शयनकाल तक की पूरी प्रक्रिया पर पूरा सांगोपांग विमर्श प्रस्तुत है और उपासना की विविधता को लक्ष्य में रखकर क्रमसूत्रों में 'पंचांग' कथन अति महत्त्वपूर्ण है। 'पंचांग' के विषयों का महत्त्व और स्पष्टीकरण 'पंचांग' में—'१. पटल, २. पूजा पद्धति, ३. कवच, ४. सहस्रनाम और ५. स्तोत्र' इन पांच अंगों का संकलन रहता है। प्राचीन ग्रन्थों में इन पांचों विषयों को देवता के शरीर के ही प्रमुख अंग माना गया है। यथा—

पटलं देवता-गात्रं पद्धतिर्देवताशिरः ।
कवचं देवता-नेत्रे सहस्रारं मुखं स्मृतम् ॥
स्तोत्रं देवीरसा प्रोक्ता पंचांगमिदमीरितम् । इत्यादि

अर्थात् पटल देवता का शरीर है, पद्धति सिर है, कवच दोनों नेत्र हैं, मुख सहस्रार (सहस्रनाम) और स्तोत्र देवता की रसना—जिह्वा है।

१. पटल—पटल शब्द की व्युत्पत्ति है—**'पाटयति दीप्यते यः सः पटलः ।'** 'पट्' धातु से कलच् प्रत्यय होने पर यह शब्द सिद्ध हुआ है और इसकी परिभाषा से ज्ञात होता है कि—'पटल में पूजा-विधि, मन्त्र

और बीजाक्षर के समस्त समूहों का रहस्य ग्रथित रहता है। उसके अध्ययन से सभी गूढ़ रहस्य स्वयं प्रकाशित होकर साधक के समक्ष आ जाते हैं। उपासना से सम्बद्ध विधि-विधानों को समझने के लिए पटल का ज्ञान अत्यावश्यक है, इसीलिए इसे देवता के शरीर की संज्ञा दी गई है। जैसे किसी वस्तु को पहचानने के लिए सर्वप्रथम उसका आकार-प्रकार, आकृति आदि को पहचानना आवश्यक होता है उसी प्रकार पटल से साधना के शरीर का ज्ञान आवश्यक है।

२. **पद्धति**—पद्धति का अर्थ है मार्ग। यह शब्द मुख्यतः पूजा-पद्धति के रूप में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार पूजा और उसकी पद्धति का परिचायक यह शब्द अपने आप में बहुत से विषयों को समाए हुए है। पूजा की परिभाषा कुलार्णव तन्त्र में इस प्रकार है—

पूर्वजन्मानुशमनादपमृत्युनिवारणात् ।
सम्पूर्ण-फलदानाच्च पूजेति कथिता प्रिये ! ॥

अर्थात् पूर्व जन्म के अशुभ कर्मों का शयन, अपमृत्यु का निवारण तथा सम्पूर्ण फल देने से इसका नाम 'पूजा' है। पूजा की एक विशिष्ट पद्धति निर्धारित है जिसमें मन्दिर-प्रवेश, द्वार पूजन, आसन स्थान पूजा, आसन-स्थापनादि से आरम्भ कर उद्वासन तक की क्रियाओं का समावेश होता है। ये विषय इतने व्यापक एवं उपयोगी हैं कि इनकी स्वतन्त्र पुस्तकें बनी हैं जिनमें वैदिक, स्मार्त और तान्त्रिक पद्धतियां संकलित हैं। पूजा-पद्धति से मानसिक व्यापार (क्रिया-कलाप) में एकाग्रता और तन्मयता आ जाती है। साथ ही एक पवित्र व्यवस्था भाव का उदय होता है, जिससे निर्मल बने हुए मन में देवतानुशासन के साथ आत्मानुशासन की भावना का विकास होता है। इस आत्मानुशासन की प्रतिष्ठा से जीवनचर्या में एक अलौकिक सफलता की कुंजी साधक को प्राप्त होती है। अपमृत्युनिवारण और ऐहिक, आमुष्मिक पापक्षय तो देवता की कृपा से स्वयं सिद्ध है। पूजा की पद्धतियों में ही दक्षिण और वाम आचार भी आते हैं, जिनका विवेचन यथासमय किया जाएगा।

३. **कवच**—'कव' ग्रहणे धातु से निष्पन्न यह शब्द बनता है। काली तन्त्र की टीका में कहा है कि—'बाह्य एवं आन्तरिक कामनाओं

पर नियन्त्रण रखने के लिए 'कवच' की आवश्यकता है। यह कवच पाठ द्वारा देवताओं का साधक के समस्त शरीर के अवयवों तथा दिशाओं में न्यास करने से सहज साध्य है।' यह ठीक भी है, क्योंकि लौकिक दृष्टि से कोई भी योद्धा अपने अंग-प्रत्यंगों की रक्षा के लिए युद्ध में जाने से पहले कवच धारण करता ही है।

पृथक् तत्त्वों का पारस्परिक सम्बन्ध और आकर्षण काम शक्ति पर आधारित है। इस प्राकृतिक शक्ति का सभी जीवित प्राणियों में निवास है, इसके द्वारा जहां असीम सुख प्राप्त होता है, वहीं अत्यन्त पीड़ा भी उत्पन्न होती है। इसीलिए इसे पशु-प्रकृति कहा है। इस पर नियन्त्रण रखने के लिए प्राचीन महर्षियों ने सर्वाधिक बल दिया है और इसके अनेक उपाय भी बतलाए हैं। कवच-पाठ पूर्वक वैसी भावना से यह सहज सम्भव है। कुत्सित भावनाओं और अनिष्ट परिणामों से सुरक्षा प्राप्त करने का सहज उपाय 'प्राणिमात्र में देवत्व बुद्धि रखना और स्वयं को देव रूप मानना' है। यह कवच-पाठ से प्राप्य है।

कवच के प्रयोग की दिशाएं—प्रत्येक देवता के कवच के अन्त में फलश्रुति दी जाती है जिसमें लिखा रहता है कि—१. इस कवच के पाठ से रक्षा होती है। २. इसको किसी विशिष्ट पर्व पर भूर्जपत्र आदि लेख्य वस्तु पर स्याही आदि से लिखकर धारण करना चाहिए। ३. कवच-पाठ का पुरश्चरण। ४. कवच-पाठ द्वारा भस्माभिमन्त्रण, जलाभिमन्त्रण कवच (ताबीज) निर्माण, ५. कवच द्वारा अभिमार्जन, ६. वस्त्रादि से झाड़ना आदि। इनके अतिरिक्त एक प्राचीन हस्तलिखित पद्धति से यह भी प्राप्त हुआ है कि कवच-पाठ में अन्य सूक्तों और प्रत्येक स्थान की रक्षा के लिए प्रार्थित देवता के मन्त्रों का जप भी इसमें किया जाता है। इसे 'कवचीकरण' कहा जाता है। 'कवची-मन्त्रगणों' का शास्त्रीय प्रयोग अत्यन्त प्रभावशाली होता है। सम्भवतः इसीलिए दुर्गासप्तशती के 'ब्रह्मकवच' के अन्त में कहा गया है कि—

पदमेकं न गच्छेद् वै यदीच्छेच्छुभमात्मनः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कवची भव सर्वदा॥
कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रापि गच्छति।
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सर्वकामिकः॥ इत्यादि

इसी प्रकार श्रीविद्या से सम्बद्ध एक 'उद्घाटन-कवच' भी रुद्रयामल में प्राप्त होता है, जो कि शरीरस्थ चक्रों के उद्घाटन की प्रार्थना से सम्बन्ध रखता है।[1]

४. सहस्रनाम—आराध्य देवता के एक सहस्र, अष्टोत्तर सहस्र अथवा अधिक नामों का संग्रह 'सहस्रनाम' कहलाता है। यह संग्रह किसी विशेष दृष्टि से चुने हुए नामों की परिणति है। इनका सम्बन्ध शरीरस्थ अन्तर्नाडियों से भी माना गया है। ७० हजार नाड़ियों वाले देह में सहस्रनाड़ियों की प्रमुखता होने से उनका प्रबोधन इन नामों के स्मरण से होता है। कन्दाकार में प्रसुप्त इन नाड़ियों का प्रबोधन होने से साधना में सफलता मिलती है। मस्तक में स्थित सहस्रदल-कमल की पंखुड़ियों से भी इसका सम्बन्ध है। उसे मानें तो इनके स्मरण से अमृत की प्राप्ति होती है, ऐसा समझना चाहिए। जैसे वृक्ष में मूल से शिखा-पर्यन्त एक ही रस व्याप्त रहता है, परन्तु पत्र, शाखा और पुष्पादि नाना रूपों में वृक्ष व्यक्त होता है, उसी प्रकार विश्व में एक ही शक्ति नाना रूपों में प्रकट होती है, उसी को महाशक्ति कहते हैं। वे विभक्त स्वरूप मूल में एक होने के कारण पुनः एक होने का प्रयास करते हैं। वस्तुओं के पारस्परिक भौतिक और मानसिक विघटन-संघटन में यही एक से अनेक और अनेक से एक हो जाने की इच्छा मूल कारण है। इसी इच्छा का नाम शक्ति है। एक से अनेक और अनेक से एक होने की इच्छा जिस सर्वोच्च सत्ता की है, उसी के आधार पर यह विश्व व्यापार चल रहा है। उसी सर्वोच्च सत्ता का सहस्रों नामों से ज्ञानी, विद्वान् साधक स्तवन करते हैं। ऐसे स्तवनों से मन धीरे-धीरे निर्मल होता है तथा उसमें मूल शक्ति के प्रति भक्ति-प्रीति उत्पन्न होती है जिसके द्वारा इस संसार से निस्तार अथवा पुनः उस सत्ता में लय सम्भव है।

ये सहस्रनाम ज्योतिष और धर्मशास्त्रों के अनुसार अनिष्ट-कारिणी ग्रहदशा, अन्तर्दशा आदि में अनिष्टों की शान्ति एवं ईश्वर-कृपा-प्राप्ति के अन्यतम उपाय हैं। 'तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत्, शिवसाहस्रकं जपेत्, सूर्यसाहस्रकं जपेत्' आदि वचन इसके प्रमाण हैं।

---

१. इसका मूल पाठ भी आगे श्रीविद्या प्रयोगों में दिया गया है।

सहस्रनामार्चन की विधि से—अयुतार्चन, लक्षार्चन और कोट्यर्चन की विधियां बनी हैं, दीपार्चन के प्रयोग भी मिलते हैं और विभिन्न काम्य-प्रयोग भी इनके द्वारा किए जाते हैं जिन्हें हम फलश्रुति और अन्य आगम ग्रन्थों से प्राप्त कर सकते हैं।[1]

५. **स्तोत्र**—कुलार्णव-तन्त्र के १७वें उल्लास में कहा गया है कि—

स्तोक-स्तोकेन मनसः परमप्रीतिकारणात्।
स्तोत्रसन्तरणाद् देवि! स्तोत्रमित्यभिधीयते॥

इसके अनुसार स्तोत्र से मन की प्रसन्नता, कष्टों से सन्तरण एवं इष्ट देव की प्रीति-कृपा प्राप्त होती है। स्तोत्र में देवता का गुणानुवाद, आत्मनिवेदन तथा इच्छा सम्प्राप्ति की प्रार्थना तो रहते ही है, साथ ही उनमें देवता सम्बन्धी बीजमन्त्र, तन्त्र, यन्त्र और विधान भी रहते हैं, जिनका अभिप्राय यह रहता है कि स्तोत्र पाठ के साथ ही मन्त्रजपादि भी होते रहें। स्तोत्र पाठ से श्रद्धा जागृत होती है, आत्मविश्वास दृढ़ होता है और इन दोनों के आधार से बुद्धि और निर्णय का बल प्राप्त होता है। मानसिक शक्ति के विकास का यही मूल आधार है। अतः स्तोत्र पाठ को उपासना में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है।

रुद्रयामल इस उपासना-दृष्टि को सर्वसुलभ बनाने के लिए अनेक देवताओं के पंचांगों का आख्यान करता है। इन पंचांगों का गम्भीरता से अध्ययन होना चाहिए, अनुशीलन होना चाहिए तथा इनमें निर्दिष्ट रहस्यों को समझने-समझाने के लिए अन्य तन्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए।

यामल-ग्रन्थों की उपासना-दृष्टि अति विशाल है। इसमें केवल मन्त्र जप अथवा स्तोत्र पाठ आदि ही पर्याप्त नहीं माने गए हैं, अपितु उपासना के विविध पक्षों को उजागर करने का भरसक प्रयास किया गया है। भारतीय जीवन-पद्धति के मनोरम पक्ष को अनावृत्त करने के लिए यहां अनेक यौगिक क्रियाओं तथा औषध-प्रयोगों का भी कथन हुआ है। सर्वसाधारणोपयोगो तीर्थ, आश्रम, धर्म, व्रत, शौच-अशौच,

---

१. हमने 'सहस्रनाम-स्तोत्र' पर विस्तार से विवेचन किया है, जिसे **श्री बटुक-भैरव-साधना** और **स्तोत्रावली** की भूमिकाओं में देखना चाहिए।

राजधर्म, दानधर्म, युगधर्म, व्यवहार और अध्यात्म का वर्णन करके इस शास्त्र की सार्वभौमता को भी सिद्ध किया गया है। इसकी एक और विशेषता यह है कि इसमें किसी प्रकार का साम्प्रदायिक दुराग्रह नहीं है और न कोई आचार का आग्रह है। उपासना का राजमार्ग प्रदर्शित है, जिस पर गुरु की आज्ञा से चलते रहने पर इहलोक और परलोक दोनों में अभीष्ट-सिद्धि मिलती है। अतः यह निर्भीकतापूर्वक कहा जा सकता है कि—

'एष निष्कण्टकः पन्थः एष पन्थः सनातनः।'

यह कण्टक-रहित मार्ग है, यह सनातन मार्ग है।

रुद्रयामल में वर्णित साधनोपयोगी चक्र

मन्त्र-साधना के लिए दीक्षार्थी शिष्य को गुरु किस देवता के मन्त्र की दीक्षा प्रदान करे, यह विषय शिष्य के भावी हित को ध्यान में रखकर गुरु को करना चाहिए। इस दृष्टि से रुद्रयामल में विस्तार से वर्णन किया गया है। इस तत्त्व का निर्णय लेने के लिए कतिपय चक्रों का आश्रय आवश्यक मानकर यहां प्रमुख रूप से १६ चक्र तथा अवान्तर रूप से कुछ अन्य चक्रों के नाम और ज्ञानविधि उल्लिखित है। यथा—

आदावकडमं प्रोक्तं श्रीचक्रञ्च कुलाकुलम्।
ताराचक्रं राशिचक्रं कूर्मचक्रं तथा परम्॥
शिवचक्रं विष्णुचक्रं ब्रह्मचक्रं विलक्षणम्।
देवचक्रं ऋणि-धनि उल्काचक्र ततः परम्॥
वामाचक्रं चतुश्चक्रं सूक्ष्मचक्रं ततो वदेत्।
तथाऽकथहचक्रं च कथितं षोडशं प्रभो॥
एतदुत्तीर्णमन्त्रञ्च ये गृह्णन्ति नरोत्तमः।
तेषामसाध्यं जगति न किंचिद् वर्तते ध्रुवम्॥
किमन्यत् कथयामीह देवता दर्शनं लभेत्।

द्वियीय पटल—१२६ से १३२॥

इन चक्रों के रचना-प्रकार भी वहीं दिखाये गये हैं। अधिकारी भेद से चक्रों की उपयोगिता दिखलाते हुए कहा गया है कि वैष्णव

मन्त्रों के लिए तारा शुद्धि, शैव मन्त्रों के लिए कोष्ठशुद्धि, शाक्त मन्त्रों के लिए शशि शुद्धि, गोपाल मन्त्रों के लिए अंकडम-शुद्धि अपेक्षित है। इसी प्रकार बाला, भैरवी कुमारी, ललिता, कुरुकुल्ला आदि के साधन में श्रीचक्र, योगिनी आदि के साधन में ताराचक्र, उन्मत्त भैरवी विद्या आदि के साधन में राशिचक्र, प्रत्यंगिरा और उल्का आदि विद्याओं के साधन में राशिचक्र, शिवचक्र कालिका, विमला, सम्पत्प्रदा भैरवी आदि के साधन में विष्णुचक्र, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, कृत्या, नक्षत्र विद्या, कामाख्या और ब्रह्माणी के साधन में ब्रह्मचक्र, वज्र-ज्वाला, महाविद्या, गुह्यकाली और कुब्जिका के साधन में देवचक्र, अट्टहासा कामेश्वरी, राकिणी, मन्दिरा आदि के साधन में ऋणिधनि चक्र तथा श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी पृथ्वी, वीणा, वामनी आदि की साधना में उल्काचक्र का प्रयोग करने का आदेश दिया है। किन्तु इन सब चक्रों में अधिक महत्त्वपूर्ण **'अकथह चक्र'** को ही बतलाया है। इस चक्र का ज्ञाता-साधक इस लोक में सुख प्राप्त करके अन्त में मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है। ऐसा कहा गया है।

१. अकडम-चक्र

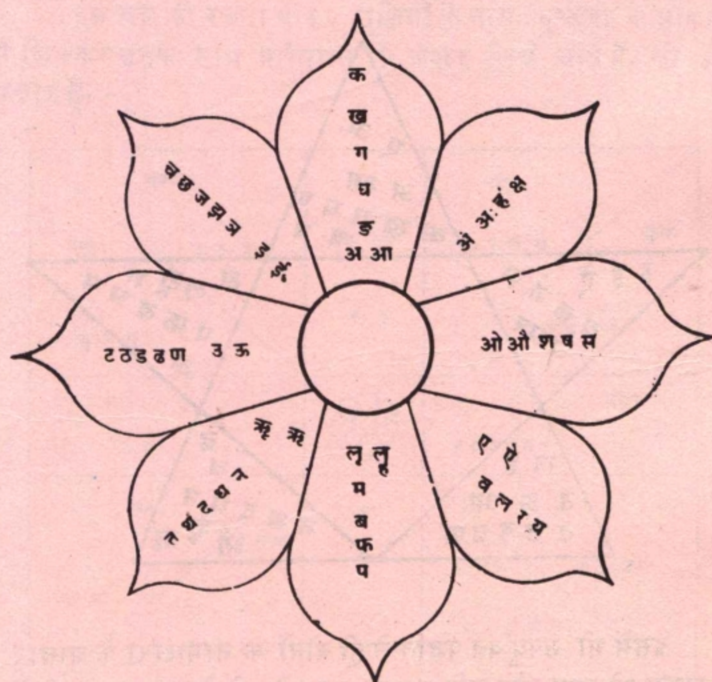
यह चक्र जन्म-कुण्डली के आकार में बनाया जाता है तथा इसमें अ से क्ष तक के अक्षर (कुल ४८) लिखे जाते हैं। यथा—

ङ आ य अः ध
ट अ क्ष
ण ड अ अ क ड म ख
र ठ
औ
त घ ई फ
ल
ञ
ओ
उ व
ध छ ऐ श
ढ़
थ
ह
द च ऊ श न ज ग म

इस चक्र में साधक के नाम का प्रथम अक्षर और मन्त्र अथवा देवता के नाम का प्रथम अक्षर देखें और स्थानों की गणना में (१) सिद्धि, (२) साध्य, (३) सुसिद्ध और (४) अरि के क्रम से गिनें। इस गणना में अरि स्थानीय वर्ण देवता को छोड़कर शेष सुसिद्ध, सिद्ध और साध्य उत्तम, मध्यम तथा सामान्य माने गए हैं।

२. अष्टदल-पद्म चक्र

इस चक्र की रचना अष्टदल-कमल के आकार में की जाती है। यथा—

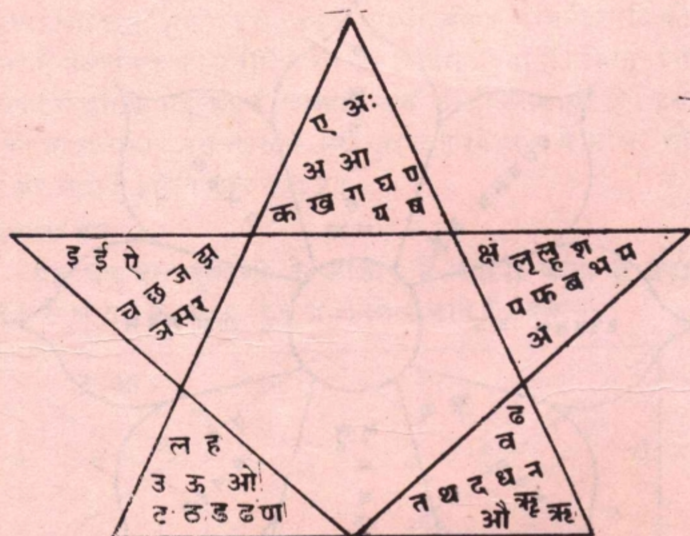


इसमें भी साधक के नाम का प्रथम अक्षर तथा देवता के नाम का प्रथम अक्षर के क्रम से गणना की जाये। सुख, राज्य, धन, विद्या, यौवन, आयुष्य, जीवन और मरण के क्रम से उनकी गणना में मरण-

स्थान का सर्वथा त्याग करे तथा अन्य सात स्थानों के अक्षरों का फलानुसारी ग्रहण करें। इनमें जीवन वाला स्थान सर्वोत्तम बताया गया है।

३. कुलाकुल-चक्र

यह पांच कोणों वाले यन्त्र के आकार में बनता है तथा उनमें बने पांचों कोष्ठक (१) पृथ्वी, (२) जल, (३) तेज, (४) वायु और (५) आकाश के प्रतीक मानकर उनमें ५० अक्षर लिखे जाते हैं। यथा—



इसमें भी उपर्युक्त पद्धति से ही दोनों के नामाक्षरों के आधार पर गणना की जाए और यदि एक ही तत्त्व के दोनों अक्षर हों तो वे समान कुल होने से उत्तम, पृथ्वी का वरुण मित्र, अग्नि का वायु मित्र, आकाश सभी का मित्र है—ऐसा देखकर विचारपूर्वक उपासना की प्रवृत्ति की जाए। शत्रुस्थानीय वर्ण अकुल मानकर छोड़ दिया जाए।

४. तारा-चक्र

अश्विनी आदि नक्षत्र और वर्ण मातृका की दस रेखाओं के कोष्ठक से बने चक्र द्वारा यह निर्मित होता है। यहां उपर्युक्त पद्धति से अक्षरों की गणना में (१) स्वजाति उत्तम और (२) भिन्न जाति मध्यम मानी गई है। मनुष्य और राक्षस में नाश, देवता और राक्षस में वैर, जन्म नक्षत्र का त्याग आदि विचार के पश्चात् मन्त्र ग्रहण करना चाहिए।

५. राशि-चक्र

इस चक्र की रचना में १२ राशियों के नाम 'कुण्डली' के आकार में लिखकर उनके साथ वर्णमाला के अक्षर लिखे जाते हैं, जो इस प्रकार हैं—

वृषभ
मेष
मीन
मिथुन
उ ऊ ऋ
अ आ
य र ल व
कुम्भ
इ ई
प फ ब भ म
ॠ ऌ ॡ
कर्क
मकर
ए ऐ
त थ द ध न
सिंह
तुला
धनु
कन्या
वृश्चिक
ट ठ ड ढ ण
ओ औ
अ अः
च छ ज झ ञ
श ष स ह क्ष
क ख ग घ ङ

इसके आधर पर अपने नाम का आदि वर्ण और मन्त्र का आदि वर्ण लेकर अपनी राशि से मन्त्र वर्ण की राशि तक गणना करके राशि शुद्धि देखें। इनमें ६, ८ और १२ त्याज्य हैं। जन्मराशि स्थित मन्त्र से सिद्धि। धन स्थान से धन प्राप्ति एवं अन्य स्थानों से उन-उन स्थानों के

अनुसार फल जानना चाहिए। ये स्थान क्रमशः तनु, धन, सहज, सुहृत्, सुत, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय के रूप में माने जाते हैं।

६. कुलाकुल-चक्र

यह चक्र पंचतत्त्वों के आधार पर बनता है तथा इसमें लिखे वर्णों के आधार पर फल का विचार किया जाता है। साधक के नाम का पहला अक्षर तथा मन्त्र का पहला अक्षर एक कोष्ठक में आने पर स्वकुल मानें और वह उत्तम है। अन्य कोष्ठकों के अनुसार— पृथ्वी का जल मित्र, अग्नि का वायु मित्र, पृथ्वी के वायु तथा अग्नि शत्रु, जल का अग्नि शत्रु और आकाश सबका मित्र है। ऐसा देखकर मन्त्र ग्रहण करें। शत्रु होने पर मन्त्र-ग्रहण नहीं करना चाहिए। स्वकुल और मित्र दोनों हो तो वह और भी उत्तम होता है। मन्त्र देवता का कुलाकुल निर्णय भी इससे किया जाता है। इस चक्र का स्वरूप इस प्रकार है—

वायु	अग्नि	पृथ्वी	जल	आकाश
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ
ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	स	ह	ज्ञ	क्ष

७. अकथह-चक्र

सोलह कोष्ठकों से निर्मित इस चक्र में वर्णमाला के अक्षरों की स्थापना करके (१) सिद्ध, (२) साध्य, (३) सुसिद्ध और (४) अरि के क्रम से साधक के नाम के आद्याक्षर एवं मन्त्र के आद्याक्षर का फल देखा जाता है। इनका फल सिद्ध—बान्धव, साध्य—सेवक, सुसिद्ध—पोषक और अरि को धातक समझना चाहिए। चक्र की आकृति इस प्रकार है—

सिद्ध	साध्य	सुसिद्ध	अरि
१ अ क थ ह	२ उ ङ ष	३ आ ख द	४ ऊ च फ
५ ओ ड ब	६ लृ झ म	७ औ ढ श	८ लॄ य ञ
९ ई ध न	१० ऋ ज भ	११ इ ग घ	१२ ॠ छ व
१३ अः त स	१४ ऐ ठ ल	१५ अं ण ष	१६ ए ट र

ऐसे ही अन्य चक्रों के निर्माण और उसके आधार पर मन्त्र ग्रहण का निर्देश रुद्रयामल में विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

साथ ही यहां यह भी बतला दिया गया है कि—शक्तिकूट, वराह, सूर्य, पंचाक्षर, महामन्त्र, काली-तारी आदि के मन्त्रों का उपर्युक्त दृष्टि से सोधन उपेक्षित नहीं है।

यामल-प्रतिपादित ज्योतिष एवं धर्मशास्त्रीय विचार

वेदांग के रूप में मान्यता प्राप्त ज्योतिष शास्त्र की महत्ता सभी शास्त्रों ने स्वीकृत की है। ज्योतिष विश्व का नेत्र है जिसके केन्द्र भगवान् भास्कर हैं। तारामण्डल का केन्द्र भी यही कालात्मा है। प्रकाश की प्रकृति, रश्मियों की गति और वर्ण का प्राणिमात्र के साथ

सम्बन्ध, प्रभाव और परिणाम ज्ञात करना ज्योतिष का आधार है। ज्योतिषशास्त्र गणित और फलित के रूप में विकसित होने के साथ ही सूर्यादि ग्रहों की गति के आधार पर अच्छे और बुरे समय का निर्देश भी करता है। शुभ समय में किये गये कार्य शुभ फल देते हैं और अशुभ समय में अशुभ। इस दृष्टि को आगाम-तन्त्र तथा यामल ग्रन्थों ने पूर्ण मान्यता दी है। इस प्रकार उपासना का यह भी एक अंग बन गया है।

स्थूल रूप से सर्वप्रथम जो संकल्प किया जाना है, उसमें तिथि, वार, नक्षत्रादि का स्मरण आवश्यक माना गया है। तिथियों की शुभाशुभता का परिज्ञान और नक्षत्रों की स्थितियां तथा उनके परस्पर योग से होने वाले पर्व, महायोग और उनका निश्चित काल जानने के लिए ज्योतिष ही एक आश्रय है। किस समय कौन-सा कर्म करना उत्तम रहेगा ? किस वार के दिन पुष्य आदि नक्षत्र आयेंगे ? ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न एवं चन्द्रबल आदि का निर्णय ज्योतिष के आधार पर ज्ञात करके कर्म आरम्भ करना चाहिए, ऐसा तन्त्र शास्त्रों का प्रत्यक्ष आदेश है। अतः रुद्रयामल में भी इसका पूरा निर्वाह हुआ है।

सूक्ष्म रूप से तान्त्रिक मतानुसार सूर्य, चन्द्र और अग्नि का समीकरण यथा प्रबोधन आत्म साक्षात्कार का मार्ग है। मेरुदण्ड में विद्यमान इडा, पिंगला और सुषुम्ना—सूर्य, चन्द्र और अग्नि के प्रतीक हैं। व्यक्ति का शरीर अपने आप में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है। शरीर के विभिन्न अंग इन तेजः पुंजों से ही विविध कार्य करते हैं। भौतिक शरीर पर ग्रहादि का प्रभाव किस प्रकार होता है ? इस रहस्य को वैज्ञानिक दृष्टि से पहचानकर ज्योतिष शास्त्र में ग्रहादि के माध्यम से व्यक्त किया गया है। काल के महत्त्व को सर्वोपयोगी व्यक्त करते हुए ज्योतिष शास्त्र ने उसकी सूक्ष्माति सूक्ष्म व्यवस्थाएं दी हैं। इसीलिए इष्टदेव को आगमिक स्तोता 'गणेश ग्रह-नक्षत्र-योगिनी-राशि'-रूपी मानकर उसकी स्तुति करता है।

रुद्रयामल में ज्योतिष शास्त्र को महत्त्व देते हुए प्रत्येक देव की विशिष्ट दीक्षा प्राप्त करने के लिए शुभ समय कौन-कौन-से हैं इसका निर्देश किया है। उपासना आरम्भ करने तथा उसकी सिद्धि के लिए पर्व-दिवसों की व्यवस्था के साथ ही विशिष्ट मुहूर्तों की भी

स्पष्टता की है। तान्त्रिक संकल्पों में किये जाने वाले अहर्गणों के स्मरण में प्रचलित पंचांगों के अतिरिक्त तत्तद् देवताओं के, नित्याओं के वर्णमातृकाओं के और ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार आदि के नाम-निर्देश एवं उनकी गणनाविधि के प्रयोग पर भी बल दिया है। **'काल-चक्र जातक'** नामक ग्रन्थ ऐसे ही विषयों पर संकलित है।

धर्मशास्त्र और ज्योतिष के साहचर्य से कर्म करने पर ही साधना की सम्पन्नता सिद्ध करते हुए रुद्रयामल में विशिष्ट पर्वों के सूक्ष्म-निर्णय भी दिये हैं। हमारे यहां सर्वाधिक प्रसिद्ध नवरात्रि के पर्व पर आने वाली ज्योतिषशास्त्रीय कठिनाइयों का विवेचन भी यहां विस्तार से हुआ है। यथा––

आश्विने मासि सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे विधोस्तिथिम्।
प्रारभ्य नवरात्रं स्याद् दुर्गा पूज्या तु तत्रवै॥

इत्यादि कथन से आरम्भ करके इन नवरात्रि के दिनों में उपवास और एक बार भोजन के नियम, पूरे आठ अथवा नौ दिन का उपवास होने पर पारणा करने का फल निर्देश, सात उपवास करना अथवा आठ, नवमी को पारण किया जाए अथवा दशमी को' इत्यादि विषयों पर विस्तार से चर्चा करते हुए निर्णय दिया है। यथा—

दुर्गोत्सवे स्मृतं देव! उपवासस्य सप्तकम्।
अष्टमे दिवसे होमस्ततः किंचित् तु भक्षयेत्॥
यो मोहात् पारणं कुर्याद् दशमे दिवसे विभो!।
तद् राष्ट्रं नाशमायाति दुर्भिक्षादि भवेन हि॥

नवरात्रि का ज्योतिषशास्त्र में अत्यधिक सूक्ष्मता से विचार किया गया है। वहां कहा गया है कि जिस प्रकार कालचक्र के विभागानुसार एक दिन रात में चार सन्धिकाल होते हैं, उसी प्रकार देवताओं के एक वर्षीय दिन-रात में भी चार सन्धिकाल होते हैं। ये ही दो अयन-परिवर्तन उत्तरायण और दक्षिणायन छह-छह माह के होते हैं। एक वर्ष में दो अयन-परिवर्तन की सन्धि और दो गोल-परिवर्तन की सन्धियां ही नवरात्रियों के पर्वों की सूचक हैं। यथा—

१. प्रातःकाल (गोल सन्धि) चैत्रीनवरात्र।
२. मध्याह्न काल (अयन सन्धि) आषाढ़ी नवरात्र।

३. सायंकाल (गोल सन्धि) आश्विन नवरात्र।

४. मध्यरात्रि (अयन सन्धि) माघो नवरात्र।

इन चार नवरात्रियों में गोलसन्धि की नवरात्रियां चैत्र और आश्विन मास की हैं जो कि दिव्य अहोरात्र के प्रातः और सायंकाल की सन्धि में आती हैं। इन्हें हमारे यहां विशेष रूप से मनाने का विधान है। भारतीय उपासना-विधानों में सन्धिकालों को विशेष महत्त्व मिला है, क्योंकि इन कालों में नक्षत्रों के गुण धर्म, प्रकृति के सूक्ष्म तत्त्व और ग्रह-पिण्डों की रश्मियों के तत्त्व, उनका प्रत्यावर्तन तथा संक्रमण पृथ्वी के समस्त प्राणियों को प्रभावित करता है। शक्तिस्रोतों का भण्डार मानव का मस्तिष्क इस समय सृष्टि, स्थिति और संहार की शक्ति अर्जित करता है, इसीलिए त्रिगुणात्मिका शक्ति की उपासना का यह उत्तम काल माना गया है। इसमें भी शुक्लपक्षीय प्रतिपदा से अष्टमी तक का समय चन्द्रलोक और भूलोक के समय चक्रानुसार पीयूष पिण्ड चन्द्र को सूर्य रश्मियों से प्रतप्त होकर द्रवित करने वाला होता है, अतः यह समय देवी आराधना के लिये सर्वोत्तम माना गया है।

रुद्रयामल में सात दिन का उपवास तथा अष्टमी के हवन के पश्चात् पारणा करने का निर्देश है। यदि वैसा सम्भव न हो तो नवमी को पारणा करने का भी सूचन किया है। किन्तु दिन वृद्धि करने का तो पूर्ण निषेध ही किया है—

'न कुर्याद् दिनवृद्धिं तु दुर्गायाः पारणे विभो इत्यादि।

पर्वाराधन की महत्ता, प्रत्येक पर्व के समय का निर्णय, पर्वकाल में कर्त्तव्य-कर्मों का निर्देश, विधि और निषेधों का निर्णय आदि विषय ऐसे हैं कि इनकी तान्त्रिक-पद्धति से किये गये संकेतों द्वारा पूरा ज्ञान नहीं हो पाता है। यही कारण है कि रुद्रयामल में—प्रसंगानुसार इन विषयों पर भी पूरा प्रकाश डाला गया है। नवरात्रि में देवी-पूजा के विषय में और भी ज्ञातव्य बातों का उल्लेख हम आगे प्रयोग-विभाग में दुर्गा-सप्तशती के प्रसंग में करेंगे, अतः वहां भी देखे।

गणपति, भैरव, हनुमान आदि देवों की उपासना में नित्य पूजा, विशिष्ट पूजा, पुरश्चरण, नैमित्तिक पूजा और काम्यपूजा के पश्चात् बटुकों को भोजन कराना और देवी-पूजाओं के पश्चात् कुमारी-पूजा का माहात्म्य भी तन्त्र-सम्मत है। अतः रुद्रयामल में इस विषय पर भी

विचार किया गया है तथा पूजा-विधान और प्रार्थना स्तोत्र भी दिये हैं। साथ ही सौभाग्यवती सुवासिनी की पूजा का प्रयोग भी विस्तार से समझाया है।

ऐसे अनेक छोटे-बड़े किन्तु महत्त्वपूर्ण विषयों को ज्योतिष और धर्मशास्त्र के अनुसार मान्य रखते हुए तान्त्रिक समाधान देने से यह ग्रन्थ अपने क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान रखता है।

प्रत्येक मास में की जाने वाली विशिष्ट पूजाओं में कौन-कौन सी वस्तु का समर्पण होना चाहिए, यह बताने के लिए यहां श्रीविद्या-क्रम में उल्लेख किया गया है तथा किस वस्तु के समर्पण से क्या लाभ होता है, यह भी इसमें समझाकर साधना का मार्ग पूर्ण प्रशस्त किया गया है।

रुद्रयामल और योग-साधना

योगविद्या भारतवर्ष की अत्यन्त प्राचीन विद्या है। इस विद्या का विस्तार अनेक रूपों में हुआ है। यौगिक साधना के भिन्न-भिन्न प्रकार हमारे देश में प्रचलित रहे हैं ओर उन्हीं के आधार पर योग-सम्प्रदायों का स्वतन्त्र रूप से विकास भी पर्याप्त मात्रा में होता रहा है। योग-मार्ग को दो धाराएं प्रमुख मानी जाती हैं जिनमें १. चित्तवृत्ति निरोधमूलक और २. शारीरिक क्रिया सम्पादन मूलक की गणना है। इन दोनों की प्रक्रियाएं भी दो प्रकार की हैं जिनमें पहली है केवल प्रक्रिया प्रयोग और दूसरी है मन्त्राराधन संयुक्त प्रक्रिया-प्रयोग। जब योग साधक केवल शारीरिक क्रियाओं अथवा ऐन्द्रिय क्रियाओं को संयत बनाने का प्रयास करता है तो वह प्रथम कोटि का प्रकार माना जाता है, और जब उस क्रिया के साथ-साथ इष्ट मन्त्र अथवा तत्तत् स्थानों की अधिष्ठात्री शक्तियों का जप भी करता है तो वह द्वितीय कोटि के प्रकार में आता है।

आगम-तन्त्रों में जो योग कहा गया है वह केवल योग नहीं है, अपितु उसमें 'मन्त्र जप-विधान' की भी प्रमुखता है। रुद्रयामल का उत्तरतन्त्र इस दिशा में हमें कई प्रकार की विशिष्ट योग साधना के निर्देश करता है। इसमें दिव्य, वीर, और पशुभाव का विवेचन करते हुए महाभैरवी ने साधना क्रम का जो वर्णन किया है उसमें सर्वप्रथम **'कुलकुण्डलिनी**

देवी' का स्तवन ही कहा है। तदनन्तर 'ब्रह्मविद्या' का कथन करते हुए कुण्डली-शक्ति को ही 'वायवी शक्ति' कहा है और 'ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर सदा शिव और परा शिव' इन छः देवताओं को 'षट्शंकर' बतलाकर स्पष्ट किया है कि ये ब्रह्ममार्गरूप 'षट्चक्रमण्डल' में विराजमान हैं और ये षट् शिव उन षट् चक्रों के अधश्चक्रों में 'आग्नेयी कुण्डली' की स्थिति मानकर अमृतधाराओं से उनका तर्पण करते हैं।

आग्नेयीं कुंडलीं मत्वा आधोधाराभितर्पणम्।
प्रकुर्वन्ति परानन्दरसिकाः षट् शिवाः सदा ॥ १५/२४।

इसी प्रसंग में वैष्णव, याज्ञिक, धार्मिक एवं योगी के लक्षण भी दिखलाये है। योगी के बारे में कहा गया है कि—

'कालज्ञाता, विधिवेत्ता, अष्टांगयोग शरीर, पर्वत अथवा गुफा में मौन रहने वाला, भक्त, ब्रह्मज्ञानी, अवधूत, पुण्यात्मा, उत्तम कर्मकर्ता, पवित्र, निरभिलाष, धर्मात्मा, सरस्वती का कृपापात्र, छह आधारों का भेदक, ऊर्ध्वरेता, ब्रह्मचारी, आज्ञाचक्र की ओर उन्मुख आज्ञाचक्र में स्थित वर्णों को धारण करने वाला तथा चित्त में वर्णमाला का जाप करने वाला भावुक योगी होता है। (१५/५२-५५)॥

ऐसा योगी ऊर्ध्वाधः क्रमयोग से कुण्डलिनी को चैतन्य करता है। इन्द्रियरोध, षट्चक्रों का वेध, प्राणायाम की पूरक, कुम्भक और रेचकादि प्रक्रियाएं, चक्रों की अधिष्ठात्री देव-देवियां तथा चक्रों के वर्णादि का विस्तृत वर्णन यहां अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। रुद्रयामल का अभिमत है कि—'अथर्ववेद से तमोगुण रूप सामवेद उत्पन्न हुआ, सामवेद से सत्त्वगुणरूप यजुर्वेद उत्पन्न हुआ तथा यजुर्वेद से रजोगुण रूप ऋग्वेद उत्पन्न हुआ। अतः अथर्व में ही सभी वेद, जलचर, खेचर और भूचर निवास करते हैं तथा 'महाविद्या, विद्या और कुलविद्या' भी इसी में विराजमान हैं (१७/१२-५)। इसी अथर्ववेद-चक्र में कुण्डलिनी परदेवता स्थित है। इस कुण्डलिनी शक्ति को महिमा अपार है। यह वायवी शक्ति के रूप में जब बाहर जाती है तो आयु का क्रमशः क्षरण होता है और जब प्राणायामादि के द्वारा इसे रोकते हुए आग्नेयो शक्ति के रूप में अन्तर्निरोध होता है तो वह सोम मण्डल—सहस्रार स्थित अमृत का पान करने के लिए उन्मुख होता है। यह अमृतपान की स्थिति ही परमसिद्धि है। इस दृष्टि से कुण्डलिनी-साधना के कतिपय स्रोतों पर यहां महत्त्वपूर्ण विचार हुआ है।

शारीरिक चक्र और उनकी साधना-प्रक्रिया

जब हम कुण्डलिनी की बात करते हैं तो सहज ही इससे सम्बद्ध शारीरिक षट्चक्र और अन्य चक्रों का विचार हो आता है। रुद्रयामल में षट्चक्र और उनके भेदन की महत्ता दिखाकर कहा गया है कि—

षट्चक्रभेदने प्रीतिर्यस्य साधनचेतसः।
संसारे वा वने वाऽपि स सिद्धो भवति ध्रुवम्॥
(पटल २१, श्लोक १३)

अति प्रसिद्ध षट्चक्र क्रमशः १. मूलाधार, २. स्वाधिष्ठान, ३. मणिपूर, ४. अनाहत, ५, विशुद्ध और ६. आज्ञा चक्र हैं। किन्तु रुद्रयामल प्रत्येक चक्र में उनके दलों के आधार पर भी अन्य चक्रों का विवरण देता है। मूलाधार के चार दलों में क्रमशः १. भूमि, २. स्वर्ग, ३. तुलाचक्र एवं ४. वारिचक्र भी स्थित हैं तथा इनमें स्थित वर्णों के जप से इन्हीं में विद्यमान अनेक ग्रन्थियों के भेदन का भी संकेत दिया है। प्रत्येक चक्र का वर्णन और उसमें जप की विशिष्ट फलप्रदता भी यहां अति विस्तृत है। (२१वां पटल)।

बाईसवें पटल में 'षट्चक्र-फलोदय' का कथन करते हुए उपर्युक्त छहों चक्रों की स्थिति, आकृति उनके देवता, वर्ण और उनके ध्यान का विषय व्यक्त किया गया है। इन सबके वर्णन में कुण्डलिनी को नहीं भुलाया गया है अपितु साथ-ही-साथ उसके सम्बन्ध में भी उपयोगी निर्देश किये हैं। छहों चक्रों में विराजमान देव और उनकी योगिनियों का यहां पूरे ही ग्रन्थ में अधिक विस्तार से वर्णन किया गया है। ये योगिनियां—१. साकिनी, २. काकिनी, ३. लाकिनी, ४. राकिणी, ५. डाकिनी और ६. हाकिनी हैं। इसी प्रसंग से योगसाधना करने का काल यज्ञोपवीत-संस्कार के साथ माना गया है—

प्राप्ते यज्ञोपवीते यः श्रीधरो ब्राह्मणोत्तमः।
योगाभ्यासं सदा कुर्यात् स भवेद् योगिवल्लभः॥ २२।२०

क्रमशः साधना करते हुए भक्षण-नियम, अभक्षण-त्याग, पयोभक्षण, आसन, कालनिर्णय जैसी महत्त्वपूर्ण बातों का ध्यान तथा करने योग्य यौगिक कर्मों का निर्देश रुद्रयामल में दिया गया है। ब्रह्मचर्य का वास्तविक पालन बाल्यकाल से ही किया जाए तो वह अग्रिम काल में सुसाध्य बन जाता है। क्योंकि 'कामादि-संहरण के बिना योग भी कैसे किया जा सकता है?'

षट्चक्रों की भाव-सिद्धि के लिये वायु के द्वारा ही यजन किया जाता है। मूलाधार से आज्ञा तक के चक्रों में जो-जो दल हैं उनके मध्य में स्थित कर्णिकाओं में भी अन्य चक्रों की भावना यहां निर्दिष्ट है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्राणायाम से ऊपर उठकर योग में विघ्न करते हैं, किन्तु कुम्भक द्वारा अवरुद्ध हो जाने पर तत्काल सिद्धि प्रदान करते हैं। प्रणव के तीन वर्ण 'अ-उ-म्' क्रमशः योगपूरक, योग कुम्भक और योग रेचक के आधार हैं। इन्हीं से 'सोहं' तथा 'हंसः' मन्त्र बनते हैं। इन्हीं मन्त्रों से बना हुआ 'बृहद् हंस-मन्त्र' भी यहां दिखलाया गया है। यथा—'ॐ हंसः ॐ परमपदं तर्पयामि ॐ फट्'। इस मन्त्र का जाप करने से षट् चक्रों का भेदन होता है। वायु सिद्धि का भी यही मन्त्र है।

चक्र भेदन के लिये यहां अन्य अनेक उपायों का भी उल्लेख है जिनमें खान-पान का संयम, विभिन्न आसन, काल, क्रिया एवं शिव साधन भी हैं। वस्तुतः जिस प्रकार योग के प्रकारों में हठयोग, राजयोग, मन्त्रयोग और लययोग पृथक्-पृथक् होते हुए भी मिश्रित रूप में भी प्रयुक्त होते हैं, उसी प्रकार चक्र और उनकी साधना में भी इन सबका उभयविध प्रयोग होता है। चक्रों में व्याप्त अन्तर्नाडियों का स्वरूप, ध्यान और उनसे सम्बद्ध मन्त्र बीजों का स्मरण भी यहां निर्दिष्ट है। चक्रेशीरूप योगिनियों के सहस्रनाम तो सम्भवतः रुद्रयामल में ही प्रोक्त हैं, जो कि अन्यत्र दुर्लभ हैं। पूजाविधि, ध्यान, जप, वायु-विनिर्गम, स्तोत्र, महामन्त्र आदि के साथ-साथ योगसाध्य हेतु करने योग्य औषध-प्रयोगों का निर्देश इस यामलग्रन्थ की अपनी एक स्वतन्त्र विशेषता है।

कुण्डलिनी साधना के कुछ स्रोत

आत्मानुभूति का व्यावहारिक ज्ञान तन्त्रशास्त्र के द्वारा प्राप्त होता है। मानव का शरीर देव-मन्दिर है तथा उसमें इष्टदेव का चिर निवास है, किन्तु अज्ञानवश हम उसे जानने में असमर्थ रहते हैं। इष्टदेव की अपार शक्ति को अपनी क्रियाशक्ति के द्वारा पहचानने और उसकी सुषुप्ति को चैतन्य बनाकर आत्मकल्याण प्राप्त करने के लिए पूर्वाचार्यों ने अनेक मार्ग खोज निकाले हैं जिनमें एक मार्ग है 'कुण्डलिनी-साधना'। रुद्रयामल (उत्तरतन्त्र) में कुण्डलिनी-प्रबोधन के लिये स्तोत्र, ध्यान, न्यास, मन्त्र, कवच और सहस्रनाम आदि का वर्णन हुआ है। 'कुण्डलिनी को ही मानव की जीवनी-शक्ति भी कहा गया है। यह मृणाल-तन्तु के समान कोमल और सूक्ष्म है। मानव-शरीर में इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाम की तीन सूक्ष्म नाड़ियां हैं। इनमें इडा का सम्बन्ध चन्द्रस्वर से है और पिंगला का सम्बन्ध सूर्यस्वर से है। सुषुम्ना नाड़ी शून्य नाड़ी है। जैसे इडा और पिंगला नाड़ी मूलाधार चक्र से चलकर भ्रूमध्य में होती हुई ब्रह्म रन्ध्र तक पहुंचती हैं उसी प्रकार सुषुम्ना नाड़ी भी मूलाधार (उपस्थ स दो अंगुल नोचे और गुदा से दो अंगुल ऊपर) स्थान से निकलकर भ्रूमध्य में होती हुई ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचती है। भ्रूमध्य में इन तीनों नाड़ियों का संगम होता है। इसलिए उस स्थान को अन्तर्जगत् का प्रयाग धाम कहा जाता है।

कुण्डलिनी मूलाधार-पद्म में स्थित स्वयम्भू लिंग को साढ़े तीन चक्करों से आवेष्टित करके अपने मुख से सुषुम्ना पथ को रोककर सुषुप्तावस्था में स्थित है। यह कुण्डलिनी द्विमुखी है। अतः एक मुख से तो यह ब्रह्मद्वार को रोककर सोई रहती है और दूसरे मुख से दण्डाहत भुजंगिनी के समान मात्र श्वास-प्रश्वास का संचालन करती है। यही जीव का निःश्वास प्रश्वास है। योग आदि अनेक क्रियाओं द्वारा साधक इसी सुषुप्त शक्ति को जागृत कर सुषुम्ना पथ से ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचने का प्रयास करता है। इस यात्रा में कुण्डलिनी को कई ग्रन्थिरूप स्थानों से गुजरना पड़ता है और यह सहस्रार में पहुंचकर सहस्रदल कमल की

कर्णिका में स्थित परमानन्दमय परमात्मा के साथ एकात्म्य प्राप्त करती है तथा पुनः मूलाधार कमल में लौट आती है। यह एकात्म्य ही शिव-शक्ति का सायुज्य कहलाता है। कुण्डलिनी की एक स्तुति में कहा गया है कि—

मूलोन्निद्रभुजङ्गराज सदृशीं यान्तीं सुषुम्नान्तरं।
भित्त्वाधारसमूहमाशु विलसत् सौदामिनी सन्निभाम्॥
व्योमाम्भोजगतेन्दुमण्डलगलद् दिव्यामृतौघैः पति,
सम्भाव्य स्वगृहागतां पुनरिमां सञ्चिन्तये कुण्डलीम्॥

साधकों ने कुण्डलिनी को अनेक रूपों में व्यक्त किया है। यह मूलाधार में रहने से 'अधः कुण्डलिनी' कहलाती है जबकि सहस्रार में एक और कुण्डलिनो' का आवास माना गया है, जिसे 'ऊर्ध्व-कुण्डलिनी' कहते हैं। साधना-क्रम में सृष्टि क्रम के साधक अधः कुण्डलिनी को मूलाधार से उठाकर षट्चक्रभेदन कराते हुए उसका सहस्रार में ऊर्ध्व कूण्डलिनी से योग कराते हैं और संहारक्रम के उपासक ऊर्ध्व कण्डलिनी को सहस्रार से अवरोहित कराते हुए षट्चक्र भेदन पूर्वक मूलाधार में अधः कुण्डलिनी के साथ संयोग कराते हैं।

'गौतमीय तन्त्र' में कहा गया है कि—

मूलपद्मे कुण्डलिनो यावन्निद्रायिता प्रभो!।
तावत् किंचिन्न सिद्धयेत् मन्त्र-यन्त्रार्चनादिकम्॥
जागर्ति यदि सा देवी बहुभिः पुण्यसंचयैः।
तत् प्रसादमायाति मन्त्र-यन्त्रार्चनादिकम्॥

अर्थात् 'मूलाधार में कुण्डलिनी शक्ति जब तक सोई रहेगी तब तक मन्त्र, यन्त्र एवं भजन-पूजनादि कुछ भी सिद्ध नहीं होते और जब उनके पुण्यों के प्रभाव से वह देवी जागृत हो जाती है तो उसकी कृपा से मन्त्र, यन्त्र और भजन-पूजनादि सभी सफल हो जाते हैं।'

इसलिए उत्तरोत्तर साधना में अग्रसर होने के अभिलाषी कुण्डलिनी की साधना के लिए अनेक उपाय करते हैं। जिनमें साधक विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व भाव से सम्पन्न होकर गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से अनुष्ठान करता हुआ सफलता प्राप्त

करता है। जिस समय कुण्डलिनी अपने स्थान को छोड़कर उत्थित होती है तो शरीर में स्फुरण होने लगता है। जैसे-जैसे यह महाशक्ति चक्रों का भेदन करती हुई ऊपर को बढ़ती जाती है वैसे ही शरीर में प्रफुल्लता एवं भारहीनता की अनुभूति बढ़ती जाती है। सहस्रार में कुण्डलिनी के पहुंचने पर निर्विकल्प समाधि दशा में शरीर भारहीन होकर चिदानन्द की प्राप्ति करता है। यही साधना का अन्तिम लक्ष्य है।

कुण्डलिनी-शक्ति का स्वरूप-वर्णन उत्तरतन्त्र के ३२वें पटल में करते हुए कहा गया है कि—"यह देवी शक्ति रूपा, समस्त भेदों का भेदन करने वाली तथा कलिकल्मष का नाश करके मोक्ष देने वाली है।" इसकी उपासना के लिए स्तोत्र, ध्यान, न्यास और मन्त्र का वर्णन भी वहीं आनन्द भैरवी ने बतलाया है। कुण्डलिनी की साधना के इन उपादानों का ज्ञान मूल-पद्म में मन का विलय करता है। साधक चैतन्य आनन्द में तल्लीन आकाशगामिनी सिद्धि को भी प्राप्त कर लेता है। यह अमृत और आनन्द रूप से मनुष्यों का पालन करती है और यह श्वास तथा उच्छ्वास कला के द्वारा शरीरस्थ पञ्च महाभूतों से आवृत होकर पंचप्राण रूपा हो जाती है। कुण्डलिनी परदेवता है, मूलाधार में विराजमान यह कुण्डलिनी 'कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्ञानरूपा, ध्यान-ज्ञान-प्रकाशिनी, चंचला, तेजोव्याप्तकिरणा, कुण्डलाकृति, योगिज्ञेया एवं ऊर्ध्वगामिनी' आदि महनीय स्वरूप वाली है।

कुण्डलिनी का एक स्तोत्र ११ पद्यों का यहां रुद्रयामल में दिया है, जिसका प्रथम पद्य इस प्रकार है—

आधारे परदेवता भवानताधः कुण्डली देवता,
देवानामधिदेवता त्रिजगतामानन्दपुञ्जस्थिता।
मूलाधारनिवासिनी त्रिरमणी या ज्ञानिनी मालिनी,
सा मे मातृमनुस्थिता कुलपथानन्दैकबीजानना॥ ३२/२१

इस स्तोत्र को प्रणव से सम्पुटित कर पाठ करने से सर्वविध सौख्य प्राप्त होने के साथ ही पाठकर्ता 'कुण्डलीपुत्र' ही बन जाता है अर्थात् माता कुण्डलिनी उसको अपना लेती है। ३३वें पटल में **'कुण्डलीकवच'** वर्णित है। कवच का प्रातः ३ बार, मध्यान्ह में २ बार तथा सायंकाल में १ बार पाठ करने का विधान है। प्रायः ५० पद्यों में कुण्डलिनी के

नाम, रूप, गुण एवं धर्मों का वर्णन करने वाले भगवती के नामों से कामना की गई है कि 'वह मेरे अंग-प्रत्यंगों के भिन्न-भिन्न, छोटे-बड़े स्थूल अवयवों की तथा आन्तरिक सूक्ष्म अवयवों की रक्षा करे।' यथा—

ॐ ईश्वरी जगतां धात्री ललिता सुन्दरी परा।
कुण्डली कुलरूपा च पातु मां कुलचण्डिका॥ ३३/६ ॥

इस कवच का ध्यानयोग में रहते हुए जो योगी पाठ करता है तथा इसे भूर्जपत्र पर लिखकर धारण करता है, वह सर्वसिद्धि प्राप्त करता है।

कुण्डलिनी जागरण करने के लिए तन्त्रग्रन्थों ने अनेक प्रयोग और उपायों के भी निर्देश किये हैं। प्रत्येक साधनानुरागी सम्प्रदाय की अपनी-अपनी दृष्टि और पद्धति होती है। जो जिस पद्धति का अनुसरण करता है उसे उसी दृष्टि से अपने सम्प्रदायानुमत मार्ग का अवलम्बन लेकर आगे बढ़ना चाहिए। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट मार्गों का परस्पर यथारुचि सम्मिश्रण करके साधना करने का शास्त्रकारों ने सर्वथा निषेध किया है, उसी प्रकार कुण्डलिनी के बारे में भी समझें।

रुद्रयामल की अपनी एक विशिष्ट पद्धति है। इसमें तन्त्राचार को लक्ष्य में रखकर मन्त्र-जप के साथ ही औषध-प्रयोगों का भी अत्युत्तम उल्लेख हुआ है। यहां हम एक प्रयोग का स्वरूप प्रस्तुत कर रहे हैं, जो कि स्वतन्त्र साधना के लिए तथा कुण्डलिनी साधना के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

न्यास-विद्या और मुद्राओं की महिमा

तन्त्र का एक अर्थ 'विस्तार' भी है। यह विस्तार आगम और यामलों में अनेक रूपों से अभिव्यक्त हुआ है। कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओं के समन्वित प्रयास से ही तान्त्रिक साधना सम्पन्न होती है। इनमें कायिक कर्मों में विभिन्न कर्म सम्मिलित हैं। स्थूल शरीर की पूरी तैयारी होने पर ही सूक्ष्म शरीर तत्त्व ज्ञान की भूमिका

प्राप्त करता है और इसीसे वाणी एवं मन भी साधनोपयोगी क्रियाओं की वास्तविकता के निकट पहुंच पाते हैं। इस दृष्टि से आसन प्राणायाम, ध्यान, अर्चन के क्रमों में **'न्यास'** का भी बड़ा महत्त्व है। किसी भी कर्म के लिए जो विनियोग किया जाता है, उसमें जो मन्त्र, स्तोत्र, कवच आदि प्रयुक्त होते हैं उन सभी में 'न्यास' आवश्यक माने गये हैं।

'देवो भूत्वा देवं यजेत्'—देव बनकर देवता की पूजा करें—इस आदेश का पालन भी न्यासों पर ही आधारित है। यहां देव बनने का तात्पर्य है कि अपने शरीर में देवताओं को विराजमान करना और ऋषि, छन्द, देवता, बीज शक्ति, कीलक और विनियोग के न्यासों द्वारा मन्त्रमय देह बनाना। करन्यास, अंगन्यास, शरीरावयवन्यास, आयुधन्यास तथा मातृका-मन्त्राक्षर आदि के न्यास साधना के अनिवार्य अंग हैं जो **'निःशेषेण आस्यत इति न्यासः'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार निश्चित स्थानों पर निश्चित देव-ऋषियों की स्थापना की भावना को पूर्ण करते हैं। ये न्यास सभी साधनाओं में, सभी सम्प्रदायों में समान रूप से स्वीकृत हैं।

साधना-क्रम में न्यास-विधान को **'न्यास विद्या'** कहा है। 'महाकाल-संहिता में कहा गया है कि—इस प्रकार की सिद्धिदा विद्या दूसरी कोई नहीं है। इसीलिये इसका दूसरा नाम **"सिद्धविद्या'** भी है। तान्त्रिकों का यह सिद्धान्त है कि भूत शुद्धि द्वारा शरीर को शुद्ध किया जाता है और न्यासों के द्वारा 'मन्त्रमय देवता को आत्मा में संक्रान्त कर तन्मयता बुद्धि प्राप्त की जाती है। 'न्यासस्तन्मयता-बुद्धिः।' रुद्रयामल में भी जिन-जिन मन्त्रों अथवा स्तोत्रों का कथन हुआ है, उनके विनियोगों में कथित १. ऋष्यादि न्यास, मन्त्रांगभूत न्यास २. करन्यास, ३. हृदयादिषडंग न्यास तो सर्वविदित हैं ही, उनके अतिरिक्त कतिपय विशिष्ट न्यासों का भी उल्लेख हुआ है।

न्यास विधि—सामान्यतः सभी न्यास विधि में सूचित स्थानों का तत्त्वमुद्रा (अनामिका और अंगुष्ठ के अग्रभागों के सम्मिलित रूप) से स्पर्श करने का विधान है। किन्तु अंगुलियों के स्पर्श में केवल अंगुष्ठाग्र से नीचे वाले पर्व से अग्रभाग तक स्पर्श होता है। इसी प्रकार अंगुष्ठ में तर्जनी द्वारा पर्वस्पर्श करते हैं। यह न्यास का सृष्टि क्रम है। विशेष

साधक कुलानुकूल अथवा कर्मानुकूल न्यासों में अग्रभाग से मूल पर्व तक स्पर्श से सहार न्यास और मध्य पर्व से ऊपर-नीचे स्पर्श द्वारा स्थिति न्यास करते हैं। हृदयादिन्यासों में दाहिने हाथ से जो स्पर्श होता है, वह भिन्न-भिन्न मुद्राओं द्वारा सम्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त जो स्वतन्त्र विशेष न्यास कहे गये हैं उनमें शरीर के निर्दिष्ट अंगों का स्पर्श मन्त्रोच्चारण-पूर्वक उन स्थानों में उक्त देवता का आवाहन, वहां स्थित होने की प्रार्थना और 'वे स्थित हो गये हैं' ऐसी भावना करके उन्हें प्रणाम करना ये तीनों क्रियाएं एक साथ होती हैं। ये न्यास जब और भी गूढ़ होते हैं तो योनि मुद्रा, त्रिखण्ड मुद्रा, एक-एक अंगुली-मुद्रा, तर्जनी भ्रमण संहार मृद्रा आदि अनेक रूपों में मुद्राएं बनाकर किये जाते हैं।

न्यास-स्वरूप—न्यासों की यह विशेषता है कि ये १. कहीं तो व्यष्टि रूप में रहते हैं और कहीं समष्टि रूप में। जब समष्टि होती है तो इनके प्रकार बड़े अद्‌भुत हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—षोढा न्यास को लें। इसमें छह पृथक्-पृथक् न्यास होते हैं जिनमें १. गणेश, २. ग्रह, ३. नक्षत्र, ४. योगिनी, ५. राशि और ६. पीठों के न्यास होते हैं। यह प्रथम प्रकार 'लघुषोढा' कहलाता है जब कि द्वितीय 'महा षोढा न्यास' में १. प्रपंच, २. भुवन, ३. मूर्ति, ४. मन्त्र, ५. देवता और ६. मातृका भैरव के न्यास रहते हैं। ये न्यास ललितात्रिपुरसुन्दरी के हैं, इसी प्रकार अन्य देवताओं के न्यासों में क्रम-परिवर्तन तथा विषय-परिवर्तन होता रहता है। यन्त्र के आवरण, देवताओं के न्यास, देवता के आयुधों का न्यास, शरीर के विशिष्ट अंगों के न्यास, मुखों के आधार पर उतने ही वक्त्र न्यास, अस्त्र-न्यास, दूतो न्यास, शक्ति न्यास, डाकिनी न्यास आदि अनेक विध न्यास हैं जिनका विचार करके उनका प्रयोग करना चाहिए।[1]

---

1. हमने पूज्य विद्यारण्यजी महाराज (मूर्खारण्यजी) की कृपा से ऐसी महा-विद्याओं का न्यास-संग्रह सम्पादित कर **'यतिदण्डैश्वर्य-विधान'** के अन्त में छपवाया है, वह द्रष्टव्य है। खेद है कि प्रकाशक ने वहां हमारा नाम विशिष्ट कारणवश नहीं दिया है। अब हम इसे स्वतन्त्र रूप में छपाने की भी व्यवस्था कर रहे हैं।

न्यास की फल श्रुति—वैसे तो प्रत्येक न्यास-विधान के अन्त में उसका फल लिखा ही रहता है, तथापि यह विशेष स्मरणीय है कि—जिस प्रकार हम किसी मन्त्र का पुरश्चरण करते हैं, विशेष अनुष्ठान करते हैं और किसी विशेष कामना से उसका प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार केवल न्यासों से भी ये विधियां की जा सकती हैं। इस दृष्टि से १. नित्यानुष्ठान और २. काम्यानुष्ठान भी न्यासों द्वारा होते हैं। ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के लाभ केवल न्यास-साधना से भी प्राप्त किये जा सकते हैं। कुछ न्यासों के बारे में तो यह भी कहा गया है कि—'येषां चिकीर्षयाऽपि स्यात् सिद्धिः सार्वत्रिकी नृणाम्'—अर्थात् न्यास करने की इच्छा से ही लोगों के अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं। इन न्यासों का पुरश्चरण (१००८ पारायण अथवा ग्रहण काल-पारायण द्वारा) करके न्यास करने से विशेष लाभ होता है। न्यास को भोजपत्रादि पर पर्वकाल में लिखकर कवच के रूप में धारण करने की भी शास्त्र-कारों ने आज्ञा दी है। महाषोढा के प्रसंग में यह भी निर्देश है कि जहां यह लिखकर भी रख दिया जाता है, वहां सर्वविध मंगल का आधिक्य और किसी भी प्रकार के विघ्नों का सर्वथा क्षय होता है।

न्यास सिद्धि के लिए नियम—न्यास द्वारा साधक जब अपने शरीर में देवत्व का आधान कर लेता है, तो उसमें इष्टदेव का परिवार-सहित निवास होने से उसके लिए प्रायः व्यर्थ की चर्चा करना किसी को शाप अथवा आशीर्वाद देना एवं किसी को नमस्कार करना वर्जित हैं। ऐसे बहुत-से उदाहरण हैं कि न्यास-सिद्ध महापुरुषों द्वारा प्रणाम न करने पर उनसे रुष्ट होकर हठ-पूर्वक प्रणाम करवाने से प्रणामापेक्षी का अनिष्ट हुआ है। नेपाल में पशुपति मन्दिर के पास गणेश की प्रतिमा का खण्डित होना तथा भास्कर राय मखी द्वारा प्रणाम करने पर दण्ड का टूटना आदि प्रसिद्ध हैं।

मुद्राओं की महिमा

साधना करने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह साधना में कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओं पर पूरा नियन्त्रण रखे तथा अवसरोचित तान्त्रिक प्रक्रियाओं का भी समन्वय करता

रहे। इस दृष्टि से जिस प्रकार आसन पात्रासादन, अर्चन आदि में क्रियाओं का विधान है उसी प्रकार उनके साथ कुछ मुद्रा बनाने का विधान है। ये मुद्राएं मुख्य रूप से हाथ और उसकी अंगुलियों के प्रयोग से बनाती हैं। जैसे हमारा शरीर पंचतत्त्व मय है वैसे ही पांचों अंगुलियां भी पंचतत्त्वात्मक हैं। अत: शास्त्रकारों ने कहा है कि इन अंगुलियों के प्रयोग से इन तत्त्वों की न्यूनाधिकता दूर की जा सकती है तथा तत्त्वों की समता-विषमता से होने वाली कमी को अंगुलियों की मुद्रा से सम बनाया जा सकता है। इतना ही नहीं, ऐसी मुद्राओं के सहयोग से उन तत्त्वों को स्वेच्छापूर्वक घटाया-बढ़ाया भी जा सकता है। ये तत्त्व क्रमश: अंगुष्ठ में अग्नि, तर्जनी में वायु, मध्यमा में आकाश, अनामिका में पृथ्वी और कनिष्ठिका में जल के रूप में विद्यमान रहते हैं।

'मुदं रातीति मुद्रा' इस व्युत्पत्ति के अनुसार ये मुद्राएं देवताओं के समक्ष बनाकर दिखलाने से उन्हें प्रसन्नता प्रदान करती हैं। पूजा-विधानों में 'मुद्रा' एक आवश्यक अंग माना गया है। देवी-देवताओं के समक्ष प्रकट की जाने वाली मुद्राएं पृथक्-पृथक् कर्म की दृष्टि से हजारों प्रकार की होती हैं, जिनमें कुछ जपांगभूत हैं तो कुछ नैवेद्यांगभूत। कुछ का प्रयोग कर्मविशेष के प्रसंग में होता है तो कुछ मानस पूजा और और अन्य पूजाओं के साथ प्रयुक्त होती हैं। रुद्रयामल में प्राय: प्रत्येक जप-पूजादि विधानों में देवता के अनुरूप मुद्रा दिखाने का सूचना किया है। जैसे गणेश पूजा में एकदन्त मुद्रा, बीजापूर मुद्रा, अंकुश मुद्रा, मोदक मुद्रा आदि। ऐसे ही शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्यादि देवों की मुद्राएं हैं। इनका नित्य, नैमित्तिक और काम्य-प्रयोग की दृष्टि से भी मन्त्र-पूर्वक साधन होता है, और सिद्ध हो जाने पर इनके प्रयोग से अभीष्ट फल प्राप्त होता है। रोगनाश जनमोहन, वशीकरणादि के लिए भी इनके प्रयोग होते हैं।

रस-शास्त्र और रुद्रयामल

सृष्टि में जरा, रोग तथा मृत्यु को जीतकर मोक्ष-प्राप्ति के साधनों का वर्णन करते हुए भगवान् रुद्रने रस-दर्शन का निर्माण किया है। इस विषय को सुरक्षित रखकर प्रयोगों द्वारा अपना और लोक का

कल्याण करने के लिए नाथ एवं सिद्ध-सम्प्रदाय के आचार्यों ने यथाशक्य प्रयास किया और उसमें सफलता प्राप्त की। भगवान शंकर ने रस-शास्त्र का किस प्रकार ज्ञान दिया, इस सम्बन्ध एक आख्यान प्राप्त होता है कि—

अश्विनी कुमारों ने लोकहित के लिए ब्रह्माजी द्वारा ज्ञान प्राप्त दक्ष प्रजापति से जब रस-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया तो उनकी अपने ज्ञान से इहलोक परलोक में बहुत प्रतिष्ठा बढ़ गई। भगवान रुद्र के एक गण वीरभद्र को भी वैसी ही प्रतिष्ठा प्राप्त करने की इच्छा हुई तो वह शिवजी से आज्ञा लेकर ब्रह्माजी के पास गया और प्रार्थना की, परन्तु ब्रह्मा ने कहा कि मैंने यह विद्या दक्ष को पढ़ा दी है, अतः अब तुम्हें नहीं पढ़ा सकता। इससे दु:खित होकर वीरभद्र ने क्रोधवश ब्रह्मा का सिर काट दिया। फिर वह दक्ष के पास गया और उससे रस-विद्या पढ़ाने का आग्रह किया तो उसने भी अश्विनीकुमारों को पढ़ाने के कारण निषेध कर दिया, तब उसे भी घायल कर दिया। इसी समय अश्विनी कुमारों को समाचार मिलने से उन्होंने आकर दोनों को स्वस्थ कर दिया। तब वीरभद्र बहुत लज्जित हुआ और अपमानित होकर शिवजी से प्रार्थना की कि आप तो सर्वविद्या गुरु हैं। अत: आप ही नवीन शास्त्र रचना करके मेरा कल्याण कीजिये तथा अपमान से बचाइये। भगवान रुद्र को दया आ गई और उन्होंने रस-शास्त्रों का निर्माण किया और वीरभद्र को पढ़ाया।

इन ग्रन्थों के नाम १. **रस-मंगल**, २. **रसायन महानिधि**, ३. **रसेन्द्र संहिता**, ४. **रसतन्त्र**, ५. **रसार्णवतन्त्र** आदि हैं। आज ये ग्रन्थ पूर्णरूप से उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु इनके उल्लेख यत्र तत्र प्राप्त होते हैं। यह भी ज्ञात होता है शिवजी से रसशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करके वीरभद्र ने भी अनेक ग्रन्थों की रचना की थी।

वीरभद्र निर्मित रस और रसायनशास्त्र निम्नलिखित हैं— १. अमृतार्णव, २. ऐश्वर्य-भास्कर, ३. अमृतेश्वर, ४. कामेश्वर, ५. ताम्रेश्वर, ६. पंचानन, ७. नीलकण्ठ, ८. व्रजेश्वर, ९. प्रचण्ड भैरव, १०. धूत भैरव, ११. त्रिनेत्ररस, १२. नागेश्वर, १३. बंगेश्वर, १४. मृत्युंजय, १५. उदय भास्कर, १६. चन्द्रोदय, १७. प्राणेश्वर, १८. चन्द्रामृत, १९. अग्नि कुमार, २०. वसन्त कुसुमाकर,

२१. राजमृगांक, २२. महामृगांक, २३. कालान्तक, २४. लोकेश्वर, २५. कामधेनुरस, २६. मकरध्वज, २७. सर्वांगसुन्दर रस, २८. महालक्ष्मी विलास, २९. विजय भैरव, ३०. भूतांकुश, ३१. सोमेश्वर, ३२. नाराचरस, ३३. उड्डमर रस, ३४. सूर्यावर्त, ३५. चिन्तामणि, ३६. गुञ्जाभद्र रस, ३७. हरिशंकर रस, ३८. पंचवक्त्र रस, ३९. पाषाणभेद रस, ४०. सूर्योदय रस, ४२. सर्वतोभद्र रस आदि ।

उत्तर काल में रसशास्त्र की परम्परा को सुरक्षित रखते हुए अपने-अपने अनुभवों का अंकन भी होता रहा । रस-ग्रन्थों की रचना और रासायनिक प्रक्रिया का सम्बन्ध मुख्यत: ८४ सिद्धों से रहा है, अतः उनकी साधना का पुट भी इनमें बढ़ता गया और उन्होंने तन्त्रों-आगमों-यामलों में निहित साधनोपयोगी रस-विद्या का प्रायोगिक परीक्षण कर इन ग्रन्थों में समाविष्ट किया ।

रसाचार्यों की परम्परा भगवान् शिव से प्रारम्भ होकर भैरव, नन्दी, स्वच्छन्द भैरव, मन्थान भैरव, काकचण्डीश्वर, वासुदेव, ऋष्य-श्रृंग, रत्नाकर, हरीश्वर आदि दिव्य पुरुषों द्वारा निरन्तर प्रवाहित होती रही है। रुद्रयामल के अन्तर्गत जिन रस-रसायनों और धातुओं के प्रयोगों का वर्णन हुआ है, वह अवश्य ही महत्त्वपूर्ण है, किन्तु इनका प्रयोग केवल ग्रन्थ देखकर नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह एक अत्यन्त जोखिम से भरा हुआ कार्य है। लाभ तो पूर्ण-प्रयोग के बाद ही सम्भव होता है, किन्तु हानि पद-पद पर होने का भय बना ही रहता है। इनकी साधना-पद्धति भी दीर्घकाल साध्य है और साथ ही मन्त्र-विधान भी अपेक्षित हैं।

पंचमकार की आध्यात्मिकता

वाममार्ग की दीक्षा से दीक्षित साधकों के लिए **'पंचमकार'** समर्पण और सेवन का विधान तन्त्रों में प्राप्त होता है, किन्तु यह सर्व-साधारण के लिए निर्देश न होकर विशिष्ट साधकों के लिए विहित है और इनके समर्पण का अधिकार भी सभी को प्राप्त नहीं होता, अपितु

जिसने साधना की पूर्व-निर्दिष्ट कतिपय कथाओं को क्रमशः उपासना द्वारा पार कर लिया है, उन्हीं के लिए अधिकृत है।

'रुद्रयामल' में इस सम्बन्ध में बहुत ही मार्मिक ढंग से साधक को सावधान करते हुए **'ज्ञानमार्गोक्त पंचमकार-स्तोत्र'**[1] कहा गया है। उसमें भगवती पार्वती शिवजी से प्रार्थना करती हैं कि—हे जगन्नाथ, देव देव, प्रभु! कृपा करके मुझे आगमोक्त मकारों को ज्ञानमार्ग से परिभाषित करके समझाइये। तब शिब कहते हैं कि—हे देवि! सप्तदश कलाएं कही गई हैं और चन्द्रमा अमृत का स्रावण करता है, वही प्रथम मकार-मद्य है। **शेष अन्य तो मदिरामात्र** हैं। ज्ञान खड्ग के द्वारा कर्म और अकर्म रूप पशुओं का जो हनन करता है, वह द्वितीय मकार-मांस है। **अन्य तो केवल मांसाहारी ही हैं।** मनरूपी मत्स्य का दमन करके व्यर्थ के संकल्पों को नष्टकर स्वरूपाकार वृत्ति का संकल्प करना तृतीय मकार-मत्स्य है। **यही शुद्ध मीन कहलाता है**, अन्य नहीं। चतुर्थ मकार-मुद्रा वस्तुतः भक्ष्य, भोज्य, अन्न और इन्द्रियों का निग्रह है। जो लोग अन्य मुद्राओं का आशय लेते हैं अथवा उनका उपभोग करते हैं **वे भ्रष्टकर्मा हैं** और **'हंसः सोऽहं'** स्वरूप शिव-शक्ति का परम कृपापूर्ण सामरस्य ही पंचम मकार—मैथुन है। इस अबस्था में नेत्ररूपी पात्र से उन्मनी की पजा की जाती है। यही पूर्ण कला है। देवसाधक इसी की साधना करते हैं। इसमें पूजा और पूजक भाव से मुक्त होकर साधक तन्मयानन्द प्राप्त करता है तथा अन्त में स्वयंवेद्य महानन्द का लाभ करता है। अतः जहां पंचमकार समर्पण तथा सेवन का संकेत है वहां इस स्तोत्र का भावात्मक स्मरण करें।

ज्ञानमार्गोक्त पंचमकार स्तोत्रम्

पार्वत्युवाच—

देवदेव जगन्नाथ! कृपाकर! मयि प्रभो!
आगमोक्त-मकारांश्च ज्ञानमार्गेण ब्रूहि मे॥१॥

---

१. यहां 'स्तोत्र' कहने का तात्पर्य अन्य स्तोत्रों से भिन्न होकर केवल इनके महत्त्व का आख्यान है।

ईश्वर उवाच—

कलाः सप्तदश प्रोक्ता अमृतं स्राव्यते शशी ।
प्रथमा सा विजानीयादितरे मद्यपायिनः ।।२।।
कर्माकर्मपशून् हत्वा ज्ञानखड्गेन चैव हि ।
द्वितीयं विन्दते येन इतरे मांसभक्षकाः ।।३।।
मनोमीनं तृतीयं च हत्वा संकल्प-कल्पनाः ।
स्वरूपाकार वृत्तिश्च शुद्धं मीनं तदुच्यते ।।४।।
चतुर्थं भक्ष्यभोज्यं न—भक्ष्यमिन्द्रिय-निग्रहम् ।
सा चतुर्थी विजानीयादितरे भ्रष्टकारकाः ।।५।।
हंसः सोऽहं शिवः शक्तिर्द्राव आनन्दनिर्मलाः ।
विज्ञेया पञ्चमीतीदमितरे तिर्यगामिनेः ।।६।।
स द्रावश्चक्षुः-पात्रेण पूज्यते यत्र उन्मनी ।
दिद्युल्लेखाशिवैकेमां साध्यन्ते देवसाधकाः ।।७।।
पूजकस्तन्मयानन्दः पूज्य-पूजकवर्जितः ।
स्वसंवेद्य-महानन्दस्तन्मयं पूज्यते सदा ।।८।।

।। इति श्रीरुद्रयामले उमामहेश्वरसंवादे पंचमकारस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

साधकों के लिए आवश्यक निर्देश

परमात्मा की अपार कृपा और चिरकाल संचित पुण्यकर्मों की प्रबलता से प्राणी नाना योनियों में भटकता हुआ मानव-जन्म को प्राप्त करता है। मानव-जन्म में आकर भी संसार की विविध प्रवृत्तियों में पड़ा हुआ व्यक्ति बड़े सुयोग से आस्तिक बनता है। ईश्वर में श्रद्धा और तत्प्रीत्यर्थं किये जाने वाले श्रौत-स्मार्त-धर्म-कर्मानुष्ठानों के प्रति अभिरुचि तो जन्म-जन्मान्तर के पुण्यों का ही फल है। उसमें भी आगम यामल, तन्त्र आदि की पद्धति से उपासना करना अत्यधिक महत्त्व का कार्य है। यह भोग-और मोक्ष दोनों की साधिका बतलाई गई है, किन्तु इसका साधना-मार्ग जहां अत्यन्त सरल है, वहीं अति कठिन भी। अतः साधक को पूर्णरूप से ज्ञान प्राप्त करके ही इसमें प्रयास करना चाहिये।

रुद्रयामल के प्रवचन में रुद्र-भैरव के प्रश्न अत्यन्त मार्मिक हैं। ऐसी कोई बात नहीं छोड़ी गई है कि जिसका उन प्रश्नों में समावेश नहीं हुआ हो। ग्रन्थ की विशालता के कारण ये प्रश्न भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर उपस्थित किये गये हैं तथा भगवती रुद्राणी-भैरवी-आनन्द-भैरवी ने भी अपने उत्तरों में बहुत ही उदारता से समस्त रहस्यों का उद्घाटन कर दिया है। यह बात पृथक् है कि बिना पूर्वापर-सम्बन्ध के अथवा तन्त्रगत पारिभाषिक शब्दावली के सम्यक् ज्ञान के उसे बहुधा समझ पाना कहीं कहीं-कठिन हो जाता है। हजारों वर्षों से चली आ रही तान्त्रिक गुरु परम्परा का ज्ञान इसमें पूर्ण सहायक होता है। इसके साथ ही साधकों की संगति भी इसके लिए आवश्यक है, क्योंकि विभिन्न गुरु-परम्पराओं में दीक्षित साधकगण कुछ-न-कुछ नवीन रहस्यों से परिचित होते हैं, उनके साथ चर्चा-विचारणा होने से विच्छिन्न अथवा विश्रृंखलित कड़ियों को जोड़ने में तत्काल सहायता मिलती है।

'बहुत से साधकों का कहना है कि मानसिक ध्यान-जपादि ही श्रेष्ठ हैं, बाह्य-पूजा-विधान आडम्बर मात्र हैं; किन्तु यह कथन वास्तविकता से दूर है। रुद्रयामल में इस सम्बन्ध में आनन्द भैरवी ने कहा है कि—

पूजनं त्रिविधं प्रोक्तं मनः साक्षाद् वचोमयम्।
मानसं योगिनां प्रोक्तं साक्षात् पूजा गृहं प्रभो॥
वाचामयं तामसानां नृपाणां कामिनां तथा॥ ६६ पटल २

अर्थात्—पूजा तीन प्रकार की होती है: १. मानसी, २. साक्षात् और ३. वाचिकी। इनमें योगियों के लिए मानसी श्रेष्ठ है, गृहस्थों के लिए साक्षात् पूजा उत्तम हैं और नृप तथा कामासक्तों तामस-लोगों के लिए वाचिक पूजा श्रेष्ठ है।

वहीं पूजा के समय का सूचन भी वहां है, जिसमें गृहस्थों के लिए यथासमय पूजा, ब्रह्मचारी के लिए त्रिकाल एवं योगियों के लिए सर्वकाल में पूजा करने का निर्देश है। अतः शास्त्रानुमोदन पूजन विधान अवश्य सम्पादित करना चाहिए।

गुरुकृपा इसके लिए वरदान है; किन्तु यह भी सदैव ध्यान रखना चाहिए कि—'गुरु विद्यार्थी को जब ज्ञान देते हैं, तो वे जिस कक्षा

की बात चलती है, उसी का ज्ञान प्रदान करते हैं और उनको यह विश्वास रहता है कि इससे पूर्व कक्षा के सभी विषय छात्र ने समझ लिए होंगे। इस दृष्टि से साधना का इच्छुक क्रमशः ज्ञान लाभ लेते हुए ही उत्तरोत्तर आगे बढ़े। पहले नित्यकर्म में प्रवृत्त बने, तत्पश्चात् नैमित्तिक कर्मों की विधियों को जानकर उनका प्रयोग करे और फिर आवश्यकतानुसार काम्य प्रयोग करे। यही उपासना का राजमार्ग है।

तान्त्रिक साधना में आत्म-रक्षा के लिए न्यास और रक्षा-कवच-पाठ अत्युपयोगी हैं। स्तोत्र और अपराध क्षमापन भी जपादि के पश्चात् अवश्य करने चाहिएं। प्रारम्भ में गुरु स्मरण के पश्चात् गणपति और भैरव के स्मरण से विघ्न नष्ट होते हैं, अतः इनका स्मरण करना न भूलें। यदि किसी पुस्तक से पाठ करते हों तो उस पुस्तक का आदर करते हुए उसका सरस्वती के रूप में पूजन करें। अनेक मन्त्र ऐसे हैं जिनको पूर्व महर्षियों ने शापित और कीलित कर दिया है। यदि वैसी स्थिति हो तो उनका शाप-विमोचन और अकीलन भी करना आवश्यक है। भूशुद्धि और भूतशुद्धि से बाह्य एवं आन्तरिक शुद्धि होती है। न्यासों के द्वारा शरीर देवरूप बन जाता है। तभी आराध्य देवता हृदय में विराजमान होते हैं। मन्त्र के अंग-प्रत्यंग जहां उल्लिखित हों, वहां उनका निर्देशानुसार जप करें और विनियोगादि भी यथावत् करें। शास्त्रकारों ने सभी विधियों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन करते हुए उनकी सिद्धि के द्वार उद्घाटित किये हैं। उनका स्वाध्याय करते हुए श्रद्धा-पूर्वक अनुष्ठान में मन लगायें।

कभी-कभी अपने पूर्व-संस्कारों की दुर्बलता के कारण पूरा प्रयास करने पर भी सफलता में न्यूनता रह जाती है। ऐसी स्थिति में अविश्वास, अश्रद्धा अथवा निन्दा बुद्धि नहीं करनी चाहिए और मन को धैर्य दिलाने के लिए 'अपने ही दोष रह गये होंगे', अतः पुनः साधना करनी चाहिए तथा प्रार्थना करनी चाहिए। सिद्धि के प्रति आतुरता, विह्वलता अथवा विकलता से मन में चंचलता बढ़ जाती है। अतः संयम, शान्ति एवं धैर्य की परम आवश्यकता है।

सदाचार, पवित्रता, उदारता, परोपकारिता, अयाचकता आदि ऐसे गुण हैं जो साधना में सहायक होते हैं। क्षुद्र कार्यों के लिए देवता को कष्ट देना अनावश्यक है। हमारी आवश्यकताओं का तो

कोई अन्त ही नहीं है, इसलिए उनमें से किनका उल्लेख किया जाए तथा कौन से छोड़ दिए जाएं ? यह विवेचन करना कठिन है। ऐसी स्थिति में सब भार परमात्मा पर ही छोड़कर केवल कृपा की मांग करने में ही हमारा कल्याण है, यह न भूलें।

लब्ध्वा मानव-जन्म दुर्लभतरं तत्रापि पुण्यं कुलं,
दैवे विश्वसितिं च सन्मतिमथ श्रद्धां स्वधर्मेऽचलाम्।
भक्तिं यः परमात्मनि प्रथयति स्वात्मैकनिष्ठो जन-
स्तस्मै यच्छति 'रुद्रयामलमिदं' सर्वं मनोवाञ्छितम् ॥१॥

अत्यन्त दुर्लभ मानव-जन्म, उसमें भी उत्तम कुल, भाग्य पर विश्वास, श्रेष्ठ बुद्धि एवं स्वधर्म में अचल श्रद्धा प्राप्त करके जो व्यक्ति अपने आप में निष्ठा रखते हुए परमात्मा में भक्ति को बढ़ाता है उसके लिए यह 'रुद्रयामल' सभी मनोरथों को प्रदान करता है।

रुद्रेण प्रार्थिता प्राह रुद्राणी रुद्रयामलम्।
तस्यैव सार-सर्वस्वं रुद्रेणेहास्ति चर्चितम् ॥ २ ॥
रुद्रदेव-प्रसादेन रुद्रदेव-त्रिपाठिना।
देवाद् रुद्राच्च यत्प्राप्तं तद् रुद्राय समर्पितम् ॥ ३ ॥

प्रयोग-विभाग

'प्रयोग-परिचय' की पूर्व भूमिका

नित्यकर्मानुष्ठान

सरलता से अनुष्ठान करने योग्य कर्मों में 'पंच महायज्ञ' का विधान है। इसमें १. देवयज्ञ, २. पितृयज्ञ, ३. भूतयज्ञ, ४. मनुष्ययज्ञ एवं ५. ब्रह्मयज्ञ आते हैं। ये पांचों यज्ञ प्रत्येक द्विज गृहस्थ के लिए अवश्य कर्त्तव्य हैं। इनमें प्रथम देवयज्ञ—देवों के प्रति अग्नि में हवन करना। इसके प्रतिदिन अनुष्ठान से देवभक्ति और दैवभाग्य की अनुकूलता प्राप्त होती है। दूसरा पितृयज्ञ—हमारे पूर्वजों की तृप्ति के उद्देश्य से किया जाता है। इसमें पितरों का तर्पण, श्राद्ध एवं उनके निमित्त अन्नादि दान का विधान है। इससे कुल की अभिवृद्धि और उन्नति होती है। सन्तति और ऐश्वर्य प्राप्ति पितरों के अनुग्रह से प्राप्त होती है। तीसरा भूतयज्ञ—निःस्वार्थ भाव और त्याग की भावना से पशु, पक्षी एवं चींटी आदि को उनके उपयुक्त भोजन देने का विधान है। चौथा मनुष्ययज्ञ—भूखे मानव को भोजन देना प्रमुख है। इससे वर्ग प्रेम, सामाजिक जीवन की सत्यता और कर्त्तव्य पालन की पूर्ति होती है। पांचवां ब्रह्मयज्ञ—वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय, तप तथा अध्यापन-प्रवचन से सम्पन्न होता है। नित्य अपने पवित्र धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय करने से मन की पवित्रता, हृदय की उदारता, देवों की कृपा, शारीरिक लावण्य एवं बल, धन, कीर्ति आदि प्राप्त होते हैं।

आजकल यह देखा जाता है कि लोग अपने कर्मों की सफलता के लिए मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र साधन के प्रति तो निष्ठा रखते हैं किन्तु;नित्यकर्म के प्रति आग्रह नहीं रखते। जबकि शास्त्रकारों ने स्पष्ट कहा है कि—**"जो नित्यकर्म करता है, वह नैमित्तिक कर्म करने का अधिकारी होता है और जो नैमित्तिक कर्म करता है वह काम्य-कर्म का अधिकारी होता है।"** अतः इस तत्त्व को हृदयंगम करके आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहिए, जिससे किए जाने वाले कर्मों में सफलता प्राप्त हो तथा असफलता से तात्कालिक उद्वेग न हो।

'देवयज्ञ' में हवन करने की जो बात कही गई है, वह विशेष रूप से केवल हवन का ही संकेत नहीं है, अपितु "उससे पहले सूर्योदय से पूर्व उठना, शौच-स्नानादि से पवित्र होना, सन्ध्या करना, गायत्री जप, तर्पण, देव-पूजन तथा स्तोत्र पाठ आदि कुछ आवश्यक अंगों का अनुष्ठान करना भी उसमें सम्मिलित है।" इनमें सन्ध्या का महत्त्व सर्वाधिक है। क्योंकि सन्ध्याहीन कर्मों को देवता ग्रहण ही नहीं करते हैं। हमारे पूर्व महर्षियों ने जो दीर्घायु, नैरोग्य और सिद्धियां प्राप्त कीं थीं, उनके मूल में उनका दीर्घकाल तथा सन्ध्योपासन करना ही शास्त्रों में दिखाया गया है। अतः प्रत्येक साधना प्रेमी को अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार सन्ध्या अवश्य करनी चाहिए।

सन्ध्या स्वरूप-दर्शन

काल की दृष्टि से सन्ध्या के पांच काल हैं—१. प्रातः, २. मध्यान्ह, ३. सायं; ४. तुरीय और ५. पंचम काल। इनमें अर्धरात्रि से पहले का समय तुरीय और १२ बजे से ४ बजे तक का समय पंचम काल कहा जाता है। इन कालों में की जाने वाली सन्ध्याओं का विचार अति विस्तृत है जिसका लेखन हमने अन्य पुस्तक में किया है[1] किन्तु यहां इतना बतला देना आवश्यक समझते हैं कि "सन्ध्याओं के समय उत्तम प्रकार से अविच्छिन्न चैतन्य में तथा स्वयं अभेद भावना स्थापित करने की दृष्टि से ईश्वर-गायत्री-चिन्तन करें।" इसके लिए परम कृपालु आचार्यों ने जो सन्ध्या विधियां बतलाई हैं, उनका स्वगुरु प्रोक्त रूप में अनुसरण करें तथा ब्रह्मादि के आकार से अभिन्न जो कर्मसाक्षिणी, तेजोमयी ईश्वरीय शक्ति है, वही सन्ध्या है, यह मानकर सन्ध्या करें।

प्रसंगवश पाठकों के लिए सन्ध्या के पांच काल और उनमें किए जाने वाले सन्ध्या प्रयोगों की प्रतीक सूची यहां दी जा रही है। जो इस प्रकार है—

---

१. हमारी पुस्तक 'गायत्री-वरिवस्या' में देखें 'पंचकाल सन्ध्या : एक विवेचन लेख'। यह पुस्तक "श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, कटवारिया सराय, नई दिल्ली पिन-११००२४" से मुद्रित है।

पंचकाल-विचार

अहोरात्र का काल-विभाजन आगमों में पांच प्रकार से किया गया है, जिनमें क्रमशः **१. प्रातःकाल, २. मध्यान्ह, ३. सायान्ह, ४. तुरीय काल** (अर्धरात्रि से पूर्व) तथा **५. पंचमकाल** (रात्रि के १२ बजे से ४ बजे तक) का समयानुसारी विभाजन है। आगमिक शब्दों में इन्हीं को **१. सृष्टि, २. स्थिति, ३. संहार, ४. अनाख्या** तथा **५. भासाकाल** कहा जाता है। इन्हीं कालों में साधक वर्ग को साधना से पूर्व 'सन्ध्या' करने का उपदेश एवं उसके विधानों का भी आगमों में बहुशः निर्देश किया है। इन सन्ध्याओं में सन्ध्या की अधिष्ठात्री देवियां इस प्रकार हैं—

काल	अधिष्ठात्री देवी	वेद
१. सृष्टिरूपा प्रातः सन्ध्या	ब्रह्माणी	ऋग्०
२. स्थितिरूपा मध्यान्ह सन्ध्या	वैष्णवी	यजुः०
३. संहाररूपा सायं सन्ध्या	सरस्वती	साम०
४. तुरीयारूपा अनाख्या सन्ध्या	गायत्री पंचमुखी	अथर्व०
५. पंचमीरूपा भासा सन्ध्या	गायत्री विराड्रूपा	सर्ववेदसमष्टि (इतिहास पुराणयुता)

ये पांचों काल तन्त्र-शास्त्रों में काम्यकर्मों की भिन्न-भिन्न साधनाओं और आम्नायों के अनुसार भी कर्मभेद का सूचन करते हैं। आचार्यों का कथन है कि—"सन्ध्या में काललोप का उतना दोष नहीं लगता जितना कि क्रियालोप करने से लगता है। अतः कारण अथवा परिस्थितिवश यदि कदाचित् समय में सम-विषम-स्थिति आ जाए तो उसमें निम्नलिखित रूप से क्रिया करनी चाहिए—

१. प्रातःकाल की सन्ध्या पूर्ण करने के पश्चात् साथ ही मध्यान्ह सन्ध्या कर लें अथवा सायंकाल में सायंकालीन सन्ध्या से पूर्व मध्यान्ह सन्ध्या करके सायं सन्ध्या करें।

२. सायं सन्ध्या के पश्चात् साथ ही तुरीया सन्ध्या कर लें।

३. पंचमी सन्ध्या मध्यरात्रि में न हो सके तो ब्राह्ममुहूर्त में शय्याकृत्य से पूर्व कर ले।'

---

१. यह सामान्यतः निर्देश है। वैसे प्रयत्न यही रखना चाहिए कि यथा समय सभी कर्म किए जाएं।

प्रातः सन्ध्या-विधि-परिचय

इस काल की सन्ध्या का पूर्वांग **'शय्याकृत्य एवं प्रातःस्मरण'** से ही आरम्भ हो जाता है। साधक जैसे ही ब्राह्ममुहूर्त में निद्रा से उठता है तो वह १. चौरमन्त्र जप, २. कुलवृक्ष-वन्दना, ३. संसार-यात्रानुवर्तनाभ्यर्थना, ४. करतलावलोकन, ५. गुरु-पादुका-स्मरण—(क) विनियोग, (ख) ऋष्यादिन्यास, (ग) करन्यास, (घ) हृदयादि-न्यास, (ङ) ध्यान[1], (च) मुद्रा, (छ) मन्त्र जप और (ज) समर्पण, ६. कुण्डलिनी-मन्त्रजप (न्यासादि सहित), ७. अजपा-विधान (न्यासादिसहित आत्म-रूपध्यान, मानस पूजा और मूलाधार से सहस्रार-पर्यन्त समर्पण) तथा ८. गणेश, सूर्य, तुलसी, गौ, विष्णु, देवी, शिव, नवग्रह, ऋषि, पुण्य श्लोक पुरुष एवं स्वेष्ट देवादि का प्रातः स्मरण करे। तदनन्तर प्रातः कृत्य में भूमिस्पर्शन से स्नानादि-पर्यन्त विधि का अनुसरण करके सन्ध्यावन्दन के लिए आसन पर बैठे।

प्रातः सन्ध्या सब कालों में तथा सब कर्मों में प्रधान एवं अनिवार्य बतलाई गई है, क्योंकि इस सन्ध्या के करने के पश्चात् ही अन्यान्य साधनाओं का मार्ग प्रशस्त होता है। अतः इसमें संक्षिप्त, दीर्घ और प्रदीर्घ विधियों का निर्देश श्रुति एवं स्मृतिकारों ने किया है। आगमों में भो अनेक महत्त्वपूर्ण संकेत सन्ध्याविधि के लिए निर्दिष्ट हैं। अतः **'निगम एवं आगम-सम्मत'** प्रातः सन्ध्या की विस्तृत **विधेय-कर्म-सूची** यहां प्रस्तुत कर रहे हैं—

१. श्री गुरुस्मरण, २. श्री गणपति-स्मरण, ३. आसन-विधि, ४. पृथ्वी-प्रोक्षणपूर्वक आसन-पवित्रीकरण, ५. आचमन (विनियोग-पूर्वक केशवनारायणादि नमोऽन्त), ६. कर्मारम्भ प्राणायाम (मातृका-वर्णों से), ७. कुशपवित्रधारण, ८. शिखाबन्धन (विनियोग सहित 'मानस्तोके' तथा 'चिद्रूपिणी' से), ९. भस्म एवं सिन्दूर तिलक धारण, १०. रुद्राक्षमाला धारण, ११. देह शुद्धि के लिए सविनियोग 'अपवित्रः पवित्रो वा' मन्त्र से पवित्रीकरण, १२. सन्ध्यांगभूत आचमन (गायत्री मन्त्र द्वारा), १३. अनादिष्ट प्रायश्चित प्राणायाम (सप्तव्याहृति न्यास, अंगुली पर्वों पर वर्णन्यास तथा दस अंगुलियों पर गायत्री दश पदन्यास

---

१. यहां **'गुरु-पादुकापंचकस्तोत्र'** एवं **'मानसोपचार-पूजा'** भी कर्त्तव्य हैं।

करके एकादशप्रणव, सप्तव्याहृति एवं शिरोमन्त्रपूर्वक गायत्री मन्त्रात्मक तथा प्राणायामोत्तर त्रिव्याहृतिन्यास एवं गायत्रीचरण सहित), १४. कर्माधिकार प्राप्ति के लिए बीजमन्त्र जप, १५. कर्म-साक्षित्व के लिए प्रथम एक सूर्यार्घ्य, १६. सन्ध्या-संकल्प, १७. इन्द्रिय शुद्ध्यर्थ('ॐ विष्णुर्विष्णु:' से दशांग स्पर्शन तथा 'भूरादि सप्त व्याहृति' एवं 'खं ब्रह्म' से अष्टांग) मार्जन, १८. भूशुद्धि (विघ्नकर्तृ भूतापसारण तथा भैरव नमस्कारयुक्त) १९. भूत-शुद्धि, २०. आत्म-प्राणप्रतिष्ठा, २१. अन्तर्मातृका-न्यास (सृष्टि क्रम से), २२. बहिर्मातृकान्यास (सृष्टि क्रम से), २३. गायत्र्यावाहन (गायत्रीं त्र्यक्षरां० से), २४. अम्बूपस्पर्शन (सूर्यश्च मा० मन्त्र से), २५. मार्जन (आपो हि ष्ठा० से), २६. जलाव-ग्रहण (सुमित्रिया० से), २७. अघमर्षण एवं पापपुरुष निरसन (द्रुपदा-दिव० तथा ऋतं च सत्यं च० से), २८. आचमन (अन्तश्चरसि० द्वारा), २९. कालातिक्रमदोषनिवारणार्थं द्वितीयार्घ्य[1], क—विनियोग ख—ऋष्यादिन्यास, ग—करन्यास, घ—हृदयादिन्यास, ङ—ध्यान-पूर्वक अर्घ्यदान), ३०. वायव्यास्त्र मन्त्र द्वारा प्राणायाम तथा मन्त्रा-कर्षण, ३१. तृतीयार्घ्यदान (ब्रह्मास्त्र से सूर्यारिशस्त्र नाशन के लिए विनियोगादिपूर्वक तथा सप्तमुद्रा[2] प्रदर्शन सहित विलोम त्रिपाद गायत्री मन्त्र द्वारा अर्घ्य देकर वायव्यास्त्र प्राणायाम एवं मन्त्राकर्षण) ३२. चतुर्थ अर्घ्यदान(ब्रह्मदण्ड से सूर्यारिवाहन-विनाश के लिए विनियोगादि-पूर्वक तथा अष्टमुद्रा[3] प्रदर्शन सहित चतुष्पाद विलोम गायत्री मन्त्र द्वारा अर्घ्य देकर पूर्ववत् प्राणायाम एवं मन्त्राकर्षण), ३३. पंचमार्घ्य-दान (ब्रह्मशीर्ष से सूर्यारि-नाशन के लिए विनियोगादिपूर्वक अष्टमुद्रा[4]

---

१. यहां से 'षडर्घ्य-विधान' सातवें अर्घ्य तक है। अर्घ्यदान मन्त्रों के स्वरूप भिन्न-भिन्न हैं। इस अर्घ्य के मन्त्र में सर्वप्रथम 'ॐ हलरीं' और अन्त में 'ॐ अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु दारन्ति यद्वचः' मन्त्र का भी समावेश है।

२. ब्रह्मास्त्र मुद्रा—डमरुं खेचरं चैव चक्रे बाणं गदां तथा।
खड्गं त्रिशूलकं चैव ब्रह्मास्त्रस्य च मुद्रिकाः॥

३. चक्रं पाशं च कमलं बाणं खड्गं तथांकुशम्।
मुशलं मुद्गरं चैव ब्रह्मदण्डस्य मुद्रिकाः॥

४. निर्वाणं खेचरं खड्गं योनिः पाशं कपालम्।
अङ्कुशं तोमरं चैव ब्रह्मशीर्षस्य मुद्रिकाः॥

दिखाकर त्रिव्याहृति, शिरोमन्त्र, तुरीयपाद तथा त्रिपदा गायत्री द्वारा अर्घ्य देकर पूर्ववत् प्राणायाम एवं मन्त्राकर्षण), ३४. षष्ठार्घ्यदान (ब्रह्मशिखा से सूर्यारि शस्त्र वाहन नाश जनित दोषनिवृत्ति के लिए विनियोगादिपूर्वक[1] मुद्रा-प्रदर्शन सहित सप्त व्याहृति, त्रिपदा गायत्री, तुरीय पाद, शिरोमन्त्र एवं 'अर्चयन्ति' मन्त्र के अनुलोम विलोम द्वारा अर्घ्य देकर (पूर्ववत् प्राणायाम एवं मन्त्राकर्षण), ३५. सप्तमार्घ्य दान (सूर्यनारायण की प्रसन्नता के लिए विनियोगादि सहित त्रिव्याहृति, त्रिपदा गायत्री, तुरीय एवं शिरोमन्त्र के साथ अर्चयन्ति० मन्त्र से अर्घ्य देकर पूर्ववत् प्राणायाम एवं मन्त्राकर्षण), ३६. अष्टमार्घ्यदान (वैश्वदेवाकरण प्रत्यवायशमनपूर्वक सूर्यनारायण की प्रसन्नता के लिए आकृष्णेन' मन्त्र से अर्घ्य देकर 'ॐ असावादित्यो ब्रह्म' इस मन्त्र से अपने चारों ओर जलांजलि से प्राकार बनायें। तदनन्तर चतुर्वेद-स्वरूपिणी गायत्री, सावित्री, सरस्वती और ब्रह्माणी नामोच्चारण पूर्वक चतुष्पदा गायत्री के चार खण्डों से आचमन कर पूर्ववत् प्राणायामादि करें।)[2] ३७. सूर्योपस्थान (उद्वयमुदुत्यादि मन्त्र चतुष्टय से), ३८. गायत्र्यन्तर्धारण (ब्रह्म तेज प्राप्ति के लिए), ३९. गायत्र्यावाहन (तेजोऽसि० द्वारा,) ४०. गायत्र्युपस्थान, (गायत्र्यस्मेकपदी० द्वारा), ४१. गायत्री शाप विमोचन (ब्रह्मा, वशिष्ठ, अगस्त, वरुण, विश्वामित्र, गौतम और सर्वशापादि) ४२. गायत्री जप-विनियोग, ४३. न्यास (१. ओंकार, २. व्याहृति, ३. मन्त्रपाद, ४. मन्त्रपद, ५. मन्त्राक्षर, और ६. तुरीयपाद न्यास सहित) ४४. प्रातर्गायित्रीध्यान (ब्रह्माणी चतुराननाः० से), ४५. चौबीसमुद्रा दर्शन, ४६. गायत्र्युत्कीलन, ४७. जातक-सूतकनिवृत्तिमन्त्र जप, ४८. गायत्री हृदय पाठ, ४९. गायत्री जप (पूर्वांग—१. गायत्री भैरव—दशांश, २. गायत्री प्रथम पाद—दशांश, ३. मूल मन्त्र-पंचप्रणव, त्रिबीज, त्रिव्याहृति, त्रिपाद तथा नमोऽन्त, ४. तुरीयपाद-अष्टांश, ५. शिव-

---

१. वज्राभये•••इत्यादि (पूर्णः पाठो न लब्धः)।

२. इस अर्घ्य को सम्प्रति कालातिक्रमण दोष की निवृत्ति हेतु देने की परम्परा है। यदि वैश्वदेव किया जाता है तो यह अर्घ्य देना आवश्यक नहीं है।

पंचाक्षर मन्त्र—दशांश क्रम से' तथा जपान्त में उत्तरांग—मृताशौच मन्त्र जप, उत्कीलन मन्त्र जप, अष्ट मुद्रादर्शन, गायत्री कवच पाठ और जपनिवेदन), ५०. गायत्री-तर्पण, मार्जन, प्रदक्षिणा तथा सूर्यादि देवता नमस्कार, ५१. प्रार्थना, विसर्जन, अभिवादन, कर्मपूत्यर्थ अर्घ्यदान (नवम), शिखामुक्ति, पुनः शिखा बन्धन, तथा आसनाधःस्थित मृत्तिका से तिलक धारण।

मध्याह्न सन्ध्या-विधि परिचय

इस काल की सन्ध्या में करणीय कर्मों की तालिका इस प्रकार है—

१. श्रीगुरुस्मरण, २. श्रीगणपतिस्मरण, ३-१२. आसनादि-विधि से सन्ध्याङ्गभूत आचमनविधि तक प्रातः सन्ध्या के समान, १३. प्राणायाम, (अनादिष्ट प्रायश्चित्तात्मक पूर्ववत् न्यासादि सहित), १४. सन्ध्याङ्गसंकल्प, १५. दशांगस्पर्शन एवं अष्टांगमार्जन, १६. अंतर्मातृकान्यास, (स्थिति क्रम से) १७. बहिर्मातृकान्यास (स्थिति क्रम से), १८. गायत्र्यावाहन ('सावित्री युवतिं शुक्लाम्'० से) १९. अम्बूपस्पर्शन (अग्निश्च मा० से) २०. मार्जन (आपो हिष्ठा से), २१. जलावग्रहण, २२. अघमर्षण एवं पापपुरुष निरसन, २३. आचमन (अंतश्चमसि से०) २४. शुद्धार्घ्यदान, (स्थितिक्रमात्मक गायत्री मंत्र से) २६. प्रायश्चित्तार्घ्यदान, २७. आचमन तथा प्राणायाम, २८. सूर्योपस्थान, २९. गायत्र्यन्तर्धारण, ३० गायत्र्युपस्थान, ३१. गायत्रीजपविनियोग, ३२. न्यास—(१) ओंकार०, (२) व्याहृति ०, (३) मंत्रपद०, (४) मन्त्रपाद० (द्वितीय), (५) मन्त्राक्षर०, ३३. मध्याह्न गायत्रीध्यान, ३४. चौबीस मुद्राप्रदर्शन (मध्याह्न मुद्रा पद्धति से), ३५. गायत्रीजप स्थिति क्रम से, (१) गायत्रीभैरव जपदशांश, (२) द्वितीयपाद जपदशांश, (३) मूलगायत्रीजप (२-३-१ क्रमात्मकत्रिपाद पञ्चप्रणव त्रिबीज

---

१. गायत्री-जप का यह प्रकार 'गायत्री-स्तवराज, वशिष्ठ स्मृति, विश्वामित्र स्मृति एवं प्राचीन सन्ध्या विधियों के आधार पर संग्रहीत है। बीजत्रय सम्पुटित मन्त्र से भिन्नपाद-गायत्री का जाप होता है। इसमें कुण्डलिनी बीज, भुवनेश्वरी बीज, बाला बीज आदि अपनी-अपनी दीक्षा के अनुसार जोड़े जाते हैं।

नमोऽन्त गायत्री मंत्र से। (४) तुरीयपादन्यास एवं तुरीयपादजप-अष्टांश, (५) शिवपञ्चाक्षरमन्त्र जप-दशांश; ३६. अष्टमुद्रादर्शन एवं जपनिवेदन, ३७. गायत्रीतर्पण मार्जन प्रदक्षिणा, ३८. सूर्यादि देवता नमस्कार, ३९. प्रार्थना, विसर्जन, अभिवादन, शिखामुक्ति एवं पुनर्बन्धन, ४०. आसन के अधःस्थ मृत्तिका द्वारा तिलक धारण।

सायं सन्ध्या विधि-परिचय

इस काल की सन्ध्या में जिन-जिन कर्मों का विधान प्राप्त होता है, उनकी परिचयात्मक-सूची निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है—

१. श्रीगुरुस्मरण, २. श्रीगणपतिस्मरण, ३-१२. आसनादि-विधि-पूर्ववत् (यह कृताकृत कही गई है), १३. सन्ध्यांगभूत आचमन, १४. प्राणयाम (न्यासादि सहित) १५. सन्ध्या-संकल्प, १६. इन्द्रिय-शुद्धिमूलक मार्जन, १७. अन्तर्मातृकान्यास (संहारक्रम से) १८. बहिर्मातृकान्यास (संहार क्रम से), १९. गायत्र्यावाहन, (वृद्धां सरस्वती०), २०. अम्बूपस्पर्शन (अग्निश्च०), २१. मार्जन (आपो हिष्ठा), २२. जलावग्रहण, २३. अघमर्षण तथा पापपुरुष निरसन, २४. आचमन, २५. ब्रह्मास्त्र मन्त्र से प्रथमार्घ्यदान, २६. ब्रह्माण्ड-मन्त्र से द्वितीयार्घ्यदान, २७. ब्रह्मशीर्ष मन्त्र से तृतीयार्घ्यदान, २८. ब्रह्मशिखा मन्त्र द्वारा चतुर्थार्घ्यदान, २९. शुद्धार्घ्यदान, ३०. आवश्यकता होने पर प्रायश्चित्तार्घ्यदान, ३१. आचमन तथा प्राणायाम, ३२. सूर्योपस्थान, ३३. गायत्र्यन्तर्धारण, ३४. गायत्र्यावाहन एवं उपस्थान, ३५. गायत्रीजपविधान (विनियोग, न्यास-पंचविध संहारक्रम से), ३६. गायत्रीध्यान, ३७. चौबीसमुद्राप्रदर्शन संहार क्रम से) ३८. गायत्री-जप-प्रक्रिया—(१) गायत्री भैरवमंत्र-दशांश, (२) गायत्री तृतीय पाद जप-दशांश, (३) सायं गायत्रीमंत्र जप (३-२-१ पाद क्रम से पंचप्रणव, त्रिबीज, त्रिव्याहृति एवं नमोऽन्त), (४) तुरीय पादन्यास तथा तुरीय-पादजप अष्टांश, (५) शिवपंचाक्षर मन्त्रजप-दशांशः ३९. आठ मुद्राओं का प्रदर्शन, ४०. गायत्री कवच पाठ, ४१. जप निवेदन, ४२. गायत्री-तर्पण, मार्जन, प्रदक्षिणा, सूर्यादि देवता नमस्कार तथा प्रार्थना, ४३. विसर्जन तथा अभिवादन, ४४. कर्मपूर्त्यर्घ्यदान, शिखामुक्ति तथा पुनर्बन्धन, ४५. आसन नमस्कार एवं सन्ध्याभूमिमृत्तिका वन्दन।

तुरीय काल सन्ध्या-विधि-परिचय

तुरीय का अर्थ चार होता है। अतः इस समय में की जाने वाली सन्ध्या को तुरीया कहते हैं। इसी का आगमिक नाम 'अन्तर्लीन' अथवा 'अनाख्या' भी है। यह सन्ध्याकाल प्रकट रूप से दृष्टिगोचर नहीं होता है; किन्तु रात्रिकाल के प्रारम्भ से कुछ पश्चात् प्रायः ९ बजे का समय इसके लिए शास्त्रविहित है। कालापकर्षण के अनुसार इसे सायं-सन्ध्या पूर्ण करके भी किया जा सकता है। इस सन्ध्या में कर्तव्य कर्मों की सूची निम्नलिखित है—

१. श्रीगुरुस्मरण, २. श्रीगणपतिस्मरण, ३. सन्ध्यांगभूत आचमन, प्राणायाम, ५. सन्ध्यासंकल्प, ५. अन्तर्मातृका न्यास, ६. अनाख्यामातृका न्यास, ७. तुरीयागायत्र्यावाहन, ८. एक अर्घ्यदान, ९. आचमन एवं प्राणायाम, १०. चन्द्रोपस्थान, ११. तुरीयान्तर्धारण, १२. तुरीयावाहन, १३. तुरीयोपस्थान, १४. तुरीया जप प्रयोग— (१) विनियोग न्यास, प्रणव, व्याहृति एवं तुरीया पदन्यास, मन्त्रपाद-न्यास, मन्त्राक्षर न्यास तथा तुरीया गायत्रीध्यान; १५. आयुध मुद्रा प्रदर्शन, १६. तुरीया भैरव जप, तुरीया पाद जप, चतुष्पदा गायत्री जप, तुरीया पादजप-अष्टांश तथा शिवपंचाक्षर मंत्रजप-दशांश, १७. तुरीया गायत्री वर्णस्तोत्र पाठ, १८. जप निवेदन, १९. चन्द्रादि देव नमस्कार, २०. प्रार्थना तथा २१. विसर्जनादि।

पंचम काल-सन्ध्या-विधि-परिचय

इस काल की सन्ध्या में भस्मधारण से अर्घ्यदान तक का प्रयोग नहीं होता है; क्योंकि यह सन्ध्या प्रातःसन्ध्या से पूर्व की जाती है। इस में साधक रात्रिवस्त्र त्याग करके शुद्ध वस्त्र धारण करे।[1] तदनन्तर आसन पर पूर्व अथवा उत्तराभिमुख बैठकर निम्नलिखित विधि का अनुसरण करे—

१. गुरु-स्मरण, २. विराट् गणपति स्मरण, ३. सन्ध्यांगभूत मानसिक-आचमन, ४. प्राणायाम, ५. भासा-सन्ध्या का मानसिक

---

१. इस समय स्नान न कर सकें तो हस्तपादादि प्रक्षालन पूर्वक भस्मस्नान (भस्म धारण) करें।

संकल्प, ६. अन्तर्मातृकान्यास (भासा प्रक्रियात्मक) ७. बहिर्मातृकान्यास (भासाप्रक्रियात्मक), ८. भासाध्यान, ९. अंगपूजा, १०. आयुधपूजा, ११. आयुध मुद्रा प्रदर्शन, १२ जपविनियोगादि (ऋष्यादिन्यास, करन्यास, षडंगन्यासयुक्त) १३. मंत्रन्यास (पंचपदा गायत्री का) १४. शताक्षरा गायत्री विनियोग, (त्रिविधन्यास सहित), ध्यान तथा जप, १५. पंचपदा गायत्री विनियोग (विविध न्यास एवं ध्यान) १६. जप।

इस काल में मन्त्रजप के दो प्रकार होते हैं—१. सामान्य एवं २. विशिष्ट।

(१) सामान्य जप प्रकार

१.	पंचपदा गायत्री भैरव-मंत्र	दशांश	ॐ खं ब्रह्म
२.	पंचपदा गायत्री का मन्त्रपद	,,	आपो ज्योती०
३.	,, ,, समस्त मंत्र	संकल्पानुरूप	पंचपदा
४.	,, ,, पंचम पाद	अष्टांश	आपो ज्योती०
५.	शिवमंत्र पंचाक्षर	दशांश	ॐ नमः शिवाय

(२) विशिष्ट जप प्रकार

इसमें सर्व देवमयी विराड् रूपा निर्वाण गायत्री का तथा प्रत्येक आम्नाय-नायिका का भाषाक्रम से ध्यान करके वार-परत्वेन जप किया जाता है। इनके मंत्रजप की तालिका इस प्रकार है—

क्रम वार	जप स्थान	आम्नाय नायिका	रश्मि
१. रविवार	मूलाधार चक्रस्थान	तारा	पार्थिव रश्मि
२. सोमवार	मणिपूर ,,	भुवनेश्वरी	जल ,,
३. मंगलवार	स्वाधिष्ठान ,,	दक्षिणकालिका	तेजो ,,
४. बुधवार	अनाहत ,,	कुब्जिका	वायु ,,
५. गुरुवार	विशुद्ध ,,	गुह्य कालिका	आकाश ,,
६. शुक्रवार	आज्ञा ,,	बाला त्रिपुरा	मानसांश ,,
७. शनिवार	सहस्रार ,,	महा त्रिपुर सुन्दरी	सर्वाग्नि० ,,

१. इन देवियों के मन्त्रों को गायत्री के तीनों चरणों के साथ तीन भाग वेष्टित करके जप करने का विधान है। वेष्टन विधि बाला के समान समझें।

२. दशमहाविद्याओं से दीक्षित **'दशमहाविद्यामयी गायत्री'** का ध्यान करके तत्तद् देवी मन्त्रवेष्टित गायत्री का जप करें।

३. जो सर्वाम्नायी उपासक हो वह लघु षोढा एवं महा षोढा न्यास के पश्चात् जप करता है।

४. जो सामान्य उपासक हों वे अपने इष्टमन्त्र के साथ गायत्री के तीनों पादों को वेष्टित करके जप करते हैं।

५. जो आम्नायक्रम से दीक्षा प्राप्त न होकर केवल गायत्री से ही दीक्षित हों वे उपासक शिरोमन्त्र **'आपोज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म-भूर्भूवः स्वरोम्'** तथा **'अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु क्षरन्ति यद् ऋचः'** मन्त्र का जप करें।

इसी समय शताक्षरा गायत्री-जप का भी विधान है। जप के पश्चात् १७. अष्टमुद्रा दर्शन[1], १८. जप निवेदन, १९. प्रार्थना तथा २०. विसर्जन करके पंचम काल की सन्ध्या सम्पन्न करें। सभी मुद्राएं पंचतत्त्वरूप हैं। कनिष्ठादि पृथ्वीतत्त्व से बनती हैं और ये कनिष्ठादि अंगुलियां मूलाधारादि चक्ररूप भी हैं। इनका परस्पर मेल न होने से नाडियों के माध्यम से उन चक्रों में चैतन्य आता है। ये सभी नाडियां कुण्डलिनी से सम्बद्ध हैं, अतः मुद्राएं कुण्डलिनी-प्रबोधन में सहायक होती हैं। इसीलिए मुद्रा-प्रदर्शन आवश्यक बतलाया है।

तान्त्रिक-सन्ध्या

इसके अतिरिक्त दीक्षित उपासकों तथा तान्त्रिक साधकों के लिए वैदिक सन्ध्या करने के पश्चात् 'तांत्रिक सन्ध्या करने का विधान है। "वैदिकीं समाप्य तांत्रिकीं समाचरेत्' यह सूत्र-वचन है। इसमें दीक्षित साधकों के लिए यह विशेष है कि वे गुरु परम्परा के अनुसार चार कालों की सन्ध्या करें। इस प्रकार नित्यक्रम करने से साधक क्रमशः शाम्भवरूप होकर सिद्धिलाभ करता है। इन्हीं सन्ध्याओं के साथ मन्त्र-पारायण भी होते हैं।

तान्त्रिक सन्ध्या में अपने इष्टमन्त्र से १. आचमन, २. प्राणायाम, ३. मार्तण्डभैरवरूप सूर्य को अर्घ्य, ४. इष्टदेव का ध्यान, ५. इष्टदेव को अर्घ्य एवं तर्पण, ६. मूलमन्त्र के विनियोगादि करके उसका

जप तथा ७. समर्पण प्रमुख हैं। यह सन्ध्या वैदिक सन्ध्या के अनन्तर ब्रह्मयज्ञ और देव-ऋषि-मनुष्य तर्पण के बाद करने का भी निर्देश है।

पंचदेव-पूजन-विचार

गृहस्थ मात्र के लिए गणपति, शिव, विष्णु, सूर्य और देवी की उपासना सर्वोपयोगी बतलाई है। इनमें जो देव इष्ट है उसे मध्य में स्थापित कर अन्य देवों को चारों कोणों में अथवा चारों दिशाओं में स्थापित करना चाहिए। इन पंचदेवों को पंचतत्त्व के आधार पर स्वीकार किया गया है। यथा—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

अर्थात् १. आकाशतत्त्व के अधिपति विष्णु २. अग्नितत्त्व की अधिष्ठात्री महेश्वरी शक्ति, ३. वायुतत्त्व के स्वामी सूर्य, ४. पृथ्वी-तत्त्व के अधिष्ठाता शिव और ५. जलतत्त्व के अधिपति गणपति हैं। यह पंचतत्त्वमयी सृष्टि निरापद और सौम्यरूप से प्रवर्तित होती रहे, पांचभौतिक शरीरधारी प्राणी सुखी रहें तथा साधक अपनी सभी जीवनदायिनी शक्तियों से सम्पन्न होकर सानन्द जीवन-यापन करे— इस दृष्टि से 'पंचदेवोपासना' प्रत्येक मनुष्य के लिए निर्धारित है। शास्त्रकारों ने इन्हीं पांच देवों को अनेक रूपों में वर्णित किया है, और निर्देश किया है कि इनको समष्टि पूजा करना प्रत्येक गृहस्थ के लिए कल्याणकारी है। विशिष्ट देवोपासना में भी इनकी पूजा को आवश्यक माना गया है तथा इनमें परस्पर अभेददृष्टि रखने पर ही सिद्धि मिलने के संकेत दिए हैं।

सभी शास्त्रों में प्रमुख साध्य देव की अर्चना के साथ अन्य चारों तत्त्वों के देवों की अर्चना पर भी बल दिया गया है। 'रुद्रयामल' भी इसी का अनुसरण करता है। इन्हीं पांच देवों के जो अवान्तर स्वरूप हैं उनकी भी साधना का प्रतिपादन यत्र-तत्र हुआ है। सभी उपासनाओं में मार्गदर्शक गुरु का बड़ा महत्त्व है ही। अतः हमने इसी प्रक्रिया को ध्यान में रखकर यहां क्रमशः उनका वर्णन किया है।

जो लोग अपने घरों में प्रतिमाओं की पूजा करते हैं उन्हें उक्त

पांचों देवों की प्रतिमाएं रखनी चाहिएं। उन प्रतिमाओं को जिस क्रम से रखते हैं उसका स्वरूप निम्नलिखित कोष्ठकों में सूचित अंकों के अनुसार समझें।

प्रतिमा-स्थापन-प्रकार

३ विष्णु ४ शिव	३ विप्णु ४ शिव	३ विष्णु ४ सूर्य	३ शिव ४ गणेश	३ शिव ४ गणेश
१	१	१	१	१
शक्ति	गणेश	शिव	विष्णु	सूर्य
२ सूर्य ५ गगेश	२ देवी ५ सूर्य	२ देवी ५ गणेश	२ देवी ५ सूर्य	२ देवी ५ विष्णु

एक देव की एक से अधिक प्रतिमाओं के रखने के सम्बन्ध में भी कुछ नियम हैं, अतः उन पर भी विचार करके शास्त्राज्ञा का पालन करें। गीता का यह वचन सदा स्मरण रखें कि—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामचारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

जो शास्त्रविधि का त्याग करके मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त करता है, न सुख को और न परम गति को प्राप्त करता है। इसी के साथ यह वचन भी स्मरणीय है—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

अर्थात् 'कार्य और अकार्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है।' इस प्रकार पंचदेवताओं की नित्यपूजा करते हुए किसी एक देवता की विशिष्ट उपासना करने से जो शास्त्र की आज्ञा है उसका पालन भी हो जाता है और हमारा लक्ष्य भी एक निश्चित दिशा में बढ़ता हुआ हमें सफलता तक ले जाता है।

२. तान्त्रिक उपासना का मंगल प्रस्थान : श्री गुरु उपासना

समस्त तान्त्रिक वाङ्मय में उपासना का मंगल प्रस्थान श्रीगुरु की उपासना से ही आरम्भ होता है। 'गुरु बिनु ज्ञान नहीं' वाली उक्ति वस्तुतः सत्य है। प्रत्येक प्रकार का ज्ञान गुरु द्वारा ही प्राप्त होता है। यह बात तान्त्रिक उपासना के क्षेत्र में और भी अधिक महत्त्व रखती

है, क्योंकि इस क्षेत्र में अनेक रहस्यों को गुप्त रखने के लिए पद-पद पर शास्त्रकारों ने आदेश दिये हैं। इनके साथ ही तन्त्र-साधना में ज्ञान के साथ-साथ कर्म को भी उतना ही महत्व दिया गया है। जिस प्रकार कोई पक्षी आकाश में एक पंख से नहीं उड़ सकता उसी प्रकार केवल ज्ञान अथवा केवल कर्म से इस मार्ग में सिद्धि नहीं मिलती है[1]। ज्ञान तो हमें ग्रन्थों से भी कुछ अंशों में मिल जाता है, किन्तु कर्म-क्रिया की पद्धति तो गुरु से ही प्राप्त होती है।

एक और महत्त्व की बात यह है कि गुरुद्वारा मिले हुए मार्ग-दर्शन से एक निश्चित संरक्षण मिल जाता है। उसमें शंकाओं को कोई अवकाश नहीं रहता। रुद्रयामल (उत्तर तन्त्र) में 'गुरुमहिमा' बतलाते हुए कहा गया है कि—

गुरुपाद-विहीना ये, ते नश्यन्ति ममाज्ञया।
गुरुर्मूलं हि मन्त्राणां, गुरुर्मूलं परं तपः ॥१/१८८॥
गुरोः प्रसादमात्रेण, सिद्धिरेव न संशयः।
अहं गुरुरहं देवो, मन्त्रार्थोऽस्मि न संशयः ॥१८९॥

इत्यादि।

"भगवती भैरवी ने यहां स्वयं कहा है कि—गुरु सेवा से विहीन मेरी आज्ञा से नष्ट हो जाते हैं। समस्त मन्त्रों का मूल गुरु ही है। गुरु ही परम तप है। गुरु की केवल प्रसन्नता से हो अवश्य सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं है। मैं भैरवी ही गुरू हूं और मैं ही मन्त्रार्थ हूं।" इस कथन से यह स्पष्ट है कि उपास्य देव और गुरु दोनों में समान श्रद्धा रहने पर ही उपासना फलवती होती है।

गुरु की कृपा से शक्ति प्रसन्न होती है और शक्ति की प्रसन्नता से मोक्ष प्राप्त होता है। गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए तथा अहर्निश दास की तरह उनकी आज्ञा माननी चाहिए। इतना ही नहीं, गुरु की पादुका, आसन, वस्त्र, शय्या, भूषण आदि देखकर भी उन्हें प्रणाम करना चाहिए।

---

१ उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां पक्षिणः खे यथागतिः।
तथैव ज्ञान-कर्माभ्यां साधनायां सदा गतिः॥

गुरु-प्रणाम के लिए कतिपय नियमों का निर्देश भी यहां किया गया है जिसमें बतलाया गया है कि—सदा पादुकामंत्र का स्मरण करता रहे। जब गुरु और शिष्य एक स्थान अथवा एक ग्राम में रहते हों तो प्रतिदिन उनके पास जाकर प्रणाम करना चाहिए। सात योजन तक के विस्तार में यदि गुरु रहते हों तो मास में एक बार दर्शन करना चाहिए। श्रीगुरु जिस दिशा में रहते हों, उस दिशा में भक्तिपूर्वक प्रणाम करें। उनके साथ एक आसन पर नहीं बैठें। और अन्त में कहा है कि—

गुरुभक्त्या च शक्रत्वमभक्त्या शूकरो भवेत् ।
गुरुभक्तेः परं नास्ति भक्तिशास्त्रेषु सर्वतः ॥२४३॥

श्री गुरु उपासना के प्रकार

उपासना-मार्ग के प्रत्येक अनुयायी के लिए गुरु-स्मरण का बड़ा महत्त्व है। अतः प्रातःकाल में निद्रा का त्याग करते ही हाथ, पैर मुखादि का प्रक्षालन करके पवित्रता-पूर्वक सहस्रार में गुरु, परमगुरु और परमेष्ठी गुरु का गुरूपदेशानुसार पादुकामंत्र-जप करके स्मरण करना चाहिए। रुद्रयामल के अनुसार स्मरण-योग्य पद्य इस प्रकार हैं—

शिरःस्थितसुपंकजे तरुण-कोटि-चन्द्रप्रभं,
वराभय-कराम्बुजं सकल-देवतारूपिणम् ।
भजामि वरदं गुरुं किरण-चारु-शोभाकुलं,
प्रकाशित-पदद्वयाम्बुज-लसत्क-कोटिप्रभम् ॥२/३८॥
जगद्भय-निवारणं भुवन-भोग-मोक्षप्रदं,
गुरो पदयुगाम्बुजं जयति यत्र योगे जयम् ।
भजामि परमं गुरुं नयन-पद्म-मध्यस्थितं,
भवाब्धि-भयनाशनं शमनयोगकायक्षयम् ॥३९॥
प्रकाशित-सुपंकजे मृदुल-षोडशाख्ये प्रभुं,
परापरगुरुं भजे सकल-बाह्यभोगप्रदम् ।
विशालनयनाम्बुज-द्वय-तडित्प्रभामण्डलं,
कडार-मणिपाटलप्रभ-समुल्लसद् बिन्दुकम् ॥

चलाचल कलेवरं प्रचपले दले द्वादशे,
महौजसमुमापतेर्विगतदक्षभागे हृदि ।
प्रभाकर-शतोज्ज्वलं सुविमलेन्दुकोट्याननं,
भजामि परमेष्ठिनं गुरुमतीव वारोज्ज्वलम् ।।४१।।

गुरु-मन्त्र के सम्बन्ध में कहा गया है कि ॐ ऐं (नाम)[1] **आनन्दनाथाय गुरवे नमः ॐ'** इस प्रकार लघु मन्त्र का जप किया जाए अथवा **'गुरु-पादुका-मन्त्र'** जो उपदेश से प्राप्त हुआ हो, उसका जप करें। गुरु-स्तोत्र का पाठ करें ।

रुद्रयामल का यह कथन सदा ध्यान में रखना चाहिए कि—

गुरुभक्तेः परं नास्ति भक्तिशास्त्रेषु सर्वतः ।
गुरुपूजां विना नाथ ! कोटिपुण्यं वृथा भवेत् ॥

अर्थात् सम्पूर्ण भक्ति-शास्त्रों में गुरु की भक्ति से बढ़कर कोई दूसरी भक्ति नहीं है। इसलिए हे नाथ ! गुरु की पूजा किए बिना करोड़ों पुण्य भी व्यर्थ हो जाते हैं।

गुरु-पूजा एक तो नित्य होती है और एक **'गुरु-जयन्ती'** आषाढ़-शुक्ला पूर्णिमा अर्थात् गरु-पूर्णिमा को होती है। नित्य-पूजा में स्मरण तथा चित्र-पूजा होती है, किन्तु गुरु-पूर्णिमा को विशेषतः यदि गुरु विद्यमान हों तो 'साक्षात्-पूजा' और न हों तो 'विशेष पूजा' करनी चाहिए। तान्त्रिक सम्प्रदाय के अनुसार सशक्ति गुरु की पूजा होती है। शक्ति (गुरु पत्नी) के अभाव में ज्ञान-शक्ति का स्मरण-पूजन होता है। विशेष पूजा में गुरुमण्डलार्चन का आगमिक विधान है। 'आगम-रहस्य' में 'गुरु-पूजन-पंचांग' का संकलन करते हुए वहां 'गुरु-ध्यान, मंत्र, पटल, गायत्री, प्रार्थनास्त्रोत, कवच, पूजन-पद्धति' आदि का निर्देश किया गया है। अतः विशेष जानने और कर्म करने के इच्छुक मूल-पाठ वहीं से प्राप्त करें।

गुरु-पूजन और पूजा-विधान

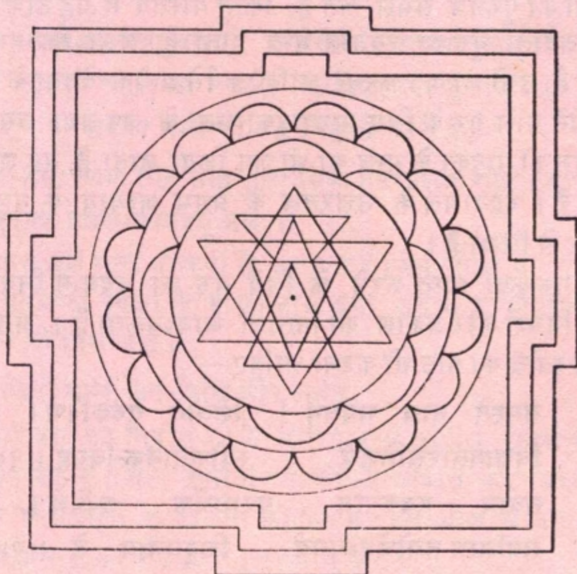
गुरु-यंत्र का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

---

१. मन्त्रदाता गुरु का जो नाम हो उसके साथ चतुर्थी विभक्ति का एक वचन लगाकर बोलें।

बिन्दु-त्रिकोणं वसुकोण-विम्बं, वृत्ताष्टपत्रं शिखिवृत्तयुक्तम् ।
धरागृहं वह्नितुरीभिराढ्यं यन्त्रं गुरोर्देवि मया प्रदिष्टम् ।।

इसके अनुसार १. बिन्दु, २. त्रिकोण, ३. अष्टकोण, ४. अष्टदल तथा ५. भूपुर से यह यंत्र बनता है। यथा—



इस यन्त्र को सिन्दूर, कुंकुम अथवा चन्दन से भूर्जपत्र अथवा चन्दन के पट्टे पर बनाकर पहले प्रतिष्ठा करें। तदनन्तर शक्ति सहित श्रीगुरु की **बिन्दु** में स्थापना और पूजा करे। **चारों द्वारों पर**—'गणेश, धर्म, वरुण तथा कुबेर' की, **अष्टदल में**—'असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाल, भीषण और संहार-भैरव' की, **अष्टकोण में**—'परमानन्दनाथ, प्रकाशानन्दनाथ, भोगानन्दनाथ, समयानन्दनाथ गगनानन्दनाथ, विश्वनन्दनाथ, भुवनानन्द नाथ तथा स्वात्मानन्द नाथ रूप' अष्ट कुलगुरुओं की त्रिकोण में 'मदनानन्दनाथ, लीलानन्दनाथ तथा महेश्वरानन्द नाथ' की पूजा करें। **बिन्दु में पुनः** गुरु और उनके ऊपर वाले भाग में परमगुरु, परात्पर गुरु और परमेष्ठि गुरु की भक्तिपूर्वक षोडशोपचार-पूजा करें। **गुरु गायत्री**—'ॐ वेदादिगुरुदेवाय विद्महे, परमगुरवे

धीमहि, तन्नो गुरुः प्रचोदयात्' के द्वारा भी यह पूजा-विधान सम्पन्न किया जा सकता है।

इस प्रकार यन्त्र पूजा करके किसी एक गुरु-मन्त्र का जप करना चाहिए। सर्वसाधारण में यह भी परम्परा प्रचलित है कि गुरुजी के द्वारा जो मन्त्र प्राप्त होता है, वह चाहे किसी देव-विशेष का हो, फिर भी उसी को गुरुमंत्र समझ लेते हैं, किन्तु वास्तव में यह ठीक नहीं है। गुरु-मन्त्रदाता गुरु का स्वतन्त्र मन्त्र होता है, जैसा कि हमने ऊपर बताया है, उसी का जप करना चाहिए। वैसे प्रत्येक देवता के मन्त्र को दीक्षा देने वाले गुरु के लिए 'गुरुपादुकामन्त्र' के जप तथा उस मन्त्र के द्रष्टा गुरु की पादुका के मन्त्र का भी जप किया जाता है, यह शास्त्रोक्त विधान है। रुद्रयामल के उत्तरतंत्र के प्रथम अध्याय में यह विषय विस्तार से लिखा है।

गुरु-कृपा प्राप्त करने के लिये गुरु का हृदय में निवास तथा विवेक, विमर्श और प्रकाश की नितान्त आवश्यकता है। अतः निम्न-लिखित स्तोत्र का पाठ भी करना चाहिए—

नमस्ते नाथ भगवन् ! शिवाय गुरुरूपिणे।
विद्यावतारसंसिद्ध्यै स्वीकृतानेक-विग्रह ॥१॥
नवाय नवरूपाय परमार्थैक रूपिणे।
सर्वाज्ञान-तमोभेदभानवे चिद्घनाय ते ॥२॥
स्वतन्त्राय दयाक्लृप्त-विग्रहाय परात्मने।
परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे ॥३॥
विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिणाम्।
प्रकाशिनां प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे ॥४॥
पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कुर्यामुपर्यधः।
सदा मच्चित्तरूपेण विधेहि भवदासनम् ॥५॥

गुरु-पादुका मंत्र

तांत्रिक मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करने वाले साधक के लिए अपे-क्षित मन्त्र के साथ ही 'गुरुपादुका-मन्त्र' की भी दीक्षा दी जाती है। गुरुपादुका का मन्त्र जप करने के पश्चात् ही इष्टमन्त्र का जप किया

जाता है। यह मन्त्र लघु और पूर्ण के रूप में दो प्रकारों में प्राप्त होता है। साथ ही मन्त्र में क्रमशः गुरु, परम गुरु और परमेष्ठी गुरुओं के तथा उनकी शक्तियों के दीक्षा नाम का स्मरण करते हुए सहस्रदल पद्म में मृगी मुद्रा से जप करने का भी आदेश है। अतः इस ओर सावधान रहते हुए गुरु-स्मरण किया जाए तो मन्त्र जप शीघ्र सफल होता है। गुरु-पादुका का ध्यान इस प्रकार है—

तेजोमय-महाविद्यां शेखराञ्चितमस्तकाम्।
रक्तां चतुर्भुजां वन्दे श्रीविद्यागुरुपादुकाम्॥

और गुरुपादुका मन्त्र का रूप निम्नलिखित है—

ॐ हंसः शिवः सोहं सोहं हंसः शिवः हंसः शिवः सोहं हंसः
ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं नमः॥

अन्य बड़े मन्त्र गुरुकृपा से प्राप्त करें। इन मन्त्रों में गुरु, परम गुरु और परमेष्ठी गुरुओं के दीक्षा नाम तथा उनकी शक्तियों के नाम-स्मरण का भी विधान है।

३. कुण्डलिनी मन्त्र, जप-विधि और स्तोत्र

प्राणवायु का निरोध करके मूलाधार में चतुर्दल कमल के बीच त्रिकोणरूप पीठ में स्थित ज्योतिर्लिंग को आवेष्टित कर विराजमान साढ़े तीन वलयवाली कुण्डलिनी को 'ॐ हूं' इस बीज से जगाकर 'ऐं ह्लीं श्रीं' इस मन्त्र का जप करते हुए ध्यान करें।

विनियोग—अस्य श्रीकुण्डलिनीमन्त्रस्य शक्तिः ऋषिः गायत्री-च्छन्दः, चेतना कुण्डलिनी शक्तिर्देवता ऐं बीजं श्रीं शक्तिः ह्लीं कीलकं मम श्रीकुण्डलिनी-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—शक्तिऋषये नमः (शिरसि), गायत्रीच्छन्दसे नमः (मुख), चेतनाकुण्डलिनीशक्तिदेवतायै नमः (हृदये), ऐं बीजाय नमः (गुह्ये), श्रीं शक्तये नमः (पादयोः), ह्लीं कीलकाय नमः(नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-हृदयादि-न्यास—ऐं, ह्लीं, श्रीं, ऐं, ह्लीं, श्रीं।

(इन छः बीजों से क्रमशः अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा और करतल-कर-पृष्ठ में तथा हृदय, शिर, शिखा, कवच नेत्रत्रय और अस्त्र-न्यास करें।'

ध्यान—

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्—
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीन-वक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं,
सौम्यां रत्नघटस्थ-सव्यचरणां वन्दे परामम्बिकाम् ॥

मानसिक पूजा करने के पश्चात् यथाशक्ति मूलमन्त्र "ऐं ह्रीं श्रीं" का जप करें और समर्पण करके प्रार्थना करें।

कुण्डलिनी शक्ति के प्रार्थना-स्तोत्र अनेक हैं, जिनमें—'मूलाधारस्थ त्रिकोण में सोये हुए सर्प जैसी, सार्धत्रिवलयाकारा, नीवारशूक के समान पतली, अत्यन्त तेजोमयी, शीतल, शिव-शक्तिरूपा, शंखावर्त-क्रम से स्थित, सुषुम्ना के मध्य से परशिव तक जाने वाली तथा सहस्रार में विराजमान परशिव से सामरस्य प्राप्त कर पुनः स्वस्थान पर आने वाली के रूप में ध्यान-स्तुति आदि हैं। रुद्रयामल में इसके अनेक स्तोत्र, सहस्र नाम आदि हैं। उनमें से यहां एक महत्त्वपूर्ण 'स्तोत्राष्टक' प्रस्तुत है। पाठक इसका पाठ करके लाभान्वित हों।

(१) कुण्डलिनी-स्तोत्राष्टकम्

जन्मोद्धारनिरीक्षणीह तरुणी वेदादि-बीजादिमा,
नित्यं चेतसि भाव्यते भुवि कदा सद्वाक्यसञ्चारिणी ।
मां पातु प्रियदा स विपदं संहारयित्री धरे,
धात्रि त्वं स्वयमादिदेववनिता दीनातिदीनं पशुम् ॥१॥

रक्ताभामृत चन्द्रिका लिपिमयी सर्पाकृतिर्निद्रिता,
जाग्रत्कूर्मसमाश्रिता भगवतो त्वं मां समालोकय ।
मांसोद्गन्ध-कुगन्धदोषजडितं वेदादिकार्यान्वितं,
स्वल्पान्यामलचन्द्रकोटि किरणैर्नित्यं शरीरं कुरु ॥२॥

सिद्धार्थी निजदोषवित् स्थलगतिर्व्याजीयते विद्यया,
कुण्डल्याकुलमार्गमुक्तनगरीमाया-कुमार्गः श्रिया ।
यद्येवं भजति प्रभातसमये मध्याह्नकालेऽथवा,
नित्यं यः कुलकुण्डली-जय-पदाम्भोजं स सिद्धो भवेत् ॥३॥

वाय्वाकाशचतुर्दलेऽतिविमले वाञ्छाफलोन्मूलके,
नित्यं सम्प्रति नित्यदेहघटिता संकेतिता भाविता।
विद्याकुण्डलमानिनी स्वजननी मायाक्रिया भाव्यते,
यैस्तैः सिद्धकुलोद्भवैः प्रणतिभिः सत्स्तोत्रकैः शम्भुभिः ॥४॥
वेधःशंकरमोहिनी त्रिभुवनच्छायापटोद्गामिनी,
संसारादिमहाऽसुखप्रहरणी तत्र स्थिता योगिनी।
सर्वग्रन्थि-विभेदिनी स्वभुजगा सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा,
ब्रह्मज्ञान-विनोदिनी कुलकुटी-व्याघातिनी भाव्यते ॥५॥
वन्दे श्रीकुलकुण्डलीं त्रिवलिभिः सांगैः स्वयम्भू-प्रियं,
प्रावेष्ट्याम्बर-मार.चित्तचपलां बालाबलां निष्कलाम्।
या देवी परिभाति वेदवदना सम्भावनी तापिनी,
स्वेष्टानां शिरसि स्वयम्भु-वनिता तां भावयामि क्रियाम् ॥६॥
वाणीकोटि-मृदंगनादमदना-निश्रेणिकोटि-ध्वनिः,
प्राणेशी रसराशिमूलकमलोल्लासैक-पूर्णानना।
आषाढोद्भव-मेघवाज-नियुत-ध्वान्तानना स्थायिनी,
माता सा परिपातु सूक्ष्मपथगा मां योगिनां शंकरी ॥७॥
त्वामाश्रित्य नरा व्रजन्ति सहसा वैकुण्ठ-कैलासयो-
रानन्दैक-विलासिनी शशिशतानन्दाननां कारणाम्।
मातः श्रीकुलकुण्डलि प्रियकरे काली-कुलोद्दीपनेः,
तत्स्थानं प्रणमामि भद्रवनिते मामुद्धर त्वं पशुम् ॥८॥
कुण्डली-शक्ति-मार्गस्थं स्तोत्राष्टक-महाफलम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स वै योगी भवेद् ध्रुवम् ॥९॥

—रु० या० पटल ६, श्लोक २९ से ३७

उपर्युक्त स्तोत्र का प्रातः उठते ही कुण्डली का ध्यान करते हुए पाठ करने से योग-शक्ति की प्राप्ति होती है। पाठ के समय श्लोकों के अर्थों की भावना निम्नलिखित रूप में अवश्य करें—

"हे भगवती कुण्डलिनी! आप वेदों के आदि बीज ओंकार के समान आकृति वाली, लाल आभा से युक्त, अमृतचन्द्रिका, जागृत कूर्म-

वायु का आश्रय लिये हुए,सृष्टि-स्थिति-संहार शक्ति से परिपूर्ण ब्रह्मादि देवों को मोहित करने वाली, वेदवदना, स्वयम्भूलिंग को आवेष्टित कर विराजमान, सूक्ष्ममार्ग से गमन कर सहस्रार तक पहुंचने वाली, ब्रह्म-ज्ञान दात्री तथा विद्युत् के समान चमक वाली हैं। आप मेरी रक्षा करें, मेरे दोषों को मिटायें, सभी ग्रंथियों का भेदन करें तथा मुझ अज्ञानी का उद्धार करें।"

४. अजपा-जप-विधि और अन्य कर्त्तव्य

मानव का जीवन प्राणवायु पर निर्भर है। जब तक श्वास है तब तक आस—आशा है। ये श्वास बाहर से अन्दर और अन्दर से बाहर जाते-आते रहते हैं। यह क्रिया चौबीसों घण्टे चलती रहती है। ये श्वास और निःश्वास चौबीस घंटों की अवधि में इक्कीस हजार छः सौ बार चलते हैं। आस्तिक मानव के लिये यह निर्देश है कि वह अपनी इस श्वासक्रिया को परमात्मा का बिना प्रयत्न के होने वाला जप मानकर उन्हें अर्पित करे। यह समर्पण शरीर में विद्यमान छः चक्रों में स्थित देवताओं का स्मरण करते हुए किया जाता है उसी को अजपा-जप कहते हैं। इसकी विधि इस प्रकार है—

(१) अजपा-जप-विधि

१. मूलाधारे चतुर्दलपद्मे वं शं षं सं चतुरक्षरे चतुष्कोणयन्त्रे ऐरावतवाहने लं बीजे स्थिताय सिद्धिबुद्धिशक्तिसहिताय कुङ्कुम-वर्णाय महागणपतये षट्शतमजपाजपं निवेदयामि।

२. स्वाधिष्ठाने षडदलपद्मे बं भं मं यं रं लं षडक्षरे अर्धचन्द्र-यन्त्रे मकरवाहने वं बीजे स्थिताय सरस्वतीशक्तिसहिताय सिन्दूर-वर्णाय ब्रह्मणे षट्सहस्रमजपाजपं निवेदयामि।

३. मणिपूरचक्रे दशदलपद्मे डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं दशाक्षरे त्रिकोणयन्त्रे मेषवाहने रं बीजे स्थिताय लक्ष्मीशक्तिसहिताय नील-वर्णाय विष्णवे षट्सहस्रमजपाजपं निवेदयामि।

४. अनाहतचक्रे द्वादशदलपद्मे कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं द्वादशाक्षरे षट्कोणयन्त्रे हरिणवाहने यं बीजे स्थिताय पार्वतीशक्ति-सहिताय हेमवर्णाय परमशिवाय षट्सहस्रमजपाजपं निवेदयामि।

५. विशुद्धचक्रे षोडशदलपद्मे अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः षोडशाक्षरे शून्ययन्त्रे हस्तिवाहने हं बीजे स्थिताय

प्राणशक्तिसहिताय शुद्धस्फटिकसंकाशाय जीवाय सहस्रमेकमजपाजपं निवेदयामि।

६. आज्ञाचक्रे द्विदलपद्मे श्वेतवर्णे हं क्षं द्वयक्षरे लिंगयंत्रे नरवाहने स्थिताय ज्ञानशक्तिसहिताय विद्युद्वर्णाय गुरवे सहस्रमेकमजपाजपं निवेदयामि।

७. ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रदलपद्मे चित्रवर्णे अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं—इति विंशतिवारोच्चारिते सहस्राक्षरे विसर्गयन्त्रे बिन्दुवाहने पूर्णचन्द्रमण्डले आनन्दमहासमुद्रमध्ये चिन्मयमणिद्वीपे चित्सारचिन्तामणिमन्दिरे कल्पवृक्षाधःस्थले अव्याकृत-ब्रह्ममहासिंहासने स्थिताय नानावर्णाय वर्णातीताय चिच्छक्तिसहिताय परमात्मने सहस्रमेकमजपाजपं निवेदयामि।

इसके पश्चात् कुछ क्षण तक 'हंसःसोऽहम्' की श्वास-निःश्वास के साथ भावना करे। तदनन्तर शरीर के चक्रों में जिन-जिन देवताओं का ध्यानपूर्वक आवाहन किया है उनकी मानसोपचार-पूजा करे—

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि। (कनिष्ठा और अंगुष्ठ मिलाकर)

हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि। अंगुष्ठ और तर्जनी मिलाकर)

यं वाय्वात्मकं धूपमाघ्रापयामि। (तर्जनी और अंगुष्ठ मिलाकर)

रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि। (अंगुष्ठ और मध्यमा मिलाकर)

वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि। (अंगुष्ठ और अनामिका मिलाकर)

सं सर्वात्मकान् ताम्बूलादिसर्वोपचारान् समर्पयामि (अंगुष्ठ सहित सभी अंगुलियों से)[1]

(२) अन्य कर्तव्य

इसके पश्चात् 'प्रातः स्मरण, भूमि-प्रार्थना, शौच, दन्तधावन स्नानादिकर्म करके सन्ध्या करनी चाहिए। तदनन्तर पूजा आरम्भ की

---

१. अजपा जप के प्रकार भी भिन्न-भिन्न हैं जिनमें इष्ट बीजमंत्र एवं इष्टमंत्रों के प्रयोग भी होते हैं।

जाती है। संध्या का विशिष्ट परिचय हमने पहले दिया है, वह उसकी विशिष्टता का ज्ञान कराने के लिए है। विधि कोई भी हो, किन्तु सन्ध्या अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि यह समस्त कर्मों की मूल है। इसके बिना अन्य कर्म मूलहीन होते हैं जिससे अस्थिरता और अपरिपक्वता बनी रहती है।

सन्ध्या के साथ गायत्री-जप भी परमावश्यक है। गायत्री मंत्र एवं उससे सम्बद्ध विचारणीय विषयों का विवेचन हम आगे शक्ति-उपासना सम्बन्धी वर्णन के प्रसंग में करेंगे।

'ब्रह्मयज्ञ' और 'तर्पण' भी साधना करने वाले के लिए आवश्यक माने गये हैं। द्विजमात्र के लिये ये कर्म नित्य कर्त्तव्य हैं। इन्हें यथासम्भव विद्वान् ब्राह्मणों से सीखकर करने से बहुत ही लाभ होता है तथा शास्त्रीय नियमों का भी रक्षण होता है।

५. महागणपति-साधना और रुद्रयामल

गुरु-चरणों की अनुकम्पा प्राप्त करके साधना-पथ की ओर अग्रसर होने वाले साधकों के लिये **'महागणपति की साधना'** नितान्त आवश्यक बतलाई गई है। जिस मार्ग पर चलकर हमें अपने लक्ष्य तक पहुंचना है, उसमें आने वाले विघ्नों का अपसारण तथा कण्टकाकीर्ण पथ को कुसुम-कोमल बनाने के लिये भगवान् गणपति का मंगलमय आशीर्वाद प्राप्त कर लेना साधक का सर्वप्रथम कर्तव्य बन जाता है। गणपति केवल विघ्न दूर करने वाले देव ही नहीं हैं, अपितु ये ऋद्धि-सिद्धि के दाता, विद्याप्रदाता, मांगलिक कार्यों के पूरक, संग्राम-संकट के निवारक तथा सर्वविधि मंगलकारी हैं। यौगिक साधना की पूर्ति में भी महागणपति की कृपा प्राप्ति अत्यावश्यक है।

(१) उपासना के अनेक प्रकार

रुद्रयामल में महागणपति की उपासना के अनेक प्रकार बताये गये हैं। स्वतन्त्र देव के अतिरिक्त इन्हें पंचबालक, षट्कुमार, सप्तबालक आदि गणों में भी सम्मिलित माना है। **'उद्धारकोश'** के अनुसार निम्नलिखित पद्य स्मरणीय हैं—

पञ्चबालक—हेरम्ब-शरजन्मानौ कार्तवीर्यार्जुनस्तथा।
हनुमद्-भैरवावेतौ भाषिताः पञ्चबालकाः॥

षट्कुमार— हेरम्ब-शरजन्मानौ महामृत्युञ्जयस्तथा।
कार्तवीर्यार्जुनश्चैव हनुमद्-भैरवौ [तथा॥
इमे स्वयम्मयाश्च तन्त्रोक्ताः षट्कुमारकाः।[१]

सप्तबालक—गणेशो बटुकश्चैव स्कन्दो मृत्युञ्जयस्तथा।
कार्तवीर्यार्जुनोऽप्येवं सुग्रीवो हनुमांस्तथा॥
यामले रुद्रशब्दादौ भाषिताः सप्तबालकाः।

(२) गणपति महामन्त्र

अनन्तरूपधारी भगवान् **गणपति महामन्त्र** भी रुद्रयामल के अनुसार अट्ठाईस अक्षरों का इस प्रकार सूचित है—

प्रणवं कमलां लज्जां कन्दर्पं मठ-बीजकम्।
शंकरं षट् शिरोमन्त्रं ततः पल्लवमुद्धरेत्॥५४॥
गणपते पश्चाद् वाच्यं वर-वरदमेव च।
सर्वजनं ततः पश्चान्मे वशमानयेति च॥५५॥
अन्ते पीठद्वयं ज्ञेयमष्टाविंशाक्षरो मनुः।

इसके अनुसार मूलमन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होता है—

'**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।**'

इस मन्त्र का **जप-विधान** इस रूप में प्राप्त है—

१. **विनियोग**—ॐ अस्य श्रीमहागणपतिमन्त्रस्य गणक ऋषिर्निचृद्गायत्रीच्छन्दो महागणपतिर्देवता गं बीजं स्वाहा शक्तिः ग्लौं कीलकं मम श्रीमहागणपतिप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

२. **ऋष्यादिन्यास**—गणकऋषये नमः (शिरसि), निचृद्गायत्री च्छन्दसे नमः (मुखे) महागणपतिदेवतायै नमः (हृदये), गं बीजाय नमः (गुह्ये) स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः), ग्लौं कीलकाय नमः (नाभौ) महागणपति-प्रसाद सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)

---

१. भैरवीतन्त्र और वामकेश्वर-तन्त्र में भी यही पाठ है।

३. कर-षडङ्गन्यास—

	पहली बार	दूसरो बार
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गां	(अंगुष्ठाभ्यां नमः	(हृदयाय नमः)
" गीं	(तर्जनीभ्यां नमः)	(शिरसे स्वाहा)
" गूं	(मध्यमाभ्यां नमः)	(शिखायै वषट्)
" गैं	(अनामिकाभ्यां नमः	(कवचाय हुम्)
" गौं	(कनिष्ठिकाभ्यां नमः)	नेत्रा भ्याम्वौषट्)
" गः	(करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः)	(अस्त्राय फट्)

४—ध्यान

बीजापूर-गदेक्षुकार्मुकरुजा-चक्राब्जपाशोत्पला
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्न-कलश-प्रोद्यत्मकराम्भोरुहः।
ध्येयो वल्लभया सपद्मकरयाश्लिष्टो ज्वलद्भूपया,
विश्वोत्पत्ति-विपत्ति-संस्थितिकरो विघ्नेश इष्टार्थदः॥

इसके पश्चात् मानसोपचार-पूजा करके मन्त्र जप किया जाता है। मानसोपचार में—

१. लं पृथिव्यात्मकं गन्धं कल्पयामि नमः।[1]
२. हं आकाशात्मकं पुष्पं कल्पयामि नमः।
३. यं वाय्वात्मकं धूपं कल्पयामि नमः।
४. रं वह्न्यात्मकं दीपं कल्पयामि नमः।
५. वं अमृतात्मकं नैवेद्यं कल्पयामि नमः।
६. सं सर्वात्मकं ताम्बूलादि सर्वोपचारान् कल्पयामि नमः :

जप के पश्चात् जप-समर्पण करें और स्तोत्र पाठ करें। रुद्रयामल में **गणपति का स्तोत्र** निम्नलिखित प्राप्त होता है। इस स्तोत्र के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि 'यह स्तोत्र कलियुग में शीघ्र सिद्धि देने वाला है तथा इसके लिए न्यास, संस्कार, होम, तर्पण, मार्जन आदि भी आवश्यक नहीं हैं। गणपति-पजन, जप और पाठ करने से ही यह सिद्ध होता है। इसका विधान इस प्रकार है—

---

१. यहां 'गन्धं' आदि पदों से पहले पूज्य देवता का नाम जैसे 'महागणपतये' जोड़ने का विधान है।

(३) गणेश स्तवराज

विनियोग—अस्य श्रीमहागणपतिस्तोत्रमन्त्रस्य भगवान् सदाशिवऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीमहागणपतिर्देवता श्रीमहागणपतिप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

(इतना विनियोग करके पाठ करें।)

मूल पाठ

विनायकैक-भावना-समर्चना-समर्पितं,
प्रमोदकैः प्रमोदकैः प्रमोद-मोद-मोदकम्।
यदर्पितं समर्पितं नवान्नधान्यनिर्मितं,
न खण्डितं न खण्डितं न खण्डमण्डनं कृतम् ॥१॥
सजातिकृद्-विजातिकृत् स्वनिष्ठभेदवर्जितं,
निरंजनं च निर्गुणं निराकृति-प्रनिष्क्रियम्।
सदात्मकं चिदात्मकं सुखात्मकं परं पदं,
भजामि तं गजाननं स्वमाययात्त-विग्रहम् ॥२॥
गणाधिप त्वमष्टमूर्तिरीशसूनुरीश्वर-
स्त्वमम्बरं च शम्बरं धनञ्जयः प्रभञ्जन।
त्वमेव दीक्षितः क्षितिर्निशाकरः प्रभाकर-
श्चराचरप्रचारहेतुरन्तरायशान्तिकृत् ॥३॥
अनेकदं तमालनीलमेकदन्तसुन्दरं,
गजाननं नुमो गजाननामृताब्धिचन्दिरम्।
समस्तवेदवाद - सत्कला - कलापमन्दिरं,
महान्तरायकृत् तमोऽर्कमाश्रितोन्दुरुं पुरम् ॥४॥
सरत्नहेमघण्टिकानिनादनूपुरस्वनै-
र्मृदङ्गतालनादभेदसाधनानुरूपतः।
धिमिद्धिमित्तथोङ्गथोङ्ग-थेयि-थेयिशब्दतो,
विनायकः शशाङ्कशेखरः प्रहृष्य नृत्यति ॥५॥
सदा नमामि नायकैकनायकं विनायकं,
कलाकलापकल्पना निनादमादिपूरुषम्।
गणेश्वरं गुणेश्वरं महेश्वरात्मसम्भवं,
स्वपादपद्मसेविनामपारवैभवप्रदम् ॥६॥

भजे प्रचण्डतुन्दिलं सदन्दशूकभूषणं,
सनन्दनादिवन्दितं समस्तसिद्धसेवितम् ।
सुरासुरौघयोः सदा जयप्रदं भयप्रदं,
समस्तविघ्नधातिनं स्वभक्तपक्षपातिनम् ॥७॥

करांम्बुजात्तकङ्कणः पदाब्जकिङ्किणीगणो,
गणेश्वरो गुणार्णवः फणीश्वराङ्गभूषणः ।
जगत्त्रयान्तरायशान्तिकारकोऽस्तु तारको,
भवार्णवस्थघोरदुर्गहा चिदेकविग्रहः ॥८॥

यो भक्तिप्रवणश्चराचरगुरोः स्तोत्रं गणेशाष्टकं,
शुद्धः संयतचेतसा यदि पठेन्नित्यं त्रिसन्ध्यं पुमान् ।
तस्य श्रीरतुला स्वसिद्धिसहिता श्री शारदा सर्वदा,
स्यातां तत्परिचारिके किल तदा काः कामनानां कथाः ॥

इस स्तोत्र का प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल नित्यपाठ करने से लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की कृपा प्राप्त होती है। गणपति के समक्ष सात मुद्राएं दिखाने का भी बड़ा माहात्म्य लिखा है। वे मुद्राएं निम्नलिखित हैं—१. **दन्त**, २. **पाश**, ३. **अङ्कुश**, ४. **विघ्न**, ५. **परशु**, ६. **मोदक** तथा ७. **बीजापूर**। इन मुद्राओं के बारे में योग्य साधकों से ज्ञान प्राप्त कर लें।

(४) नामोपासना के प्रकार—

शास्त्रकारों ने 'गणपति' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए इसका अर्थ बतलाया है कि '**ग**' का अर्थ है जीवात्मा, '**ण**' का अर्थ है मुक्तिदशा में ले जाना तथा '**पति**' का अर्थ है आदि और अन्त से रहित परमात्म दशा में लीन होने का अनुग्रह करना। इस प्रकार 'गणपति' जीवात्मा को मुक्तिदशा में ले जाकर उसे आदि और अन्त से रहित परमात्मदशा में लीन होने तक की कृपा करने वाले देव हैं। यही कारण है कि गणपति की नामोपासना के भी अनेक प्रकार रुद्रयामल में तथा आगमों में दिये गये हैं। सरल से सरल प्रयोग भी इसमें मिलते हैं और कठिनातिकठिन भी। जिसमें जैसी शक्ति और भक्ति हो वैसा करे, किन्तु करे अवश्य।

(क) विघ्न-विनायक के १६ नामों का स्मरण इस प्रकार है—

१. बालविघ्नेशाय नमः, २. तरुणाय नमः,
३. भक्तविघ्नेशाय नमः, ४. वीरविघ्नकाय नमः,
५. शक्तिविघ्नेशाय नमः, ६. द्विजगणाधिपाय नमः,
७. सिद्धिऋद्धीशाय नमः, ८. उच्छिष्टाय नमः,
९. विघ्नराजाय नमः, १०. क्षिप्रनायकाय नमः,
११. हेरम्बाय नमः १२. लक्ष्मीनायकाय नमः,
१३. महाविघ्नाय नमः, १४. विजयाय नमः,
१५. नृत्तायनमः, १६. ऊर्ध्वनायकाय नमः।

(ख) गणपति के १२ नामों का स्मरण तो प्रसिद्ध है ही। यथा—

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥
धूमकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।

इन बारह नामों का पठन और श्रवण दोनों ही लाभप्रद हैं। इनसे विघ्नों का निवारण होता है अतः सभी मांगलिक कार्यों के आरम्भ में तथा यात्रा में आने-जाने के समय स्मरण करना चाहिए।

महागणपति की उपासना कें लिए रुद्रयामल से जो संक्षिप्त प्रेरणा प्राप्त हुई, उसका उत्तरवर्ती शास्त्रकारों ने बहुत ही विस्तार से सूक्ष्मातिसूक्ष्म तन्त्र-पद्धति के रूप में विवेचन किया है। उदाहरणार्थ—एकाक्षरगणेश, हरिद्रागणेश, विरिंचि विघ्नेश, एकादशाक्षर शक्ति-गणेश, चतुरक्षर सिद्धिगणेश, लक्ष्मीगणेश, क्षिप्रप्रसादन गणेश, हेरम्बगणेश, सुब्रह्मण्यगणेश, वक्रतुण्डगणेश और उच्छिष्टगणेश आदि के प्रयोग अतीव महत्त्वपूर्ण हैं। इनके मंत्रों से हवन और तर्पण के प्रयोगों के माध्यम से षट्कर्मसिद्धि के अतिरिक्त कृपाण, अंजन, पादुका, स्वप्न आदि की सिद्धियों के भी विधान किये हैं। साथ ही दक्षिणी साधन, कवित्वसाधन, गुटिकासिद्धि, तिलकसिद्धि, अणिमाद्यष्टसिद्धि एवं स्वर्ण, यश, लक्ष्मी आदि की प्राप्ति के उपाय भी बतलाये हैं। इन्हीं में चूर्णसाधन, धूपसाधन और धारणयन्त्र—निर्माण सम्मिलित हैं।

(५) गणपति-तर्पण विधान

रुद्रयामल में महागणपति-तर्पण के सम्बन्ध में मूलमन्त्र से

सन्दर्भित 'चतुरावृत्ति-तर्पण' पर विशेष बल दिया है। 'योगिनीहृदय की 'सेतुटीका' में रुद्रयामल का उदाहरण देते हुए लिखा है कि—

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य ततो लक्ष्मीं समुच्चरेत्।
ततो गणेशबीजञ्च सिद्धया च सहितं ततः ॥ इत्यादि।

यह तर्पण-प्रयोग यद्यपि दीक्षित साधक के द्वारा ही करणीय है तथापि जिसने 'महागणपति-मन्त्र' प्राप्त किया है वह इससे नित्य, नैमित्तिक और काम्य-प्रयोग करे तो उसे संकटों से मुक्ति और इच्छित-फलों की प्राप्ति अवश्य होती है। अतः इसका मूल-प्रयोग यहां दिया जा रहा है—

तर्पण विधान—

इस प्रयोग में तर्पण-कर्ता सर्वप्रथम एक तांबे के अथवा पीतल के पात्र में शुद्ध जल भर ले और अन्य थाली में गणपति-मन्त्र अथवा गणपति-मूर्ति को स्थापित कर हाथों से अथवा अर्घ्यपात्र से एक-एक मंत्र बोलता जाए और अर्घ्यजल सामने चढ़ाये। अर्घ्यजल को सुगन्धित केसरादि से सुवासित करे, अभिमन्त्रित करे और उसमें दूर्वा, अक्षत आदि भी छोड़े।[1] इस तर्पण में १२४ का सामान्य क्रम २१६ का मध्यम और ४४४ का उत्तम क्रम कहा गया है। संक्षेप में इसकी पद्धति इस प्रकार है—

१. सामान्य क्रम

मूलमन्त्र ४, महागणपतिं तर्पयामि स्वाहा ४, पुष्टि ४, मू० ४, श्रीं लक्ष्मीनारायणौ त० ४, ह्रीं गौरीहरौ त० ४, मू० ४, क्लीं रतिकन्दर्पौ त० ४, मू० ४, ग्लौं महीवराहौ त० ४, मू० ४, गं लक्ष्मीगणनायकौ त० ४, मू० ४, गं आमोदसिद्धी त० ४, मू० ४, गं प्रमोदसमृद्धी त० ४, मू० ४, गं सुमुखकान्ती त० ४, मू० ४, गं दुर्मुख-मदनावत्यौ त० ४, मू० ४, गं विघ्नमदद्रवे त० ४, मू० ४, गं विघ्न-कर्तृ द्राविण्यौ त० ४, मू० ४, शं शंखनिधिवसुधारे त० ४, मू० ४, पं पद्मनिधिवसुमत्यौ तर्पयामि स्वाहा। इस प्रकार यह तर्पण १२४ बार होता है।

---

१. इस प्रकार का एक 'तर्पण-प्रयोग' हमने 'तन्त्र-शक्ति' के पृष्ठ ८७ से ९२ पर दिया है।

२. मध्यमक्रम—

मूलमंत्र ४, श्रीं नारायणसहितां लक्ष्मीं तर्पयामि स्वाहा ४, मू० ४, श्रीं लक्ष्मीसहितं नारायणं तर्पयामि स्वाहा ४, मू० ४, ह्रीं हरसहितां गौरी त० ४, मू० ४, ह्रीं गौरीसहितं हरं त० ४, मू० ४, क्लीं कामसहितां रतिं त० ४, मू० ४, ह्रीं रतिसहितं कामं त० ४, मू० ४, ग्लौं वराहसहितां महीं त० ४, मू० ४, ग्लौं महीसहितं वराहं त० ४, मू० ४, गं महागणपतिसहितां लक्ष्मीं त० ४, मू० ४, गं लक्ष्मी-सहितं महागणपतिं त० ४, मू० ४, गं आमोदसहितां सिद्धिं त० ४, गं सिद्धिसहितं आमोदं त०४, मू०४, गं प्रमोदसहितां समृद्धिं त०४, मू०४, गं० समृद्धिसहितं प्रमोदं त० ४, मू० ४, गं सुमुखसहितां कान्ति त० ४, मू० ४, गं कान्तिसहितं सुमुखं त० ४, मू० ४, गं दुर्मुखसहितां मदना-वतीं त० ४, मू० ४, गं मदनावतीं सहितं दुर्मुखं त० ४, मू० ४, गं विघ्न सहितां मदद्रवां त० ४, म० ४, गं मदद्रवासहितं विघ्नं त० ४, मू० ४, गं विघ्नकर्तृसहितां द्राविणीं त० ४, मू० ४, गं द्राविणीसहितं विघ्न-कर्तारं त० ४, मू० ४, शं शंखनिधिसहितां वसुधारां त० ४, मू० ४, शं वसुधारासहितं शंखनिधिं त० ४, मू० ४, पं पद्मनिधिसहितां वसु-मतीं त० ४, मू० ४, पं० वसुमतीसहितं पद्मनिधिं त० ४, मू० ४, पुनः मूलमन्त्र से ४। इस प्रकार यह तर्पण २१६ बार होता है।

३. उत्तमक्रम—

मूलमन्त्र ४, ॐ तर्पयामि स्वाहा ४, मू० ४, श्रीं ४, मू० ४, ह्रीं ४, मू०४, क्लीं ४, ग्लौं ४, मू०४, गं०४, मू०४, गं ४, मू० ४, णं ४, मू० ४, पं० ४, मू० ४, तं० ४, मू० ४, वं ४, मू० ४, वं ४, मू ४, रं ४, मू ४, वं ४, मू० ४, रं ४, मू० ४, दं ४, मू० ४, सं ४, मू० ४, वँ ४, मू० ४, जं ४, मू० ४, नं ४, मू०, में ४, मू० ४, वं ४, मू० ४, शं ४, मू० ४, मां ४, मू० ४, नं ४, मू० ४, यं ४, मू० ४, स्वां ४, मू० ४, हां ४, मू० ४। पुनः मूलमन्त्र ४।

इस प्रकार ये सभी मिलकर २२८ बार तर्पण करके मध्यम प्रकार के २१६ बार का तर्पण करे जिससे ४४४ बार तर्पण होता है।

६. तर्पण के अन्य प्रयोग—

तर्पणीय वस्तुओं से भगवान् गणपति के भिन्न-भिन्न अंगों पर

तपण करने से भिन्न-भिन्न कामनाओं की सिद्धि होती है। इस सम्बन्ध में 'सार-संग्रह' ग्रन्थ में कहा गया है कि—

शुण्डाकराग्रे गणपं जलेन प्रतर्पयेन्मुक्तिफलाय मन्त्री।
तथेन्दिराकामनया गणेशं प्रतर्पयेन्मूर्ध्नि पयोभिरत्र ॥१॥
गुह्यप्रदेशे मधुना गणेशं प्रतर्पयेत् कामफलाय विद्वान्।
आकृष्टिवश्यादिनिमित्तमत्र प्रतर्पयेत् तं मधुभिश्च नेत्रे ॥२॥
भूपालवश्याय महागणेशं प्रतर्पयेच्चारु घृतेन पृष्ठे।
ऊरुस्थले तैलसुतर्पणं च महागणेशप्रियमेतदुक्तम् ॥३॥
एरण्डतैलेन तथाऽस्य रण्डावश्याय नाभौ किल तर्पणं स्यात्।
स्कन्धप्रदेशेऽस्य पयः पयोभिः प्रतर्पणं प्रीतिविवर्धनाय ॥४॥
क्षीरेण दध्ना मधुनाऽस्य तुन्दे प्रतर्पणं पुत्रविवृद्धिकृत्स्यात्।
एवं परिज्ञाय समस्तमेतत् कुर्यात् प्रयोगान् विधिनामनोज्ञः ॥५॥

अर्थात् मुक्ति के लिए सूंड पर जल से, लक्ष्मी के लिए मस्तक पर दूध से, काम-फल के लिये गुह्य पर मधु से, आकर्षण और वश्य के लिए नेत्रों पर मधु से, राजवश्य के लिए पीठ पर घृत से, गणेश की प्रसन्नता के लिए ऊरु युगल पर तैल से, स्त्रीवशीकरण के लिए नाभि पर एरण्ड के तैल से तथा पुत्र-वृद्धि के लिए उदर पर दूध, दही तथा मधु से तर्पण करना चाहिए।

इस प्रकार रुद्रयामल में **'महागणपति-तर्पण-प्रयोग'** और इसी प्रकार से **'तान्त्रिक गणपति-याग'** का विधान भी वहां निर्दिष्ट है जिसके द्वारा प्रयोग करने पर सद्यः कामना-सिद्धि होती है।

तर्पण के अतिरिक्त 'होम-विधान' तथा 'अपामार्जन-विधान' की भी विशिष्ट परम्पराएं हैं जिन्हें विशिष्ट साधकों से प्राप्त करके लाभान्वित होना चाहिए।

(७) उच्छिष्ट-गणपति-प्रयोग

महागणपति की साधना 'गाणपत्य-सम्प्रदाय' में विविध रूपों में प्रचलित है। प्रत्येक देवता की उपासना १. वैदिक, २. तांत्रिक और ३. पौराणिक पद्धतियों से की जाती है। जैसे वेदमन्त्रों में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के मन्त्रों में अन्तर है और अर्चकगण

अपने-अपने वेद के अनुसार उनसे पूजा करते हैं उसी प्रकार तन्त्रों में भी दीक्षाक्रम एवं समुदाय-विशेष के आधार पर अर्चना-साधना होती है। वैसे इतना अवश्य है कि वैदिक-विधानों में भी तन्त्र-पद्धतियों का आश्रय लिए बिना उनकी व्यवस्थित पद्धति नहीं बनती और तन्त्रों की प्रक्रिया में वैदिक मन्त्रों का प्रयोग विहित है, अतः इसमें किसी प्रकार का परस्पर विरोध नहीं मानना चाहिए।

महागणपति ही नहीं, सभी देवताओं की उपासना के मूल में वैदिक मन्त्रों के संकेतात्मक निर्देश प्राप्त हैं। हां, यह अवश्य है कि जैसी जिसने परम्परा प्राप्त की अथवा जैसा अनुभव किया और फल पाया उसे ही भावी सन्तति के कल्याणार्थं वितरित कर दिया। ऐसी ही परम्परा में 'उच्छिष्ट' उपासना ने प्रसार पाया। यह 'उच्छिष्ट' शब्द प्रचलित अर्थ में तो 'झूठन' अर्थ ही बतलाता है, किन्तु ऐसा नहीं है। यह उससे आगे बढ़कर अधिक अनुशासित और अनुशासक के अर्थ को अभिव्यक्त करता है। साधक के लिए साधना में अनुशासित रहना तथा प्राप्तव्य कर्म की सिद्धि के लिए तदनुकूल अनुशासन करना ही इस उच्छिष्ट शब्द का वास्तविक अर्थ ग्राह्य है। अब रही परम्परा की बात, तो इसमें भी दोनों ही प्रक्रियाएं प्राप्त हैं—शुद्ध दक्षिणाचार मूलक उच्छिष्ट महागणपति-प्रयोग एवं वाम आचार मूलक उच्छिष्ट महागणपति-प्रयोग। इनके सामान्य प्रयोग में मन्त्र इस प्रकार हैं—

उच्छिष्ट महागणपति प्रयोग के लिए मन्त्र

इस प्रयोग में निम्नलिखित मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र का जप किया जाता है।

१. **नवाक्षरी**-(नवार्ण)—हस्ति पिशाचिलिखे स्वाहा।

२. **दशाक्षरी**—ह्रो गं ह्रीं वशमानय स्वाहा।

३. **द्वादशाक्षरी**—ॐ ह्रीं गं हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा।

४. **द्वात्रिंशाक्षरी**—ॐ हस्तिमुखाय लम्बोदराय उच्छिष्ट-महात्मने आं क्रों ह्रीं क्लीं ह्रीं हूं घे घे उच्छिष्टाय स्वाहा।

५. **त्रयस्त्रिंशदक्षरी**—ॐ क्लीं महारजतवल्लभोच्छिष्ट गणपतये सर्वराज्ञां धनमानय क्लीं धनं देहि स्वाहा।

६. **सप्तत्रिंशाक्षरी**—ॐ नमो भगवते एकदंष्ट्राय हस्तिमुखाय लम्बोदराय उच्छिष्ट महात्मने आं क्रों ह्रीं गं घे घे स्वाहा।

(२) **इनमें प्रथम-मन्त्र का विधान निम्नलिखित है—**

विनियोग—अस्य श्री उच्छिष्ट महागणपतिनवार्णमन्त्रस्य कंकोलऋषि: विराट्छन्द: उच्छिष्टमहागणपतिर्देवता मम मनोऽभिलषितसिद्धये जपे विनियोग: ।

ऋषिन्यास—ॐ कंकोलऋषये नम: (शिरसि), ॐ विराट् छन्दसे नम: (मुखे), ॐ उच्छिष्टमहागणपतये नम: (हृदये) ॐ विनियोगार्थं नम: (सर्वांगे) ।

कर-हृदयादि-न्यास

ॐ हस्ति (अंगुष्ठाभ्यां नम:—हृदयाय नम:)
ॐ पिशाचि (तर्जनीभ्यां नम:—शिरसे स्वाहा)
ॐ लिखे (मध्यमाभ्यां नम:—शिखायै वषट्)
ॐ स्वाहा (अनामिकाभ्यां नम:—कवचाय हुम्)
ॐ हस्ति पिशाचि लिखे (कनि०—नेत्रत्रयाय वौषट्)
ॐ हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा (करतल०—अस्त्राय फट्)

ध्यान—

चतुर्भुजं रक्ततनुं त्रिनेत्रं
पाशाङ्कुशौ मोदक-पात्र-दन्तौ ॥
करैर्दधानं सरसीरुहस्थ-
मुन्मत्तमुच्छिष्ट गणेशमीडे ॥

इसके पश्चात् यन्त्र पर आवरण-पूजा का विधान है जो विस्तार के कारण यहां नहीं दिया जा रहा है। अन्य ग्रंथों में देखें।

उच्छिष्ट गणपति के मन्त्र का एक लाख जप करने से पुरश्चरण होता है । देवता को मोदक और ताम्बूल अर्पित करें और स्वयं उसमें से प्रसाद लेकर जप करें। पुरश्चरण की विधि पूर्ण होने पर प्रयोग करने की पात्रता प्राप्त होती है। प्रयोग के लिए—

१. अपने हाथ के अंगूठे के बराबर गणेश की लाल चन्दन से प्रतिमा बनाकर पूजन करने से मनोरथ सिद्धि होती है।

२. श्वेत अर्क से मूर्ति बनाकर मधु से कृष्णपक्ष की चतुर्थी से शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तक प्रतिदिन पूजन और १ हजार मन्त्रजप करने से राज्यलाभ, पदलाभ होता है।

३. कुम्हार के चाक की मिट्टी से मूर्ति बनाकर उपर्युक्त विधि से पूजन और जप करने पर इष्ट लाभ।

४. बांबी की मिट्टी से मूर्ति बनाकर पूजा-जपादि से कार्य-सिद्धि।

५. गुड़ की मूर्ति से सौभाग्य-प्राप्ति।

६. नमक की मूर्ति से शत्रुक्षोभ।

७. नीम की मूर्ति से शत्रुनाश।

रुद्रयामल में इसका विशेष प्रयोग इस प्रकार लिखा है—

कृष्णा चतुर्थी समारभ्य यावच्छुक्ला चतुर्थिका।
सहस्रं प्रजपेन्नित्यं योवै नियमपूर्वकम्॥
स्नपयेन्मधुना नित्यं नैवेद्यं गुड-पायसम्।
भुक्त्वोच्छिष्टो जपेन्नित्यं गणेशोऽयं सदाप्रियः॥

अर्थात् कृष्णपक्ष की चतुर्थी से शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तक मधु से गणपति की मूर्ति को स्नान एवं पूजन कराके उन्हें गुड़ तथा पायस का नैवेद्य लगाता है और उस प्रसाद को ग्रहण करके प्रतिदिन एक हजार मन्त्र का जप करता है, उस पर भगवान् गणपति प्रसन्न होते हैं। इसके साथ ही विभिन्न प्रकार की समिधाओं से हवन का भी विधान है, जिससे सर्वविध लाभ होता है।

६. भगवान् भैरवनाथ की कृपा-प्राप्ति

१. भैरव-परिचय—तन्त्रशास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों ने प्रत्येक उपासना-कर्म की सिद्धि के लिए किये जाने वाले जप-पाठादि कर्मों के आरम्भ में भगवान् भैरवनाथ की आज्ञा प्राप्त करने का निर्देश किया है। इसीलिए हम प्रार्थना करते हैं—

अतिक्रूर महाकाय, कल्पान्त-दहनोपम!।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि॥

इससे यह स्पष्ट है कि सभी पूजा-पाठों की आरम्भिक प्रक्रिया में भैरवनाथ का स्मरण, पूजन, मन्त्रजप आदि आवश्यक होते हैं। भैरव भगवान् का नाम सुनते ही बहुत से लोग तो भयभीत हो जाते हैं और कहते हैं कि "ये उग्र देवता हैं, अतः इनकी साधना में नहीं पड़ना।

इनकी साधना वाममार्ग से होती है, अतः हमारे लिए उपयोगी नहीं है।" किन्तु यह उनका भ्रम-मात्र है। प्रत्येक देवता सात्त्विक, राजस और तामस स्वरूप वाले होते हैं; परन्तु ये स्वरूप उनके द्वारा भक्त के कार्यों की सिद्धि के लिए ही धारण और वरण किए जाते हैं। 'जैसी स्थिति वैसी गति' के अनुसार ये प्रभु इतने कृपालु एवं भक्तवत्सल हैं कि सामान्य स्मरण एवं स्तुति से ही प्रसन्न होकर भक्त के संकटों का तत्काल निवारण कर देते हैं।

श्री भैरवनाथ के अवतार का वर्णन पुराणों में विविध रूप से व्यक्त हुआ है। ये कहीं स्वयं शिव हैं तो कहीं शिव के पुत्र, कहीं भगवान् विष्णु स्वरूप हैं तो अन्यत्र स्वतन्त्र देव।[1] इसी प्रकार भैरव के उपासना-विधानों के अनुसार भी इनके 'आकाशभैरव, स्वर्णाकर्षणभैरव' पाताल-भैरव जैसे नामों से भी अनेक विधान प्राप्त होते हैं। इनकी महत्ता एवं बलवत्ता के कारण ही 'रुद्रयामल' में अनेकविध प्रयोगों का निर्देश हुआ है। **बटुकोपासना-कल्पद्रुम'** ग्रंथ में इनका 'बृहज्ज्योतिषार्णव' के निर्माता आचार्य श्री हरिकृष्ण जी—ने अच्छा संकलन प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त भी उत्तरकाल के प्रसिद्ध साधकों ने पर्याप्त विस्तार के साथ साधना-पथ को प्रशस्त किया है। साधना की विविधता के कारण ही भैरव-साधना-सम्बन्धी साहित्य की भी विविधता उपलब्ध होती है। वेदों में रुद्र की जो भय-हरणकारी स्तुति की गई है और उपनिषदों में भयावह स्वरूपधारी होने से जिसके भय से इन्द्रादि देवों के द्वारा स्व-स्व-कर्म-सम्पादन का वर्णन हुआ है, वह भगवान् भैरवनाथ की ही स्तुति और वर्णन है। शुक्ल यजुर्वेद संहिता का यह मन्त्र इसकी पुष्टि करता है, इसमें शान्त एवं रौद्र दोनों प्रकार के स्वरूपधारी रुद्र से प्रार्थना की गई है—

या ते रुद्र! शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥१६/२॥

इतना ही नहीं, भैरव ही ब्रह्मा और विष्णु रूप भी हैं। भैरव-नामावली पर खरड़निवासी, भागवत के व्याख्याकार पं० श्री वंशीधर

---

१. इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए देखिये हमारी पुस्तक "श्री बटुक भैरव साधना' की भूमिका।

जी ने जो व्याख्या की है उसमें १०८ नामों को विष्णुस्वरूप-बोधक ही व्यक्त किया है।

तन्त्र और पुराणों के आधार पर ज्ञान होता है कि भैरव के अनेक अवतार हुए हैं। एकादशरुद्रावतार बावन भैरव, क्षेत्रपाल भैरव और बेताल आदि स्वरूपों के अतिरिक्त भगवती के प्रमुख दश महाविद्याओं के भैरव आदि अवतारों की परम्परा विश्वव्यापी है।

(२) चतुःषष्टि-भैरव-नामावली

'रुद्रयामल' में चौसठ भैरवों का विशेष रूप से कथन हुआ है तथा इनकी चौसठ ही भैरवियां ६४ योगिनियों के रूप में दर्शित हैं। यहां पाठकों के ज्ञान के लिए ६४ भैरवों का नामावली-पाठ प्रस्तुत है—

असिताङ्गो विशालाक्षो मार्तण्डो मोदकप्रियः।
स्वच्छन्दो विघ्नसन्तुष्टः खेचरः सचराचरः॥१॥
रुरुश्च क्रोड-दंष्ट्रश्च तथैव च जटाधरः।
विश्वरूपो विरूपाक्षो नानारूपधरः परः॥२॥
वज्रहस्तो महाकायश्चण्डश्च प्रलयान्तकः।
भूमिकम्पो नीलकण्ठो विष्णुश्च कुलपालकः॥३॥
मुण्डमालः कामपालः क्रोधो वै पिङ्गलेक्षणः।
उग्ररूपो धरापालः कुटिलो मन्त्रनायकः॥४॥
रुद्रः पितामहाख्यश्च व्युन्मत्तो बटुनायकः।
शङ्करो भूत-वेतालस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तकः॥५॥
वरदः पर्वतावासः कपालः शशिभूषणः।
हस्तिचर्माम्बरधरो योगीशो ब्रह्मराक्षसः॥६॥
सर्वज्ञः सर्वदेवेशः सर्वभूतहृदि स्थितः।
भीषणाख्यो भयहरः सर्वज्ञाख्यस्तथैव च॥७॥
कालाग्निश्च महारौद्रो दक्षिणो मुखरोऽस्थिरः।
संहारश्चातिरिक्ताङ्गः कालाग्निश्च प्रियङ्करः॥८॥
घोरनादो विशालाङ्गो योगीशो दक्षसंस्थितः।
चतुःषष्टीरूपधृग्देवो भैरवः स सदाऽवतु॥९॥

इस नामावली में 'कालाग्नि-प्रियंकर' नाम एक साथ है। इसके आरम्भ में 'ॐ ह्रीं' तथा अन्त में 'ह्रीं ॐ' लगाकर इसका पाठ करने से अथवा प्रत्येक नाम का चतुर्थी विभक्ति का एक वचनात्मक रूप बनाकर आदि में 'ॐ ह्रीं' तथा अन्त में 'नमः' पद जोड़कर भी पाठ-पजा आदि किए जा सकते हैं।

अष्टोत्तरशत-भैरवनामावली

रुद्रयामल में कहा गया है कि—आपदुद्धारक श्री भैरव के सहस्र, दशसहस्र और अरबों नाम हैं। उन्हीं का सार-संग्रह करके १०८ नामों का संग्रह बतलाने की भगवती पार्वती ने शिवजी से प्रार्थना की थी।[1] स्मरणमात्र से सर्वकामनाओं को पूर्ण करने वाली यह नामावली स्तोत्र-रूप में वर्णित है—

ॐ ह्रीं भैरवो भूतनाथश्च भूतात्मा भूतभावनः।
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालश्च क्षेत्रदः क्षत्रियो विराट् ॥१॥
श्मशानवासी मांसाशी खर्पराशी स्मरान्तकः।
रक्तपः पानपः सिद्धः सिद्धिदः सिद्धसेवित ॥२॥
कङ्कालः कालशमनः कलाकाष्टातनुः कविः।
त्रिनेत्रो बहुनेत्रश्च तथा पिङ्गल-लोचनः ॥३॥
शूलपाणिः खड्गपाणिः कङ्काली धूम्रलोचनः।
अभीरूर्भैरवीनाथो भूतपो योगिनीपतिः ॥४॥
धनदोऽधनहारी च धनवान् प्रतिभानवान्।
नागहारो नागपाशो व्योमकेशः कपालभृत् ॥५॥
कालः कपालमाली च कमनीयः कलानिधिः।
त्रिलोचनो ज्वलन्नेत्रस्त्रिशिखी च त्रिलोचनः ॥६॥
त्रिनेत्रतनयो डिम्भशान्तः शान्तजनप्रियः।
बटुको बहुवेशश्च खट्वाङ्गो वरधारकः ॥७॥
भूताध्यक्षः पशुपतिर्भिक्षुकः परिचारकः।
धूर्तो दिगम्बरः शूरो हरिणः पाण्डुलोचनः ॥८॥

---

१. तस्य-नाम-सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।
सारमुद्धृत्य तेषां वै 'नामाष्टशतक' वद ॥

प्रशान्तः शान्तिदः शुद्धः शङ्कर-प्रियबान्धवः।
अष्टमूर्तिर्निधीशश्च ज्ञानचक्षुस्तपोमयः॥९॥
अष्टाधारः षडाधारः सर्पयुक्तः शिखीसखः।
भूधरो भूधराधीशो भूपतिर्भूधरात्मजः॥१०॥
कङ्कालधारी मुण्डी च आन्त्रयज्ञोपवीतवान्।
जृम्भणो मोहनः स्तम्भी मारणः क्षोभणस्तथा॥११॥
शुद्धनीलांजन-प्रख्यो दैत्यहा मुण्डभूषितः।
बलिभुग् बलिभुङ्नाथो बालोऽबालपराक्रमः॥१२॥
सर्वापत्तारणो दुर्गो दुष्टभूत-निषेवितः।
कामी कलानिधिकान्तः कामिनीवशकृद् वशी॥१३॥
जगद्रक्षाकरोऽनन्तो मायामन्त्रौषधीमयः।
सर्वसिद्धिप्रदो वैद्यः प्रभविष्णुः करोतु शम्॥१४॥

इस स्तोत्र के पहले और अन्त में विनियोग, न्यास, ध्यान आदि का भी विधान है। यह स्तोत्र अत्यन्त प्रभावशाली एवं सद्यः फलदायी है। इसके १०८ नाम अलग-अलग करके प्रत्येक के साथ आरम्भ में 'ॐ ह्रीं' तथा अन्त में 'नमः' पद लगाकर नाम को चतुर्थ्यन्त बनाकर पाठ तथा पूजन भी करने की पद्धति है। पाठ के भी अनेक प्रकार हैं जिनमें १. सृष्टि, २. स्थिति, ३. संहारक्रम, ४. सृष्टि-संहार-सृष्टि, ५. लोम-विलोम आदि विशिष्ट हैं।[1] इस स्तोत्र का 'हिन्दी-चौपाई' में पाठ भी प्रचलित है, जो इस प्रकार है—

४. हिन्दी नामावली पाठ

ध्यान—

कर कपाल शुभ सुन्दर राजे, कुंडल कर्ण दण्ड कर साजे।
तरुण-तिमिर सम नील स्वरूपा, व्याल-यज्ञ उपवीत अनूपा॥
विघ्ननाशिं मखरक्षक पूरे, साधु सिद्धिप्रद रण अति शूरे।
जय जय बटुकनाथ सिधिदायक, कृपासिन्धु प्रभु भक्त सहायक॥

---

१. इस प्रकार के विभिन्न पाठों के प्रकार तथा अन्य अनेक महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन हमने—'श्रीबटुक-भैरव साधना' में किया है। यह पुस्तक 'समिति साहित्य सदन' दिल्ली से छपी है।

मूल पाठ—

नमो नमो भैरव सिधिदाता। भूतनाथ भवभय ते त्राता।
भूतात्मा भूतल उजियारे। बटुक भूतभावन मतवारे ॥१॥
क्षेत्रद क्षेत्रपाल सुरराटा। क्षत्रियवर क्षेत्रज्ञ विराटा।
जय श्मशानवासी शुभनामा। मांसाशी प्रभु मंगलदाता ॥२॥
नमो खर्पराशी भगवन्ता। जय स्मरान्तक रूप अनन्ता।
हे खरान्तक अतिबलवाना। हे मखान्तक सर्व सुजाना ॥३॥
रक्तप तोहि बहुरि सिर नाऔं। पानप सिद्ध हृदयमंह ध्याऔं।
रक्तपान तत्पर बलि जाओं। पुनि पुनि प्रभु तोहि सीस नवाओं ॥४॥
सिद्धिद देव सिद्धि के नाथा। सिद्ध सुसेवित सेवक साथा।
जय कंकाल कुटिल-नर-नाशी। कालशमन जय सब-सुखराशी ॥५॥
नमो कलाकाष्ठा तनुधारी। जय-जय कवि सर्वज्ञ सुखारी।
जय त्रिनेत्र बहुनेत्र नमामि। पिंगल-लोचन शरण व्रजामि ॥६॥
शूलपाणि जय दीन-दयाला। खड्गपाणि जय परम-कृपाला।
कंकाली तोहि कोटि प्रणामा। जयतु धूम्रलोचन शुभ नामा ॥७॥
जय अभीरु जय भैरवनाथा। भूतप योगिनिपति शुचि गाथा।
नमो धनद धनहारी देवा। जय धनवान विश्वसुख देवा ॥८॥
जय प्रतिभानवान सुर-स्वामी। जय प्रतिभावित अन्तर्यामी।
नागहार तव चरग नमामि। देव दयामय सदा भजामि ॥९॥
नागपाश जय जय सुरसांई। व्योमकेश जय प्रभो गुसांई।
नागकेश जय जय सुरराया। कीजै नाथ भक्त पै दाया ॥१०॥
जय कपालभृत काल कराला। जय कपालमाली जगपाला।
जय कमनीय कलानिधि त्राता। जयतु त्रिलोचन आनन्ददाता ॥११॥
ज्वलन्नेत्र त्रिशिखी तोहि ध्याऔं। नमो त्रिलोकप सब सिधि पाऔं।
जय त्रिनेत्रतनय सुखराशी। जय हे डिम्भ नित्य अविनाशी ॥१२॥
जय हे शन्ताभक्त-वरदाई। डिम्भ शान्त प्रभु भक्त सहाई।
शान्तजनप्रिय दीन-दयाला। नमो बटुक बहुवेष कृपाला ॥१३॥

जय खट्वाङ्ग वरधारक देवा। भूताध्यक्ष करैं सुख सेवा।
जय-जय पशुपति भिक्षुक देवा। जय परिचारक जन-मन-मेवा ॥१४॥
जय परिवारक जग के स्वामी। तुम कहं बारम्बार नमामि।
धूर्त दिगम्बर शूर भजामि। हरिण पाण्डुलोचन जय स्वामी ॥१५॥
जय प्रशान्त हे शान्तिद शुद्धा। सिद्ध युद्ध-जयकारी बुद्धा।
हे शंकर प्रिय बान्धव नामी। शंकरप्रिय-बान्धव शुभकामी ॥१६॥
अष्टमूर्ति जय देव निधीशा। ज्ञानचक्षु तपोमय ईशा।
अष्टाधार नमो सुर-स्वामी। षडाधार जग अन्तर्यामी ॥१७॥
सर्पयुक्त शिखिसख भूधर जय। जय भूधर-अधीश मंगलमय।
भूपति भूधर-आत्मज दाता। भूधर आत्मक सब जगत्राता ॥१८॥
जय कंकालधारि सुरनाथा। मुण्डी तोहि नवावौं माथा।
नागयज्ञ उपवीत विराजै। आन्त्रयज्ञ उपवीत सुसाजै ॥१९॥
जृम्भण मोहन स्तम्भन स्वामी। मारणक्षोभण जगसुखकामी।
हे गुरुदेव ज्ञान के दाता। भोग-मोक्षप्रद कृपा-विधाता ॥२०॥
शुद्ध नील अंजन प्रख्याता। देव दैत्यहा सेवक त्राता।
मुण्ड विभूषित छवि सरसाये। सकल सुमङ्गल मूल सहाये ॥२१॥
बलिभुक् तुम प्रभु बलिभुङ्नाथा। बाल अबाल पराक्रम साथा।
जय सर्वापत्तारण स्वामी। दुर्गरूप प्रभु अन्तर्यामी ॥२२॥
दुष्ट भूत-निषेवित देवा। कामी कामफलप्रद सेवा।
जयतु कलानिधि कान्त सुनामी। कामिनीवशकृत तोहि नमामि ॥२३॥
सकल जगत वशीकृत नामा। कामिनिवशकृत वशी ललामा।
वेव जगत रक्षा कर जय-जय। अनन्त माया मन्त्रौषधि-मय ॥२४॥
सर्वसिद्धिप्रद वैद्य महाना। हे प्रभु विष्णु विवेक निधाना।
तुम विभु अखिल विश्व सरसाओ। भक्त भरण करि सुयश कमाओ।२५।
अष्टोत्तर शतनाम स्वरूपा। कल्पवृक्ष यह परम अनूपा।
जपत जीव सब मंगल पावैं। सकल कामना तुरत पुरावैं ॥२६॥
दुरित भूत भय मारी भीती। जपत मिटैं पल में सब ईती।
राज शत्रु ग्रह भय नहिं लागै। भैरव स्तवन करत दुख भागै ॥२७॥

अष्टोत्तर शतनाम शुभ, जपत धरै नित ध्यान।
तिनकहं भैरव लाडिलै, सदा करैं कल्यान ॥२८॥

५. बटुक-भैरव-मन्त्रविधान

१. विनियोग—ॐ अस्य श्री आपदुद्धारण-बटुकभैरव-मन्त्रस्य बृहदारण्यक ऋषिः, त्रिष्टुप्छन्दः, श्रीबटुकभैरवो देवता, ह्रीं बीजं, स्वाहा शक्तिः, भैरवः कोलकं मम धर्मार्थकाममोक्षार्थं श्रीबटुकभैरव-प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

२. ऋष्यादिन्यास—बृहदारण्यकऋषये नमः (शिरसि), त्रिष्टुप्छन्दसे नमः (मुखे), श्रीबटुकभैरवदेवतायै नमः (हृदये), ह्रीं बीजाय नमः (गुह्ये), स्वाहाशक्तये नमः (पादयोः), भैरवकीलकाय नमः (नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

३. कर-हृदयादिन्यास—ॐ ह्रां वां (अंगुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः), ॐ ह्रीं वीं (तर्जनीभ्यां नमः, सिरसे स्वाहा), ॐ ह्रूं वूं (मध्यमाभ्यां नमः, शिखायै वषट्), ॐ ह्रैं वैं (अनामिकाभ्यां नमः, कवचाय-हुम्), ॐ ह्रौं वौं (कनिष्ठिकाभ्यां नमः, नेत्रत्रयाय वौषट्), ॐ ह्रः वः (करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, अस्त्राय फट्)।

४. मन्त्रन्यास—ॐ ह्रां ह्रीं (अंगुष्ठा० हृदयाय०), ॐ ह्रीं बटुकाय (तर्जनी० शिरसे०), ॐ ह्रूं आपदुद्धारणाय (मध्यमा० शिखायै०), ॐ ह्रैं कुरुकुरु (अनामिका०, कवचाय०), ॐ ह्रौं बटुकाय (कनिष्ठिका० नेत्र०), ॐ ह्रः ह्रीं (करतल० अस्त्राय०)।

५. ध्यान—

करकलित-कपालः कुण्डली दण्डपाणि—
स्तरुणतिमिरनीलो व्यालयज्ञोपवीती।
क्रतुसमयसपर्या-विघ्नविच्छित्तिहेतु—
र्जयति बटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥

६. माला-प्रार्थना—

महामाले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयिन्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥
अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्धचर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥

७. जप-मन्त्र—

ॐ ह्रीं बटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु बटुकाय ह्रीं।

८. जपान्त में माला प्रार्थना—

त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव।
शिवं कुरुष्व मे भद्रे, यशोवीर्यञ्च देहि मे॥

९. जप समर्पण—

अनेन श्रीबटुक भैरव मन्त्र जपाख्येन कर्मणा श्रीबटुकभैरवदेवः प्रीयताम्।

१०. संक्षिप्त बलिदान—घर के बाहर दरवाजे के बायीं ओर दो लौंग तथा गुड़ की डली रखें। मन्त्र इस प्रकार है—

"ॐ ह्रीं वं एह्येहि देवीपुत्र आपदुद्धारक बटुकनाथ कपिलजटाभारभासुर ज्वलत्पिंगलनेत्र सर्वकार्यसाधक मद्दत्तमिमं यथोपनीतं बलिं गृण् गृण् मम कर्माणि साधय साधय सर्वमनोरथान् पूरय पूरय सर्वशत्रून् संहारय ते नमः वं ह्रीं ॐ।

६. रुद्रयामलोक्त श्री स्वर्णाकर्षण भैरव साधना

श्रीभैरवके अनन्त रूपों में स्वर्णाकर्षण-भैरव का स्वरूप भी परम उपास्य बतलाया गया है। इनकी साधना शान्तिक, पौष्टिक आदि सभी कर्मों में अत्यन्त सफल मानी गई है। अपने भक्तों की दरिद्रता को नष्ट करने तथा उन्हें धन-धान्य से समृद्ध बनाने के कारण ही आपका नाम 'स्वर्णाकर्षण-भैरव' के रूप में प्रसिद्ध है। तन्त्रशास्त्रों में इनकी साधना के किए मन्त्रमय स्तोत्र, नामावली, रूप स्तोत्र, कवच, सहस्रनाम एवं मन्त्र-जप का विधान विस्तार से वर्णित है।

रुद्रयामल में इनका वर्णन करते हुए जो ध्यान बतलाया है उसके अनुसार ये स्वर्ण के समान आकृति वाले, मन्दार के वृक्ष के नीचे माणिक्य के सिंहासन पर विराजमान भक्तों को रत्न के पात्र में भरी हुई स्वर्ण मुद्राओं को प्रदान करने वाले अत्यन्त दयालु देव हैं। अज नामक राक्षस का संहार इनके द्वारा हुआ था। ये त्रिनेत्र, चतुर्भुज, पाश, अंकुश, वर और अभयधारी, चन्द्रखंड, जटाजूट एवं स्वर्णाभरणों से विभूषित एवं सिद्ध विद्याधरों से सेवित बतलाए गए हैं।

इनके मन्त्र-विधान, स्तोत्र एवं कवच, सहस्रनाम, पूजायन्त्र आदि बहुत विस्तार से प्राप्त होते हैं। यन्त्रपूजा में पात्रासादन एवं आवरण-पूजा का भी पूरा विधान है। हम यहां एक मन्त्र-विधान तथा अन्य साहित्य साधकों की सुविधा के लिए प्रकाशित कर रहे हैं।

श्रीस्वर्णाकर्षण भैरव-मन्त्र-विधान एवं स्तोत्र

'चिदम्बर-रहस्य' के अनुसार श्रीस्वर्णाकर्षण भैरव की उपासना के लिए हम यहां संक्षेप में मन्त्र-विधान एवं पाठ के लिए स्तोत्र दे रहे हैं, जो इस प्रकार है—

मन्त्र-विधान

१. **विनियोग**—ॐ अस्य श्रीस्वर्णाकर्षण-भैरवमहामन्त्रस्य महाभैरव-ब्रह्मा ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः त्रिमूर्तिरूपी[1] भगवान् स्वर्णाकर्षण-भैरवो देवता ह्रीं बीजं सः शक्तिः वं कीलकं मम दारिद्र्यनाशार्थे जपे विनियोगः।

२. **ऋष्यादिन्यास**—ॐ **महाभैरवब्रह्मर्षये नमः** (शिरसि), **त्रिष्टुप्छन्दसे नमः** (मुखे), **त्रिमूर्तिरूपी-भगवत्स्वर्णाकर्षणभैरवदेवतायै नमः** (हृदये), **ह्रीं बीजाय नमः** (गुह्ये), **सः शक्तये नमः** (पादयोः), **वं**[2] **कीलकाय नमः** (नाभौ), **विनियोगाय नमः** (सर्वांगे)।

कर-न्यास—

ॐ (अंगुष्ठाभ्यां नमः)। ऐं (तर्जनीभ्यां नमः)। **क्लां ह्रां** (मध्य-माभ्यां नमः)। **क्लीं ह्रीं** (अनामिकाभ्यां नमः। क्लूं ह्रूं (कनिष्ठिकाभ्यां नमः)। **सं वं** (करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः)।[3]

४. हृदयादि न्यास—

आपदुद्धारणाय (हृदयाय नमः), **अजामलबद्धाय**[4] (शिरसे

---

१. हरिहरब्रह्मात्मक, यह पाठान्तर है।

२. भैरवायेति पाठा०

३. क्लीं क्लीं मध्य०। क्लीं ह्रीं अना०, ह्रीं ह्रीं कनि० ये सभी पाठ सम्भव हैं। अन्यत्र १० बीजमंत्र एवं मूलमन्त्र के ६ खण्डों से करन्यास करने का भी निर्देश है।

४. यहां अजाबलि और अजामिल पाठ भी हैं।

स्वाहा), **लोकेश्वराय** (शिखायै वषट्), **स्वर्णाकर्षणभैरवाय** (कवचाय हुम्), **मम दारिद्रयविद्वेषणाय** (नेत्रत्रयाय वौषट्), **श्रीमहाभैरवाय नमः** (अस्त्राय फट्)। रं रं रं ज्वलत्प्रकाशाय नमः।

५. ध्यानम्—

ॐ पीतवर्णं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं पीतवाससम्।
अक्षयं स्वर्णमाणिक्य-तडित्पूरितपात्रकम् ॥१॥
अभिलसन् महाशूलं चामरं तोमरोद्वहम्।
सततं चिन्तये देवं भैरवं सर्वसिद्धदम् ॥२॥
मन्दारद्रुमकल्पमूलमहिते माणिक्य-सिंहासने,
संविष्टोदरभिन्नचम्पकरुचा देव्या समालिङ्गितः।
भक्तेभ्यः कररत्नपात्रभरितं स्वर्णंददानो भृशं,
स्वर्णाकर्षण-भैरवो विजयते स्वर्णाकृतिः सर्वदा॥

इन पद्यों से ध्यान तथा मानसिक उपचारों से पूजा करके मन्त्र जप करें।

६. मूलमन्त्र—

ॐ ऐं क्लीं क्लीं क्लूं ह्रां ह्रीं ह्रूं सः वं आपदुद्धारणाय अजामलबद्धाय लोकेश्वराय स्वर्णाकर्षणभैरवाय मम दारिद्रयविद्वेषणाय ॐ ह्रीं महाभैरवाय नमः।

इस मन्त्र का जप करें। १० हजार जप करके दशांश हवन, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण भोजन कराने से दरिद्रता का नाश, ऋण का निवारण तथा सर्वविध सुख की प्राप्ति होती है। पायस तथा बिल्व से हवन करें। कृष्णपक्ष की अष्टमी से चतुर्दशी तक जप का विशेष महत्त्व है।

श्रीस्वर्णाकर्षण-भैरव-स्तोत्रम्

यह स्तोत्र **'रुद्रयामल'** तन्त्र में ईश्वर और दत्तात्रेय के संवादरूप में कहा गया है। इसके आरम्भ में श्रीमार्कण्डेय ऋषि ने इस स्तोत्र के लिए पूछा है तथा श्रीनन्दिकेश्वर ने लोकोपकार की दृष्टि से इसका कथन किया है। वहीं इसका फल कहा गया है कि—यह दुर्लभ स्तोत्र

है, सर्वपापों का नाशक है। सर्वविध सम्पत्ति का दाता, दरिद्रता को मिटाने वाला, आपत्ति निवारक, अष्टविध ऐश्वर्यदाता, विजयप्रद, कीर्तिकारी, सौन्दर्यकर, स्वर्णादि अष्टसिद्धि का दाता सर्वोत्तम एवं भुक्ति-मुक्ति को देने वाला है। महाभैरव के भक्त, सेवाभावी, निर्धन तथा गुरुभक्त को यह स्तोत्र देना चाहिए। इतना कहकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप श्रीभैरव का यह स्तोत्र सुनाया गया है।

इस स्तोत्र का विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, हृदयादि-न्यास, ध्यान और मुद्राप्रदर्शन करके भक्तिपूर्वक पाठ करना चाहिए।

पूरा स्तोत्र तीन अंशों में है, जिनमें पहला अंश स्तोत्र की प्राप्ति के उपक्रम और महत्त्व का सूचक है। दूसरा अंश मूल स्तोत्ररूप है, जिसमें **श्रीस्वर्णाकर्षण भैरव** के प्रस्तुत स्तोत्र के, **विनियोग, ऋष्यादिन्यास, हृदयादिन्यास, ध्यान** एवं मुद्राप्रदर्शन का निर्देश करके **नमस्कार** सहित **नामावलीरूप स्तोत्र** का पाठ दिया है। तीसरा अंश स्तोत्र की 'फलश्रुति' का है जिसमें **स्तोत्र-पाठ के फल** और **पाठ-विधि के संकेत** हैं।

स्तोत्र-प्रारम्भिका

[स्तोत्र-प्राप्ति का उपक्रम एवं महत्त्व]

भगवन् प्रमथाधीश शिवतुल्य-पराक्रम।
पूर्वमुक्तस्त्वया मन्त्रो भैरवस्य महात्मनः ॥१॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि तस्य स्तोत्रमनुत्तमम्।
तत्केनोक्तं पुरा स्तोत्रं पठनात् तस्य किं फलम् ॥२॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि मे नन्दिकेश्वर।

नन्दिकेश्वर उवाच

अयं प्रश्नो महाभाग! लोकानामुपकारकः ॥३॥
स्तोत्रं बटुकनाथस्य दुर्लभं भुवनत्रये।
सर्वपाप-प्रशमनं सर्वसम्पत्-प्रदायकम् ॥४॥
दारिद्र्यनाशनं पुंसामापदामपहारकम्।
अष्टैश्वर्यप्रदं नृणां पराजय-विनाशनम् ॥५॥

महाकीर्त्तिप्रदं पुंसामसौन्दर्य-विनाशनम्।
स्वर्णाद्यष्ट - महासिद्धि - प्रदायकमनुत्तमम् ॥६॥
भुक्तिमुक्तिप्रदं स्तोत्रं भैरवस्य महात्मनः।
महाभैरवभक्ताय सेविने निर्धनाय च ॥७॥
निजभक्ताय वक्तव्यमन्यथा शापमाप्नुयात्।
स्तोत्रमेतद् भैरवस्य ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकम् ॥८॥
शृणुष्व रुचितो ब्रह्मन्! सर्वकाम-प्रदायकम्।

विनियोग—

ॐ अस्य श्रीस्वर्णाकर्षणभैरव-स्तोत्रमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः स्वर्णाकर्षणभैरव-परमात्मा देवता ह्रीं बीजं क्लीं शक्तिः सः कीलकं मम सर्वकामसिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—

ब्रह्मर्षये नमः (शरसि), अनुष्टुप्छन्दसे नमः (मुखे), स्वर्णाकर्षण-भैरवपरमात्मने नमः (हृदये), ह्रीं बीजाय नमः (गुह्ये), क्लीं शक्तये नमः (पादयोः), सः कीलकाय नमः (नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

कर-हृदयादिन्यास—

प्रथम बार	द्वितीय बार
ह्रां—अंगुष्ठाभ्यां नमः।	हृदयाय नमः।
ह्रीं—तर्जनीभ्यां नमः।	शिरसे स्वाहा।
ह्रूं—मध्यमाभ्यां नमः।	शिखायै वषट्।
ह्रैं—अनामिकाभ्यां नमः।	कवचाय हुम्।
ह्रौं—कनिष्ठिकाभ्यां नमः।	नेत्रत्रयाय वौषट्।
ह्रः—करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः।	अस्त्राय फट्।

ध्यानम्—

पारिजातद्रुमान्तारे, स्थिते माणिक्य-मण्डपे।
सिंहासनगतं वन्दे, भैरवं स्वर्णदायकम् ॥
गाङ्गेयपात्रं डमरुं त्रिशूलं, वरं करैः सन्दधतं त्रिनेत्रम्।
देव्यां युतं तप्तसुवर्णवर्णं, स्वर्णाकृषं भैरवमाश्रयामि ॥
मुद्रा—कमण्डलु-डमरु-त्रिशूल-वर-मुद्रा दर्शयेत्।

मूल-स्तोत्र-पाठः

ॐ नमस्ते भैरवाय ब्रह्मविष्णु - शिवात्मने।
नमस्त्रैलोक्यवन्द्याय वरदाय वरात्मने ॥१॥
रत्नसिंहासनस्थाय दिव्याभरणशोभिने।
दिव्यमाल्य-विभूषाय नमस्ते दिव्यमूर्तये ॥२॥
नमस्तेऽनेकहस्ताय अनेकशिरसे नमः।
नमस्तेऽनेकनेत्राय अनेकविभवे नमः ॥३॥
नमस्तेऽनेककण्ठाय अनेकांसाय ते नमः।
नमस्तेऽनेकपार्श्वाय नमस्ते दिव्यतेजसे ॥४॥
अनेकायुधयुक्ताय अनेक — सुरसेविने।
अनेक—गुणयुक्ताय महादेवाय ते नमः ॥५॥
नमो दारिद्र्यकालाय महासम्पत्प्रदायिने।
श्रीभैरवी-संयुक्ताय त्रिलोकेशाय ते नमः :।६॥
दिगम्बर नमस्तुभ्यं दिव्याङ्गाय नमो नमः।
नमोऽस्तु दैत्यकालाय पापकालाय ते नमः ॥७॥
सर्वज्ञाय नमस्तुभ्यं नमस्ते दिव्यचक्षुषे।
अजिताय नमस्तुभ्यं जितामित्राय ते नमः ॥८॥
नमस्ते रुद्ररूपाय महावीराय ते नमः।
नमोऽस्त्वनन्तवीर्याय महाघोराय ते नमः ॥९॥
नमस्ते घोरघोराय विश्वघोराय ते नमः।
नमः उग्राय शान्ताय भक्तानां शान्तिदायिने ॥१०॥
गुरवे सर्वलोकानां नमः प्रणवरूपिणे।
नमस्ते वाग्भवाख्याय दीर्घकामाय ते नमः ॥११॥
नमस्ते कामराजाय योषित्कामाय ते नमः।
दीर्घमायास्वरूपाय महामायाय ते नमः ॥१२॥
सृष्टिमाया-स्वरूपाय विसर्गसमयाय ते।
सुरलोक-सुपूज्याय आपदुद्धारणाय च ॥१३॥

नमो नमो भैरवाय महादारिद्र्यनाशिने ।
उन्मूलने कर्मठाय अलक्ष्म्याः सर्वदा नमः ॥१४॥
नमोऽजामलबद्धाय नमो लोकेश्वराय ते ।
स्वर्णाकर्षणशीलाय भैरवाय नमो नमः ॥१५॥
मम दारिद्र्यविद्वेषणाय लक्ष्याय ते नमः ।
नमो लोकत्रयेशाय स्वानन्द — निहिताय ते ॥१६॥
नमः श्रीबीजरूपाय सर्वकामप्रदायिने ।
नमो महाभैरवाय श्रीभैरव नमो नमः ॥१७॥
धनाध्यक्ष नमस्तुभ्यं शरण्याय नमो नमः ।
नमः प्रसन्नरूपाय आदिदेवाय ते नमः ॥१८॥
नमस्ते मन्त्ररूपाय नमस्ते रत्नरूपिणे ।
नमस्ते स्वर्णरूपाय सुवर्णाय नमो नमः ॥१९॥
नमः सुवर्णवर्णाय महापुण्याय ते नमः ।
नमो शुद्धाय बुद्धाय नमः संसारतारिणे ॥२०॥
नमो देवाय गुह्याय प्रचलाय नमो नमः ।
नमस्ते बालरूपाय परेषां बलनाशिने ॥२१॥
नमस्ते स्वर्णसंस्थाय नमो भूतलवासिने ।
नमः पातालवासाय अनाधाराय ते नमः ।२२॥
नमो नमस्ते शान्ताय अनन्ताय नमो नमः ।
द्विभुजाय नमस्तुभ्यं भुजत्रयसुशोभिने ॥२३॥
नमोऽणिमादि — सिद्धाय स्वर्णहस्ताय ते नमः ।
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशवदनाम्भोज — शोभिने ॥२४॥
नमस्तेऽस्तु स्वरूपाय स्वर्णालङ्कारशोभिने ।
नमः स्वर्णाकर्षणाय स्वर्णाभाय नमो नमः ॥२५॥
नमस्ते स्वर्णकण्ठाय स्वर्णाभाम्बरधारिणे ।
स्वर्णसिंहासनस्थाय स्वर्णपादाय ते नमः ॥२६॥
नमः स्वर्णाभपादाय स्वर्णकाञ्चीसुशोभिने ।
नमस्ते स्वर्णजङ्घाय भक्तकामदुघात्मने ॥२७॥

नमस्ते स्वर्णभक्ताय कल्पवृक्षस्वरूपिणे ।
चिन्तामणिस्वरूपाय नमो ब्रह्मादि—सेविने ॥२८॥
कल्पद्रुमाधःसंस्थाय बहुस्वर्ण — प्रदायिने ।
नमो हेमाकर्षणाय भैरवाय नमो नमः ॥२९॥
स्तवेनानेन सन्तुष्टो भव लोकेश भैरव ।
पश्य मां करुणादृष्ट्या शरणागतवत्सल ॥३०॥

फलश्रुतिः

श्रीमहाभैरवस्येदं स्तोत्रमुक्तं सुदुर्लभम् ।
मन्त्रात्मकं महापुण्यं सर्वैश्वर्य-प्रदायकम् ॥३१॥
यः पठेन्नित्यमेकाग्रं पातकैः स प्रमुच्यते ।
लभते महतीं लक्ष्मीमष्टैश्वर्यमवाप्नुयात् ॥३२॥
चिन्तामणिमवाप्नोति धेनुं कल्पतरुं ध्रुवम् ।
स्वर्णराशिमवाप्नोति शीघ्रमेव स मानवः ॥३३॥
त्रिसन्ध्यं यः पठेत् स्तोत्रं दशावृत्त्या नरोत्तमः ।
स्वप्ने श्रीभैरवस्तस्य साक्षाद् भूत्वा जगद्गुरुः ॥३४
स्वर्णराशिं ददात्यस्मै तत्क्षणं नास्ति संशयः ।
अष्टावृत्त्या पठेद् यस्तु सन्ध्यायां वा नरोत्तमः ॥३५॥
लभते सकलान् कामान् सप्ताहान्नात्र संशयः ।
सर्वदा यः पठेत् स्तोत्रं भैरवस्य महात्मनः ॥३६॥
लोकत्रयं वशीकुर्यादचलां श्रियमाप्नुयात् ।
न भयं विद्यते क्वापि विषभूतादि-सम्भवम् ॥३७॥
म्रियन्ते शत्रवस्तस्य ह्यलक्ष्मी नाशमाप्नुयात् ।
अक्षयं लभते सौख्यं सर्वदा मानवोत्तमः ॥३८॥
अष्टपञ्चाशद् वर्णाढ्यो मन्त्रराजः प्रकीर्तितः ।
दारिद्र्यदुःखशमनः स्वर्णाकर्षण — कारकः ॥३९॥
य एनं सञ्जपेद् धीमान् स्तोत्रं वा प्रपठेत् सदा ।
महाभैरव-सायुज्यं सोऽन्तकाले लभेद् ध्रुवम् ॥४०॥

[इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे ईश्वर-दत्तात्रेयसंवादे
'स्वर्णाकर्षण-भैरवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।]

इस फलश्रुति का सार यह है कि—महाभैरव का यह स्तोत्र अति दुर्लभ है, मन्त्रात्मक है, महापुण्य एवं सर्वैश्वर्य का दाता है। इसके एकाग्र-एकान्त में पाठ से पाप-मुक्ति, महान् लक्ष्मी, चिन्तामणि-कामधेनु-कल्पतरु के समान अष्ट ऐश्वर्य तथा शीघ्र ही स्वर्णराशि की प्राप्ति होती है। त्रिकाल दस पाठ करने से स्वप्न में साक्षाद् भैरव भगवान् जगद्गुरु पधारकर तत्काल स्वर्णराशि-प्रदान करते हैं। प्रतिदिन आठ आवृत्ति करने से साधक एक सप्ताह में ही इच्छित फल प्राप्त करता है। नित्य पाठ से सर्व वशीकरण, अचल लक्ष्मीप्राप्ति, भवनाश, दारिद्र्य नाश तथा अक्षयसौख्य प्राप्त होते हैं। इसका मन्त्र अठावन अक्षरों का है जो दरिद्रतानिवारक तथा स्वर्णाकर्षण कारक है। इस मन्त्र का जप तथा स्तोत्रपाठ अन्त में सायुज्य प्रदान करते हैं।

इसी प्रकार एक महत्त्वपूर्ण स्तोत्र 'त्रिपुरा-सिद्धान्त' में इस प्रकार प्राप्त होता है। इसका निरन्तर विधिवत् पाठ करने से अवश्य लाभ मिलता है—

स्वर्णाकर्षण-भैरव-मन्त्रमय स्तोत्र

ब्रह्मा यस्य ऋषि स्वयं निगदितश्छन्दो मतं त्रैष्टुभं,
स्वर्णाकर्षण-भैरवो हरिहरब्रह्मात्मको देवता।
ह्रीं बीजं भृगुशक्तिरित्यभिहितं तस्यैव सूत्रात्मनः,
स्तोत्रं ध्यानपुरस्सरं मनुमयं ब्रूमो वयं प्रत्यहम्॥१॥
मन्दारद्रुममूलपूजितमहामाणिक्य-सिंहासने,
संविष्टो दरभिन्न चम्पकरुचा देव्या समालिंगितः।
भक्तेभ्यो वररत्न पात्र भरितं स्वर्णं ददानोऽनिशं,
स्वर्णाकर्षण-भैरवो विजयते स्वर्गापवर्गप्रदः॥२॥
ॐ ऐं क्लां क्लीं क्लूमिति व्याहरन यो भक्तः स्वर्णाकर्षणं।
कारुण्याब्धिः कल्पमूलाधिवासः स्वर्णाकर्षो भैरवो मेऽस्तु भूत्यै॥३॥
ह्रां ह्रीं ह्रूं सः सन्ततं जापकानां, वर्षन्तं तं स्वर्णवृष्टि समग्राम्।
अन्तः स्वान्तं सूर्यकोटिप्रकाशं, स्वर्णाकर्षं भैरवं भावयामि॥४॥
मरकतमणिपात्रे सम्भृतं स्वर्णपूर्णं, कृपणतरजनेभ्यस्तारतः सम्प्रदातुः।
कुरु हृदय सपर्यां सेवमानाय नित्यं, सुरवरमनुजेन्द्र स्यापदुद्धारणाय॥५॥

नमोऽजामलबद्धाय, ब्रह्मसूत्राधिवाससे ।
स्वर्णाकर्षण-शीलाय, साधकानां कृतात्मने ॥६॥
लोकेश्वराद्यर्चित-पादुकाय, दारिद्रचनिर्मूलनकारणाय ।
स्वर्णादि दानकरणोद्यत भैरवाय, कारुण्यवारांनिधये नमस्ते ॥७॥
दीनानाथ विपन्नरक्षणपरै राज्यप्रतीक्षापरैः,
सिद्धैः साध्यगणैः सुरासुरगणैर्भुक्तिप्रयुक्तात्मभिः ।
मूले कल्पतरोर्महामणिमये मार्तण्ड-तेजोजुषे,
स्वर्णाकर्षणभैरवाय सततं कुर्मो नमस्यां वयम् ॥८॥
स्वणाकर्षि-स्वर्णदेव्याश्रिताय, स्वर्णारूढोदार-सिंहासनाय ।
कुर्मो नित्यं स्वर्णदात्रे नमस्यां, दारिद्रचद्वेषि श्रीमते भैरवाय ॥९॥
स्वर्णप्रदानाध्वर-दीक्षिताय, स्वतेजसाक्रान्त-जगत्त्रयाय ।
औदार्य-सम्पत्-सदनाय नित्यं, ॐ श्रीमहाभैरव ! ते नमोऽस्तु ॥१०॥

चिन्तामणिस्थित-महानिधि-कामधेनु-
मन्दारमूल-मणिमण्डप-मध्यगाय ।
स्वर्ण-प्रदान-निरताय सदा सपर्यां,
कुर्मो वयं त्रिकरणैः परभैरवाय ॥११॥
मूले कल्पतरोः प्रभा-परिमले भद्रासने संस्थितो,
हस्ताम्भोरुह-रत्नपात्रभरितैः कार्तस्वरैर्भास्वरैः ।
निर्मूलीकृत-दुर्गतो विरचयन् विद्युद्दिनेशद्युतिः,
स्वर्णाकर्षण-भैरवो भवतु नो दारिद्रच-विद्वेषणः ॥१२॥

दुग्धाद्याराध्य स्वर्णाकृति कनकमये द्वीपवर्ये सुधाब्धौ,
कापित्थे तत्र रम्ये मणिमयविलसद् भित्ति-पाश्चात्य भागे ।
यद्वत्तं सर्ववाञ्छाधिकवसुनिचयं मन्त्रिणां संसरन्तं,
ध्यायेच्छ्रीभैरवं तं सकल-सुवसुदं दुःखदारिद्रच शत्रुम् ॥१३॥

सुवर्णमण्डपे ध्यायेत् सुवर्णरुचिभिर्युतम् ।
महात्मानं सुखासीनं प्रसन्नवरदायकम् ॥१४॥
सर्वरत्न-विभूषाढ्यं सुरासुर-नमस्कृतम् ।
मणिहारक-सम्पूर्ति ददतं स्वकरैः सदा ॥१५॥

सुवर्णवृष्टिरूपैश्च धनसारैर्निरन्तरम् ।
दारिद्र्य-नाम-संहारं-कुण्डलोल्लास-संयुतम् ॥१६॥
एवं ध्यात्वा महात्मानं महादारिद्र्य-नाशनम् ।
स्तौमि मन्वार-मूलस्थं ब्रह्मसूत्राधिवासनम् ॥१७॥
स्वर्णसिद्धि करैरेव ददानं स्वर्णभैरवम् ।
ऋणं न जायते तस्य धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥१८॥
स्वर्णादिमध्यमणिमण्डप कल्पवृक्षे,
पीतारुणाम्बुजनिविष्टसुवर्णवर्णम् ।
माणिक्यपात्रमभयं दधतं च दोर्भ्यां,
स्वर्णादिकर्षणविनोदनिधिं नमामि ॥१९॥
सुवर्णकर्षकं नित्यं ऋणहर्तारमीश्वरम् ।
भजतो न ऋणं तस्य धनं शीघ्रं प्रजायते ॥२०॥
पीतवर्णं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं पीतवाससम् ।
अक्षद्वयं स्वर्णमयं तडित्पूरित-पात्रकम् ॥२१॥
अतितीक्ष्ण-महाशूलं तोमरं चामरद्वयम् ।
सततं चिन्तयेद् यस्तु भैरवं स्वर्णसिद्धिदम् ॥२२॥
स्वर्णाकर्षणभैरव-मन्त्राढ्यं स्तोत्रमुत्तमम् ।
पठतां निधिसिद्धिश्च स्वर्णसिद्धिश्च जायते ॥२३॥
अनेन स्तवराजेन नित्यं ब्रह्महरीश्वराः ।
स्वर्णाकर्षणनामानि स्तुवन्ति जगदीश्वराः ॥२४॥

इसके पश्चात् और भी विस्तार से इस स्तोत्र के पाठ का फल-वर्णन करते हुए कहा गया है कि—जो मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह मन्दभाग्य होने पर भी भैरव के प्रसाद से इच्छा से भी अधिक लक्ष्मी प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है। रससिद्धि, कामनापूर्ति, स्थिरलक्ष्मी, रत्न, अश्व, गज, स्वर्णराशि, धेनु, चिन्तामणि आदि को प्राप्त करता है।

इस स्तोत्र के प्रतिदिन १०८ पाठ करने चाहिएं। ४१ दिनों का मण्डल पूर्ण करने से अथवा २५ दिन से पूर्व ही स्वर्णादि प्राप्त हो जाते

हैं। भगवती त्रिपुरा की उपासना से यह सर्वकामना पूर्ण करता है। इस 'फलश्रुति' के पद्य इस प्रकार हैं—

य: पठेत् परमं स्तोत्रमिदं नित्यं नरोत्तमः।
स मर्त्यो मन्दभाग्योऽपि भैरवस्य प्रसादतः ॥२५॥
इच्छातोऽप्यधिकां लक्ष्मीं लभते नात्र संशयः।
रससिद्धिर्भवेच्छीघ्रं निधीनामधिपो भवेत् ॥२६॥
सर्वान् कामानवाप्नोति दैवतैरपि दुर्लभम्।
एतज्जपैर्महालक्ष्मीश्चञ्चलाप्यचला भवेत् ॥२७॥
रत्नान्यश्वान् गजान् भूतीर्लभते शीघ्रमेव हि।
स्वर्णराशिमवाप्नोति चाक्षयां नात्र संशयः ॥२८॥
धेनुं चिन्तामणिं कल्पद्रुमं शीघ्रमवाप्नुयात्।
नित्यमष्टोत्तरशतं यो जपेत् स्तोत्रमुत्तमम् ॥२९।
मण्डलार्धाच्च प्रागेव स्वर्णराशिमनुत्तमाम्।
सततं ध्यायते तस्मै दर्शयत्येव न संशयः ॥३०॥
नित्यं च त्रिपुराभक्तैः स्वर्णाकर्षणभैरवः।
यत्नेन सर्वदोपास्यः सर्वकामप्रदायकः ॥३१॥

[इति श्रीत्रिपुरासिद्धान्ते दक्षिणामूर्ति प्रोक्तं स्वर्णाकर्षणभैरवस्तोत्रं समाप्तम्।]

७. श्री पक्षिराज शरभेश्वर-आकाश-भैरव-साधना

रुद्रयामल में शरभेश्वर का प्रासंगिक वर्णन ही प्राप्त होता है, और इनकी उपासना पद्धति का विस्तार अन्यत्र उपलब्ध है। अतः साधकों की सुविधा के लिए इसे यहां प्रकाशित कर रहे हैं।

यह प्रसिद्ध है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि देव समय-समय पर अनेकविध अवतार ग्रहण करते हैं। इनमें विष्णु के अवतारों का परिचय ही अधिक रूप से प्राप्त होता है। भगवान् शिव के अवतारों की संख्या भी इसी प्रकार अधिक है और वे अवतार अपने ढंग के अनूठे हैं। भैरव के अवतारों में 'आकाश-भैरव' का अवतार अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण है। इस अवतार का कारण भक्त प्रह्लाद की रक्षा और हिरण्यकशिपु के वध के लिए अवतरित भगवान् नृसिंह के क्रोध तथा अहम्भाव की शान्ति माना गया है। श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध में वर्णित नृसिंह रूप की विचित्रता इस प्रकार है—

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं, व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्, स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥१॥
स सत्त्वमेनं परितोऽपि पश्यन्, स्तम्भस्य मध्यादनु निर्जिहानम्।
नायं मृगो नापि नरो विचित्रमहो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ॥२॥
मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो, नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम्।
प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं स्फुरत्सटाकेसरजृम्भिताननम् ॥३॥
करालदंष्ट्रं करवालचञ्चलक्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम्।
स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुतव्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ॥४॥
दिवि स्पृशत्कायमदीर्घ-पीवर-ग्रीवोरुवक्षः-स्थलमल्पमध्यम्।
चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहैर्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥५॥

"अपने भक्त के कथन—'मेरा प्रभु सर्वत्र व्याप्त है'—को सत्य सिद्ध करने के लिए अत्यन्त अद्भुत रूप को धारण किए हुए न सिंह और न पुरुष अपितु नृसिंह के रूप में, सभा में स्थित स्तम्भ में प्रभु दिखाई दिए। जिसे देखकर सभी आश्चर्य में डूब गए। यह कैसा विचित्र रूप है, न सिंह है न पुरुष। इस प्रकार विचार ही कर रहे थे कि अत्यन्त भयानक, तपे हुए सोने के समान चमकीली आंखों वाले, सुनहरी रोमावली से युक्त मुंह फैलाए हुए, कराल दाढ़ें, तीक्ष्ण जिह्वा, भयंकर भौंहें, कान खड़े किए हुए, पर्वत की गुफा के समान गहरी नासिका से युक्त, भीषण ठोड़ी, आकाश को स्पर्श करते हुए विशाल शरीर, छोटी किन्तु सुदृढ़ ग्रीवा वाला विशाल वक्षःस्थल, कृश कटि, भूरे-भूरे बालों वाले तथा अत्यन्त कठोर नखों से युक्त भगवान् नृसिंह प्रकट हुए।"

इस प्रकार का अपूर्व अवतार लेने के कारण तथा परम पराक्रमी राक्षसराज का विनाश करने के कारण भी विष्णु के मन में अहम्भाव जागा। साथ ही क्रोध का आवेग भी पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था। अनेकविध स्तुतियां हो रहीं थीं। सभी देवगण चिन्तित थे कि क्रोध का शमन कैसे हो? अन्ततः भगवान् शिव ने इसका समाधान सोच लिया और उसी समय एक विचित्र पक्षी का रूप धारण किया और अपने पंजों से भगवान् नृसिंह को उठाकर उड़ गए। आकाश में उड़ते हुए उन्होंने इतना भीषण चक्कर लगाया कि सारा ब्रह्माण्ड प्रलयकाल के समान डोलता प्रतीत हुआ। नृसिंह अपने क्रोध को भूलकर स्वयं

आश्चर्य में पड़ गए कि यह क्या हुआ ? कैसे हुआ ? और कुछ समय बाद उन्हें पृथ्वी पर सब देवताओं के समक्ष लाकर छोड़ दिया और भगवान् नृसिंह का क्रोध धीरे-धीरे शान्त हो गया।

इस असामयिक घटना से वातावरण ही बदल गया। तभी देवताओं ने भगवान् शरभ को देखा। उनका स्वरूप उस समय कैसा था, यह निम्नलिखित ध्यान से ज्ञातव्य है—

चन्द्रार्काग्निस्त्रिदृष्टिः कुलिशवरनखश्चञ्चलोऽत्युग्रजिह्वः,
काली दुर्गा च पक्षौ हृदयजठरगो भैरवो वाडवाग्निः।
ऊरुस्थौ व्याधिमृत्यू शरभवरखगश्चण्डवातातिवेगः,
संहर्ता सर्वशत्रून् स जयति शरभः सालुवः पक्षिराजः॥'

चन्द्र, सूर्य और अग्निरूप तीन नेत्रवाले, वज्र के समान नखवाले, अत्यन्त उग्र एवं चंचल जीभवाले, जिसके दोनों पंख काली और दुर्गा से युक्त हैं, हृदय और उदर भाग में प्रलयकाल की अग्नि व्याप्त है, दोनों जंघाओं पर व्याधि और मृत्यु बैठे हुए हैं, जिसके उड़ने की गति प्रचण्ड वायु के वेगवाली है, ऐसा सर्व शत्रुओं का संहारक श्रेष्ठ शरभ-स्वरूप, 'शरभ, सालुव और पक्षिराज' नाम से अभिहित सर्वोत्कर्षशाली है—उसकी जय हो।

अन्य स्तुति-पद्यों में भी—"ज्वलनकुटिलकेश, रक्तपानोन्मद पंचानन, कलंकिचूड, भुजंगभूषण, दिगम्बर, वज्रदंष्ट्र, वज्रनख, अनेक-भुज, अष्टचरण, चतुर्थशुक, मृगांगलांगूल, सुचंचु, सहस्राशुशतप्रकाश, सपक्षिसिंहाकृति, प्रेतवाहन, शंखध्वनि तथा अप्रतिहतगति" आदि विशेषणों से इनकी स्तुति की गई है। तन्त्रशास्त्रों में श्रीशरभ का स्वरूप वर्णन करते हुए स्थान-स्थान पर इन्हें—"श्मशानरुद्र, प्रलय-कालाग्निरुद्र, नीलभैरव, उग्रभैरव, महाभैरव" आदि नामों से व्यक्त करते हुए सर्वकर्मसाधक तथा रिपुदर्पदमन के लिए पूज्य बताया गया है।

नृसिंहक्षोभनिवारणरूप कर्म का स्मरण दिलाते हुए प्रार्थना में कहा गया है कि—

---

१. आकाश भैरव-कल्प १६ अध्याय तथा निग्रह-दारुण-सप्तक-स्तोत्र।

कनक-जठरगोद्यद् — रक्तपानोन्मदेन,
प्रथित-निखिल-पीडा नारसिंहेन जाता।
शरभवर शिवेश ! त्राहि नः सर्वपापा—
दनिशमिह कृपाब्धे सालुवेश-प्रभो त्वम् ।।

तथा—

दंष्ट्रानखाढ्यः शरभः सपक्षश्चतुर्भुजश्चाष्टपदः सहेतिः।
कटीर-गङ्गेन्दुधरो नृसिंहक्षोभापहो मद् रिपुहास्तु शम्भुः ।।
हुङ्कारी शरभेश्वरोऽष्टचरणः पक्षी चतुर्थः शुकः,
पादाकृष्ट-नृसिंहविग्रहधरः कालाग्निकोटिर्यती।
विश्वक्षोभकरः सहेतिरनिशं ब्रह्मेन्द्रमुख्यैः स्तुतो,
गङ्गा-चन्द्रधरः पुरत्रयहरः सद्योरिहन्ताऽस्तु नः ।।
नृसिंहमृत्यून्नतदिव्यतेजःप्रकाशितं दानव-भङ्ग-दक्षम्।
प्रशान्तिमन्तं विदधाति योमं सोऽस्मानपायाच्छरभेश्वरोऽव्यात् ।।
योऽभूत् सहस्रांशु-शत-प्रकाशः, सपक्षिसिंहाकृतिरष्टपादः।
नृसिंहसंक्षोभः-समात्तरूपः पायादपायाच्छरभेश्वरो माम् ।।

'आकाश-भैरव-कल्प' में कहा गया है कि—भगवान् भैरव ने लोकरक्षा के लिए अपने स्वरूप को ही यथासमय तीन रूपों में क्रमशः प्रकट किया।

—श्रीश्वरउवाच—

रहस्यं शृणु वक्ष्यामि भैरवस्य महात्मनः।
सर्वलोकैकरक्षार्थं तव देवेशि ! तत्त्वतः ।।
कदाचिल्लोकरक्षार्थं लीलयाकाश-भैरवः।
त्रिधा विभज्य स्वात्मानमधिष्ठाय जगत् स्थितः ।।
आकाशभैरवं पूर्वं द्वितीयं त्वाशुगारुडम्।
शारभं तु तृतीयं स्यादिति रूपत्रयं क्रमात् ।।२।१-३।।

इस प्रकार १—आकाश भैरव, २—आशुगरुड़ तथा ३—शरभ ये तीनों रूप श्रीभैरव के ही हैं तथा इनमें भी तीसरे स्वरूप शरभेश्वर के पुनः तीन रूप व्यक्त हुए—

तत्र तार्तीयरूपस्य त्रिधारूपं विशेषतः ।
शरभं सालुवं चैव पक्षिराजमतः परम् ॥४॥ वही ।

भगवान् शरभ-भैरव परम दयालु हैं । ये अपने भक्तों के शत्रुओं का ही नहीं, अपितु अन्य देवताओं के भक्तों को कष्ट पहुंचाने वाले जो शत्रु हैं, उनका भी नाश करने के लिए तत्पर रहते हैं । **'ललिता-सहस्रनाम'** की फलश्रुति में कहा गया है—

यस्त्विदं नामसाहस्रं सकृत् पठति भक्तिमान् ।
तस्य ये शत्रवस्तेषां निहन्ता शरभेश्वरः ॥२६७॥

ऐसे अद्‌भुत पराक्रमी श्रीशरभेश्वर की उपासना यद्यपि विरले भक्त ही कर पाते हैं तथापि इनके उपासक की आकांक्षाओं की पूर्ति सभी देव पहले ही कर देते हैं । वाराणसी में एक ब्राह्मण श्रीशरभ के उपासक थे । उनकी प्रतिज्ञा थी कि वे किसी से न तो कुछ मांगते थे और न दान ही लेते थे और सदा उपासना में ही लगे रहते थे । इस कारण दरिद्रता का उनके यहां साम्राज्य था । एक बार दुःखित होकर उनकी पत्नी ने उनसे भला-बुरा कहा और साथ ही यह भी कह दिया कि—"तुम्हारा इष्टदेव कैसा है कि मेरे बालकों की भूख भी नहीं मिटा सकता ?" इस कथन से खिन्न होकर ब्राह्मणदेव घर से निकले और सोचा कि भगवान् विष्णु लक्ष्मीपति हैं, अतः उनसे प्रार्थना करूं । पास ही लक्ष्मी-नृसिंह भगवान् का मन्दिर था, वहां वे गए और मूर्ति के सामने खड़े हो गए । अपनी अयाचक-वृत्ति के कारण वे कुछ बोल नहीं पाए । किन्तु उनके तेजोमय भक्तिभाव से शालिग्रामजी की शिलामूर्ति पर स्वयं पानी बहने लगा, जो कि भय के कारण पसीना बह रहा था । और तत्काल नृसिंह भगवान् ने पुजारी को आज्ञा दी कि "इस ब्राह्मण को मेरे सामने से हटाओ, इसके घर ५०० मुद्राएं अभी पहुंचाओ तथा भविष्य के लिए इनकी पूरी व्यवस्था करो ।" इत्यादि । यह कुछ वर्ष पूर्व की ही सत्य घटना है जिसे हमने वहीं के परम साधक महानुभाव **श्री अमृतवाग्भवाचार्यजी महाराज** से सुनी है ।

श्रीशरभेश्वर-मन्त्र-विधान एवं स्तोत्र

श्रीशरभेश्वर भैरव की उपासना के लिए हम यहां संक्षेप में मन्त्र-विधान एवं पाठ के लिए एक स्तोत्र दे रहे हैं, जो इस प्रकार हैं—

मन्त्र-विधान—

विनियोग—अस्य श्रीशरभेश्वर-मन्त्रस्य वामदेवऋषिः अतिजगतीछन्दः श्रीशरभो देवता ॐ खं बीज स्वाहा शक्तिः मम कार्यसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—

ॐ वामदेवऋषये नमः (शिरसि), ॐ अतिजगतीछन्दसे नमः (मुखे), ॐ श्रीशरभेश्वरदेवतायै नमः (हृदये), ॐ खं बीजाय नमः (गुह्ये), स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः), विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

करहृदयादिन्यासः—

	(पहली बार)	(दूसरी बार)
ॐ खें खां खं फट्—	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
प्राणग्रहसि प्राणग्रहसिहुं फट्	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
सर्वशत्रुसंहारकाय	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
शरभसालुवाय	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
पक्षिराजाय	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्रत्रयाय वौषट्
हुं फट् स्वाहा	करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यानम्— मृगस्त्वर्धशरीरेण पक्षाभ्यां चञ्चुना द्विजः।
घोरवक्त्रश्चतुष्पाद ऊर्ध्वनेत्रश्चतुर्भुजः॥
कालान्तदहनः पुण्यो नीलजीमूतनिस्वनः।
अरिस्तद्दर्शनादेव विनष्टबलविक्रमः॥
सटाछटोग्ररूपाय पक्षविक्षिप्तभूभृते।
अष्टपादाय रुद्राय नमः शरभमूर्तये॥

अथवा—

चन्द्रार्काग्निस्त्रिदृष्टिः कुलिशवरनखश्चञ्चलोत्युग्रजिह्वः,
काली दुर्गा च पक्षौ हृदयजठरगौ भैरवो जठराग्निः।
ऊरुस्थौ व्याधिमृत्यू शरभवरखगश्चण्डवातातिवेगः,
संहर्त्ता सर्वशत्रून् स जयति शरभः सालुवः पक्षिराजः॥

इस प्रकार ध्यान करके निम्नलिखित मन्त्र का जप करें—

ॐ खें खां खं फट् प्राणग्रहसि प्राणग्रहसि हुं फट् सर्वशत्रुसंहारकाय शरभसालुवाय पक्षिराजाय हुं फट् स्वाहा।

एक अन्य मन्त्र इस प्रकार भी है—

ॐ नमोऽष्टपादाय सहस्रबाहवे द्विशिरसे त्रिनेत्राय द्विपक्षायाग्नि-वर्णाय मृगविहङ्गरूपाय वीरशरभेश्वराय ॐ।

स्तोत्र-पाठ निम्नलिखित है—जप के पश्चात् अथवा केवल स्तोत्र का पाठ भी किया जा सकता है। रात्रि में तीन पाठ नित्य करने से विशेष लाभ होता है।

निग्रह-दारुण-सप्तकम्

कोपोद्रेकाति-निर्यन् निखिलपरिचरत् ताम्रभारप्रभूतं,
ज्वालामालाप्रदग्धस्मरतनुसकलं त्वामहं शालुवेश !
याचे त्वत्पादपद्मप्रणिहितमनसं द्वेष्टि मां यः क्रियाभि—
स्तस्य प्राणप्रयाणं परशिव भवतः शूलभिन्नस्य तूर्णम् ॥१॥

शम्भो ! त्वद्धस्तकान्तक्षतरिपुहृदयान्निःस्रवल्लोहितौघं,
पीत्वा पीत्वातिदीर्घा दिशि-दिशि विचरास्त्वद्गणाश्चण्डमुख्याः
गर्जन्तु क्षिप्रवेगा निखिलजयकरा भीकराः खेललोलाः,
सन्त्रस्ता ब्रह्मदेवाः शरभ खगपते ! त्राहि नः शालुवेश ॥२॥

सर्वाद्यं सर्वनिष्ठं सकलभयहरं त्वत्स्वरूपं हिरण्यं,
याचेऽहं त्वाममोघं परिकरसहितं द्वेष्टि मां यः क्रियाभिः।
श्रीशम्भो त्वत्कराब्जस्थितकुलिशवराघातवक्षःस्थलस्य,
प्राणाः प्रेतेशदूत ग्रहगणपरिखाः क्रोशपूर्वं प्रयान्तु ॥३॥

द्विष्मः क्षोण्यां वयं यांस्तव पदकमलध्याननिर्धूततापाः,
कृत्याकृत्यैर्विमुक्ता विहगकुलपते ! खेलया बद्धमूर्तेः।
तूर्णं त्वत्पादपद्मप्रधृतपरशुना तुण्डखण्डी—कृताङ्ग—
स्तद्द्वेषी यातु याम्यं पुरमतिकलुषं कालपाशाग्रबद्धः ॥४॥

भीमश्रीशालुवेश ! प्रणतभयहर प्राणजिद् दुर्मदानां,
याचेऽहं चास्य वर्गप्रशमनमिह ते स्वेच्छया बद्धमूर्तेः।

त्वामेवाशु त्वदङ्घ्र्यष्टकनखविलसद्ग्रीवजिह्वोदरस्य,
प्राणा यान्तु प्रयाणं प्रकटितहृदयस्यायुरल्पायतेश ॥५॥
श्रीशूलं ते कराग्रस्थितमुसलगदावृत्तवात्याभिघाताद्,
यातायातारियूथं त्रिदशरविघनोद्धूतरक्तच्छटार्द्रम् ।
सद्दृष्ट्वाऽऽयोधने ज्यामखिलसुरगणाश्चाशु नन्दन्तु नाना—
भूता वेतालपूगः पिबतु तदखिलं प्रीतचित्तः प्रमत्तः ॥६॥
अल्पं दोर्दण्डबाहुप्रकटितविनमच्चण्डकोदण्डमुक्तै—
र्बाणैर्दिव्यैरनेकैः शिथिलितवपुषः क्षीणकोलाहलस्य ।
तस्यप्राणावसानं परशरभ विभोऽहं त्वदिज्या-प्रभावै—
स्तूर्णं पश्यामि यो मां परिहसति सदा त्वादिमध्यान्तहेतो ॥७॥
इति निशि प्रयतस्तु निरासनो मममुखः शिवभावमनुस्मरन् ।
प्रतिदिनं दशवारदिनत्रयं जपति निग्रह-दारुणसप्तकम् ॥८॥
इति गुह्यं महाबीजं परमं रिपुनाशनम् ।
भानुवारं समारभ्य मङ्गलान्तं जपेत् सुधीः ॥९॥
[इत्याकाशभैरव-कल्पे प्रत्यक्ष सिद्धिप्रदे नरसिंहकृता शरभस्तुतिः ॥]

प्रार्थना

पायाद् श्रीशरभेश्वरः

रुद्रः पिङ्गल-कुन्तलस्त्रिनयनोऽत्युग्रः सपक्षो हरिः,
सर्पालङ्करणस्तथाऽष्टचरणस्तुर्यः शुकः सालुवः ।
क्षोभं श्रीनरसिंहजं शमयितुं नीतावतारो हरः,
पायाद् श्रीशरभेश्वरो विहगराट् सर्वार्थदः शङ्कर ॥
काली दुर्गा पक्षयोर्यस्य संस्थे, स्वान्ते साक्षात् सुन्दरीराजमाना ।
क्षोभं यातः श्रीनृसिंहो यतस्तं, देवं भीमं सालुवाख्यं नमामः ॥

—रुद्रस्य

श्रीशरभ-सालुव-पक्षिराज के इन मन्त्रों के अतिरिक्त अन्य अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं। जिनमें पूजामन्त्र पूजा के लिए हैं, जबकि अन्य मन्त्र तान्त्रिक प्रयोगों को दृष्टि से बनाकर उपयोग में लाये जाते हैं और उनसे सभी कार्यों की सिद्धि प्राप्त होती है। विस्तार अधिक हो जाने

के कारण हमने यहां संक्षिप्त सूचन ही किया है। विशेष के लिए 'प्रपञ्चसारसारसङ्ग्रह' तथा 'आकाशभैरवकल्प' देखें।

७. भगवान् शिव की तान्त्रिक उपासना

आगम और तन्त्रों में भगवान् शिव की उपासना के अनेक प्रकार वर्णित हैं। वैदिक काल से ही आदिदेव के रूप में शिव, रुद्र, शंकर, शम्भु आदि नामों से सर्वदेव-नमस्कृत शिव पूज्य हैं।

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारु-चन्द्रावतंसं,
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशु-मृग-वराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं,
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

इस ध्यान पद्य के अनुसार हिमगिरि के समान, चक्रधर, रत्न जैसी उज्ज्वल देह, चारों हाथों में परशु, मृग, वर और अभय मुद्रा को धारण किए हुए, प्रसन्न, पद्म पर विराजमान, देवगणों से स्तुत व्याघ्र-चर्म पहने हुए सर्वादि, सर्ववन्द्य, समस्त श्रमहारी, पंचमुख एवं त्रिनेत्र रूप शिव प्रसिद्ध हैं। किन्तु एक मुख और एकादशमुख श्री शिव को भी माना गया है।

शिवोपासना के लिए पंचाक्षर अथवा षडक्षर-मन्त्र '**ॐ नमः शिवाय**' की सर्वोपरि महत्ता है। यह पंचमहाफल-प्रद है।

हेतवे जगतामेव संसारार्णव-सेतवे।
प्रभवे सर्वविद्यानां शम्भवे गुरवे नमः ॥

इसके अनुसार शिव समस्त विद्याओं के अधिपति हैं और सब के गुरु हैं। आगमों की सृष्टि ही शिव और पार्वती के द्वारा संवाद के रूप में हुई है।

रुद्रयामल में '**पार्थिव-पूजा**' को सभी विद्याओं की साधना का अधिकार-प्राप्त करने का आधार' माना है। अतः यहां हम उसका पूजा-विधान प्रस्तुत कर रहे हैं—

'पार्थिव-पूजा' विधान

संकल्प—'अद्येत्यादि' (पूरा संकल्प बोलकर) मम (अमुक)

देवता पूजनाधिकारसिद्ध्यर्थं पार्थिवलिंगपूजनमहं करिष्ये। ऐसा संकल्प करके मृत्तिका के स्थान पर भूमि की प्रार्थना करे—

ॐ सर्वाधारधरे देवि त्वद्रूपां मृत्तिकामिमाम्।
ग्रहीष्यामि प्रसन्ना त्वं लिङ्गार्थं भव सुप्रभे॥

इस पद्य से प्रार्थना करके 'ॐ हराय नमः' बोलते हुए पवित्र स्थान से स्वच्छ मिट्टी ग्रहण करे। फिर 'ॐ महेश्वराय नमः' इस मन्त्र से उसे सांध ले। 'ॐ शूलपाणये नमः' बोलकर अपने सामने पीठ पर शिवलिंग बनाकर रखे। उसके बाद 'ॐ' मन्त्र से तीन प्राणायाम करे और पूजन के लिए विनियोग करे।

विनियोग—अस्य श्रीसाम्बसदाशिव पूजन मन्त्रस्य वामदेव ऋषिः पंक्तिश्छन्दः श्रीशिवो देवता ॐ बीजं नमः शक्तिः शिवाय कीलकं मम श्रीसाम्बसदाशिव प्रीत्यर्थं पूजने विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—वामदेव ऋषये नमः (शिरसि), पंक्तिश्छन्दसे नमः (मुखे), श्रीशिवदेवतायै नमः (हृदये), ॐ बीजाय नमः (गुह्ये), नमः शक्तये नमः (पादयोः), शिवाय कीलकाय नमः (नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

कर-हृदयादिन्यास—

ॐ ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ नं तर्जनीभ्यां स्वाहा।
ॐ मं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ शिं अनामिकाभ्यां हुम्।
ॐ वां कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ॐ यं करतल करपृष्ठाभ्यां फट्।

इसी प्रकार 'ॐ नं मं शिं वां यं' अक्षरों से हृदयादि न्यास करे।

ध्यान—

शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमुकुटं पंचवक्त्रंत्रिनेत्रं,
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षभागे वहन्तम्।
नागं पाशं च घण्टां प्रलयहुतवहं साङ्कुशं वामभागे,
मानालंकारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि॥

इस से ध्यान करके मानस उपचारों से पूजन कर पात्रस्थापना करे।[1] तत्पश्चात् चैतन्यमूर्तिकल्पना पुष्पांजलि द्वारा कर के 'ॐ पिनाक-

१, यहां तान्त्रिक-पद्धति के अनुसार पात्रासादन और उनमें कलापूजन करने का भी नियम है।

पाणे साम्ब इहागच्छागच्छ, इह तिष्ठ तिष्ठ संनिधत्स्व ममेष्टं साधय पूजां गृहाण हूं पिनाकपाणये नमः' इसके द्वारा आवाहन तथा प्राण-प्रतिष्ठा करे और इस स्तोत्र का पाठ करे—

ॐ सर्वज्ञ ज्ञान-विज्ञान-प्रदानैक-महात्मने।
नमस्ते देवदेवेश सर्वभूत-हिते रत ॥१॥
अनन्तकीर्ति-सम्पन्न अनेकासन-संस्थित।
अनेककान्ति-संयोग परमेश नमोऽस्तु ते ॥२॥
परात्पर मदातीत उत्पत्ति-स्थिति-कारक।
सर्वार्थसाधनोपाय विश्वेश्वर नमोऽस्तु ते ॥३॥
स्वभाव-निर्मलाभोग सर्वव्याधि-विनाशन।
योगि-योगि-महायोगि-योगीश्वर नमोऽस्तु ते ॥४॥

यह स्तोत्र पढ़कर शिवजी को प्रणाम करे तथा 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्र से प्रतिष्ठापित लिंग की स्नानादि-पूजा करे। तदनन्तर पीठ पर अपने सामने से अष्टमूर्ति शिव की गन्धाक्षत द्वारा नीचे बताये मन्त्रों को बोलते हुए पूजा करे—

१. ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः। २. ॐ भवाय जलमूर्तये नमः। ३. ॐ रुद्रायाग्निमूर्तये नमः। ४. ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः। ५. ॐ भीमायाकाशमूर्तये नमः। ६. ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः। ७. ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः। ॐ ईशानाय सूर्याय नमः और प्रणालिका में 'श्री उमायै नमः' से पार्वती की पूजा करे। इसके अनन्तर 'सांगाय सपरिवाराय श्रीशिवाय नमः' कहकर तीन बार शिवलिंग पर गन्धाक्षत चढ़ाये तथा 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र से धूप, दीप, नैवेद्य कर आरती और पुष्पांजलि करे। प्राणायाम और ऋष्यादि-षडंग-न्यास-पूर्वक जप करे तथा क्षमा प्रार्थना करे—

अंगहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं महेश्वर।
पूजितोऽसि महादेव तत्क्षमस्व ममाकृतम् ॥

अयं दानकालस्त्वहं दानपात्रं, भवान् नाथ दाता त्वदन्यं न याचे।
भवद्भक्तिमन्तःस्थिरां देहि मह्यं, कृपाशील शम्भो कृतार्थोऽस्मि तस्मात् ॥

तथा अन्य स्तोत्रादि का पाठ कर पार्थिवेश्वर का उद्वासन करे।[1]

जिस प्रकार तन्त्रशास्त्रों में अन्यान्य देवताओं की उपासना के प्रकारों का विधिवत् विधान बतलाया है, उसी प्रकार भगवान् शिव के भी अनेक प्रकार दिखलाकर उन्हें प्रसन्न करने के विधान भी बतलाये हैं। रुद्रयामल में वर्णित 'अघोर-शिव, त्वरितरुद्र, महाकाल, शिव, सदाशिव, महामृत्युंजय आदि के प्रयोग विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से हम **सर्वोपयोगी महामृत्युंजय** की उपासना हेतु मन्त्रादि का निर्देश कर रहे हैं।

१. महामृत्युञ्जय-साधना के मुख्य संकेत

मानव की सबसे बड़ी चिन्ता शरीर की स्वस्थता, मानसिक प्रसन्नता, दीर्घजीवन और मृत्यु से रक्षा की होती है। जीवन में उत्साह तथा उल्लास का संचार इन्हीं पर निर्भर है। यदि ये सब नहीं तो सभी प्रकार की उधेड़-बुन किसलिए? किसके लिए? इस चिन्ता का निवारण करने का सरलतम उपाय है—महामृत्युंजय भगवान् महादेव की भक्ति। यही वह साधना है कि जिसे साधकर मनुष्य आगे बढ़ता है, आशाओं के दीप जलाता है और उनके उज्ज्वल प्रकाश में अपने विचारों, प्रयासों एवं आकांक्षाओं को मूर्तिमान् बनाकर सफल होता है।

रुद्रयामल (उत्तरतंत्र) के ४७वें पटल में चक्रभेदन के प्रसंग में भगवती आनन्दभैरवी ने मणिपूर-भेदन का वर्णन करते हुए कहा है कि—अष्टैश्वर्य साधक, जीवन्मुक्तिदाता एवं सर्वज्ञता प्रदान करने वाले मणिपूर-भेदक मन्त्र का मैं कथन करती हूं। साधक मणिपूर में रुद्राणी सहित रुद्र का ध्यान एवं पूजन करके 'ॐ नमस्ते रुद्ररूपिण्यै' इस रुद्राणी मन्त्र का तथा 'ॐ नमस्ते रुद्राय' इस महारुद्र मन्त्र का जप करे। षट्चक्रसाधन में ही अन्य मन्त्रों का कथन करते हुए कहा गया है कि—भगवान् महारुद्र के अनंत मन्त्र हैं। उनमें मृत्युंजय मन्त्र द्वारा मणिपूर में स्थित रुद्राणी और रुद्र को चैतन्य करना चाहिए।

---

१. विशेष जानकारी के लिए—'पार्थिव-पूजा, पार्थिवलिंग पूजाविधि और पार्थिवेश्वर-पूजाविधि' द्रष्टव्य हैं।

उसके लिए प्रसाद मन्त्र 'ॐ हौं स्वाहा', 'ॐ हौं जूं स्वाहा' अथवा मृत्युंजय-महामन्त्र का मानस जप करना चाहिए और इसके पश्चात् पूजा विधान, न्यास-विधान तथा अन्य प्रक्रियाओं का विस्तार से निर्देश है। इनमें रुद्राणी का तथा रुद्र का ध्यान इस प्रकार है—

१. रुद्राणीं रुद्रकान्तां नवरसजडितां कुङ्कुमासक्तगात्रां,
लोकेशीं षड्भुजान्तां त्रिभुवनमहितां कोटिसौदामिनीभाम्।
पद्मस्थां पद्महस्तां वरमभयकरां खड्गशक्ति दधानां,
ध्यायेद् रौद्रीं त्रिनेत्रां शरदमलशशिश्रेणिभूषामलाङ्गीम्॥

तथा

२. रौद्रं रुद्रात्मकं तं प्रकृति-पुरुष-गम्भीरगीताभिधानं,
शूलं खड्गं दधानं वरमभयकरं पद्ममेकं प्रचण्डम्।
सञ्चारं रश्मिजालं शशिशतकिरणं कामधेनुस्वरूपं,
ध्यायेद् रौद्रीं स्वशक्तिं प्रलयमयतनुं सूर्यकोटिप्रकाशम्॥

रुद्रयामल में रुद्र के समान ही रुद्रशक्ति का पूजन-स्मरण भी आवश्यक बतलाया है। रुद्रयामल के अनुसार यह बहुत ही रहस्यपूर्ण कथन है कि मणिपूर में इस मन्त्र का जप होना चाहिए, क्योंकि इसी चक्र में अमृत का निवास है और अमृत ही मृत्यु को जीतने का सर्वोत्तम साधन है। इसी दृष्टि से यहां 'मणिपूर भेदनस्तोत्र' भी दिया गया है, जिसका पाठ करने से पूर्णलाभ होता है। यहीं यह भी कहा गया है कि—

मृत्युञ्जयस्य मन्त्रं वै जपते यदि मानवः।
कोटिवर्षशतं स्थित्वा लीनो भवति ब्रह्मणि॥४७/२४०॥

इसी दृष्टि से हम महामृत्युंजय-मन्त्र के विभिन्न स्वरूपों का यहां संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं। विस्तार से जानने के इच्छुक हमारी पुस्तक—**"महामृत्युञ्जय साधना और सिद्धि"** देखें।

महामृत्युञ्जय के नाम से प्राप्त होने वाले विभिन्न मन्त्रों के स्वरूप[1]

१. एकाक्षरी मन्त्र—"हौं"

२. त्र्यक्षरी मृत्युञ्जय मन्त्र "ॐ जूं सः"

३. चतुरक्षरी अमृतमृत्युञ्जय मन्त्र

इस मन्त्र में "ॐ वं जूं सः" ये चार अक्षर हैं। इसका जप करने से शरीर में बढ़े हुए ताप (गर्मी) की शीघ्र शान्ति होती है।

४. नवाक्षरी मृत्युञ्जय मन्त्र

इस मन्त्र में "ॐ जूं सः "पालय-पालय" ये नौ अक्षर हैं।

५. दशाक्षरी—(अमृतमृत्युञ्जय विद्या)

क्रमांक २ के मन्त्र में "मां पालय पालय" जोड़ने पर यह **दस अक्षरों वाला मन्त्र** बनता है। साथ ही यदि किसी अन्य रोगी की रक्षा के लिए जप करना हो, तो **"मां"** के स्थान पर **"रोगी का नाम"** द्वितीया विभक्ति का एक वचन बनाकर जोड़ देना चाहिए।

६. पंचदशाक्षरी

जब ऊपर बतलाए हुए दस अक्षरों वाले मन्त्र के अन्त में "सः जूँ ॐ" ये तीन विलोम **बीज लगाये जाएंगे तो यह पन्द्रह** अक्षरों वाला मन्त्र बनेगा।

७. वैदिक-त्र्यम्बक मृत्युञ्जय मन्त्र—(३२ अक्षर)

वेद में त्र्यम्बक-मृत्युंजय-मन्त्र के रूप में ३२ अक्षरों का मन्त्र इस रूप में प्राप्त होता है—

---

१. यहां वर्णित सभी मन्त्रों की साधना प्रायः समान होती है। कहीं-कहीं विनियोग, न्यास और ध्यान की विधियों में विशेषता रहती है। यह इसलिए होती है कि भिन्न-भिन्न ऋषियों ने अपने-अपने इष्ट-देवों की कृपा से इन मन्त्रों को देखा है अथवा प्राप्त किया है।
सबका अपना-अपना महत्व है। विशेष स्थिति में इनका विशेष प्रकार से अनुष्ठान किया जाता है। इनमें से हम कुछ मन्त्रों के प्रयोग ही यहां प्रस्तुत करेंगे। विशेष जानकारी के लिए इस विषय के मर्मज्ञ विद्वानों से सम्पर्क करें।

त्र्यम्बकं यजामहे, सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।
ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्युत्योर्मुक्षोय माऽमृतात् ॥

यह मूलमन्त्र सुप्रसिद्ध है ।

८. ३३ अक्षरी मन्त्र

उपर्युक्त मन्त्र में पहले ॐ लगाने से बनता है ।

"शान्तिरत्न" नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि—

त्र्यम्बकस्य विधानं तु कीर्तयिष्ये मुनीश्वराः ।
यथोक्तविधिना युक्तं संस्मृतं ब्रह्मणा पुरा ॥ इत्यादि ।

इस मन्त्र का उद्धार पद्य इस प्रकार है—

मृत्युंजयस्त्रिधा प्रोक्त आद्यो मृत्युंजयः स्मृतः ।
मृतसंजीवनी चैव महामृत्युंजयस्तथा ॥
मृत्युंजयः केवलः स्यात् पुटितो व्याहृतित्रयैः ।
तारं त्रिबीजं व्याहृत्य पुटितो मृतजीवनी ॥
तारं त्रिबीजं व्याहृत्य पुटितैस्तैस्त्रियम्बकः ।
महामृत्युंजयः प्रोक्तः सर्वमन्त्रविशारदैः ॥

अर्थात् हे मुनीश्वरो ! ब्रह्माजी ने पूर्वकाल में शास्त्रोक्त-विधान के अनुसार जो त्र्यम्बक-मन्त्र का विधान कहा है, उसे मैं कहता हूं । मृत्युंजय-मन्त्र तीन प्रकार का होता है जिसमें पहला "मृत्युंजय" है, दूसरा "मृतसंजीवनी" है तथा तीसरा "महामृत्युंजय" है ।

इनमें प्रथम मन्त्र व्याहृतित्रय—"भूर्भुवः स्वः" से सम्पुटित होता है । इसे "केवल मृत्युंजय" भी कहते हैं । दूसरे मन्त्र में—ॐ, त्रिबीज—"ह्रौं जूं सः" और व्याहृतित्रय का सम्पुट होता है । इसे "मृतसंजीवनी" कहते हैं और उपर्युक्त मन्त्र में जोड़े गये त्रिबीज और व्याहृतित्रय के प्रत्येक अक्षर के पहले ॐ लगाया जाता है । यह सभी मन्त्रविशारदों ने कहा है । यही तीसरा मन्त्र "शुक्राचार्य द्वारा आराधित" माना जाता है । इन मन्त्रों के स्वरूप इस प्रकार हैं—

९. केवल मृत्युञ्जय-मन्त्र (४८ अक्षरात्मक)

ॐ, भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे, (इत्यादि पूरो ऋचा) **ॐ स्वः ॐ भुवः ॐ भूः ॐ ॥**

१०. मृतसंजीवनी मन्त्र (५२ अक्षरात्मक)

ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यंबकं यजामहे (इत्यादि पूरी ऋचा) ॐ स्वः ॐ भुवः भूः ॐ सः जूं हौं ॐ ॥

११. महामृत्युञ्जय मन्त्र (शुक्राराधित ६२ अक्षरात्मक)

ॐ हौं ॐ जूं ॐ सः ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे (इत्यादि पूरी ऋचा) ॐ स्वः ॐ भुवः ॐ भूः ॐ सः ॐ जूँ ॐ हौं ॐ ॥
इस मन्त्र के बारे में कहा गया है कि—

आदौ प्रसादबीजं तदनु मृतिहरं तारकं व्याहृतीश्च,
प्रोच्चार्य त्र्यम्बकं यो जपति मृतिहरं भूय एवेतदाद्यम्।
कृत्वा न्यासं षडंगं स्रवदमृतकरं मण्डलान्तः प्रविष्टं,
ध्यात्वा योगीशरुद्रं स जयति मरणं शुक्रविद्याप्रसादात् ॥

अर्थात्—उपर्युक्त ६२ अक्षरों वाले इस मृत्युंजय-मन्त्र का षडंगन्यास एवं योगीश्वर शिव का ध्यान करके जो जप करता है, वह शुक्रविद्या की कृपा से मृत्यु को जीत लेता है। अतएव इस मन्त्र को "शुक्रविद्या" भी कहते हैं।

१२. शुक्रोपासिता मृतसंजीवनी विद्या

यह प्रसिद्ध है कि महर्षि शुक्राचार्य को अमृत-सिद्धि थी। इसी कारण वे असुरों के गुरु के रूप में सम्मान्य थे। जब देवासुरों का संग्राम होता और देवताओं के शस्त्रास्त्र से असुर घायल होते अथवा मर जाते तो उन्हें वे अपनी अमृत-सिद्धि से ही स्वस्थ एवं पुनरुज्जीवित कर देते थे। तन्त्रों में यह विद्या 'मृत्युंजय-मन्त्र और गायत्री-मन्त्र' के योग से बनी हुई बतलाई गई है। यथा—

वेदादि-भूरादिपदत्रयं च, मध्ये कृतं मृत्युहरं त्रियम्बकम्।
जपेत् फलार्थी विधिवत् प्रजप्य, प्रासाद-मृत्युंजयसम्पुटेन ॥

इसके अनुसार १. गायत्री का प्रथम पाद, २. त्र्यम्बकं का प्रथम पाद, ३. गायत्री का द्वितीय पाद, ४. त्र्यम्बकं का द्वितीय पाद, ५. गायत्री का तृतीय पाद, ६. त्र्यम्बकं के शेष पाद दोनों और आदि अंत में ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः को लोम विलोम से युक्त करके यह मन्त्र बनाया जाता है। इसका स्वरूप इस प्रकार है—

ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं, त्र्यम्बकं यजामहे, भर्गो देवस्य धीमहि, सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्, धियो यो नः प्रचोदयात्, उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः जूं हौं ॐ ॥

१३. शुक्रोपासिता मृतसंजीवनी का अन्य रूप

अन्य कल्पों में यही मन्त्र इस प्रकार भी बतलाया गया है—

ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे तत्सवितुर्वरेण्यं सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् भर्गो देवस्य धीमहि उर्वारुकमिव बन्धनाद् धियो यो नः प्रचोदयात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् स्वः भुवः भूः ॐ सः जूं हौं ॐ ॥

१४. बगला के भैरवरूप में मृत्युंजय मन्त्र तथा आम्नाय-भेदजन्य मन्त्र

आम्नाय-भेद से दक्षिणाम्नाय का मन्त्र वामदेवसंहिता के अनुसार—"ॐ जूं सः" इस बीज से युक्त वैदिक मन्त्र, ऊर्ध्वाम्नाय का मन्त्र केवल त्र्यम्बक मन्त्र और "मेरुतन्त्र" के अनुसार एवं उभयाम्नाय का मन्त्र आदि में "ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः" से युक्त और अन्त में ये ही बीज विपरीत रहने पर तथा मध्य में त्र्यम्बक मन्त्र रहने से बनता है। यह "मन्त्रमहोदधि" में लिखा है। ऐसे ही अन्य आम्नायों में भी सामान्य परिवर्तन होगा। ध्यान पद्यों में "चन्द्रार्काग्नि", दक्षिणाम्नाय का "हस्ताभ्यां कलशः" इत्यादि तथा ऊर्ध्वाम्नाय का "हस्ताम्भोज" इत्यादि पद्य उभयाम्नाय का ध्यान माना गया है।

१५. वेदोक्त दोनों त्र्यम्बक मन्त्र

शुक्लयजुर्वेदसंहिता में दो त्र्यम्बक मन्त्रों का एक मन्त्र दिया है। कुछ आचार्यों का मत है कि उन दोनों मन्त्रों का एक साथ जप होना चाहिए, क्योंकि एक मन्त्र **पुष्टिकारक है** और दूसरा **रक्षाकारक**। यह पूरा मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥

इसके आरम्भ और अन्त में बीजमन्त्र भी लगाए जा सकते हैं।

१६. अन्य मन्त्रों के साथ मृत्युञ्जय मन्त्र

तन्त्रों में एक मन्त्र को अन्य अपेक्षित मन्त्रों के साथ मिलाकर जप करने के भी निर्देश दिए गए हैं। अतः मृत्युंजयमन्त्र को "शतावरी-गायत्री" में स्थान मिला है। यथा—

१. ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
२. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥
३. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

इस मन्त्र के आदि में "ॐ भूर्भुवः स्वः" तथा अन्त में "स्वः भुवःभूः ॐ" लगाकर जप करने से इस लोक और परलोक दोनों में सुख-शान्ति प्राप्त होती है। ऐसा "प्रपंचसारसंग्रह" में कहा गया है।

१७-२१. शतावरी के अन्य पांच प्रकार—

१. "गायत्री, त्र्यम्बक और जातवेद" इन तीन मन्त्रों का क्रम से जप करने से पापशान्ति होती है। २. "त्र्यम्बक, जातवेद और गायत्री" इस क्रम से अथवा ३. "त्र्यम्बक, गायत्री और जातवेद" इस क्रम से जप करने पर आयुष्यवृद्धि होती है तथा ४. "जातवेद, त्र्यम्बक और गायत्री" के क्रम से अथवा ५. "जातवेद, गायत्री और त्र्यम्बक" इस क्रम से जप करने पर शत्रुनाश होता है।

२२. अनुष्टुप्त्रय-आयुष्कर मृत्युञ्जय मन्त्र

"वैरिंचकल्प" में तीन अनुष्टुप् मन्त्रों का एक प्रयोग दिया गया है, जिसमें "ब्रह्मा, नृसिंहविष्णु और त्र्यम्बकरुद्र" तीनों के वैदिक मन्त्र हैं। यथा—

ॐ हंसात्मको यो अपामग्नेस्तेजसा दीप्यमानः।
स नो मृत्योस्त्रायतां नमो ब्रह्मणे विश्वनाभिः ॥
ॐ उग्रं वीरं महाविष्णु ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिन पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

२३. बृहद् महामृत्युञ्जय माला मन्त्र

विभिन्न मन्त्र और बीजमन्त्रों के योग से बना यह मन्त्र इस प्रकार प्राप्त होता है—

"ॐ भूः ॐ भुवः ॐ सुवः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं ॐ घृणिः सूर्य आदित्य ॐ तत्सत् ॐ हंसात्मको यो अपामग्नेस्तेजसा दीप्यमानः नो मृत्योस्त्रायतां नमो ब्रह्मणे विश्वनाभिः हाहि हाहि हाहि हावु हावु हावु ॐ हरीं हंसः सोहं स्वाहा ॐ भुवः भर्गो देवस्य धीमहि ॐ नमो नारायणाय ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखं नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहं भ्राजा भ्राजा भ्राजा वव्रे ववायवों आधातोरण्याय वर्यो सहस्रज्वालिनी मृत्युनाशिनी स्वाहा ॐ सुवः धियो यो नः प्रचोदयात् मामद्य ॐ हरीं ॐ नमः शिवाय त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ववावं वववं ववं वेवं वेवें ववं व स जझ्रदों झ हरीं अरे वंवं मेवरयु धावया दं जं ॐ जूं सः स्वौं हंसः मां पालय पालय ह्लादय ह्लादय मृत्योर्मोचय मोचय सोहं स्वौं ई हंसः जूं ॐ ई स्वौं हंसः मां पालय पालय ह्लादय ह्लादय मृत्योर्मोचय मोचय सोहं स्वौं ई सः जूं ॐ परो रजसे सावदों आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।"

२४. पौराणिक मृत्युञ्य मन्त्र

ॐ मृत्युञ्जय महारुद्र ! त्राहि मां शरणागतम्।
जन्ममृत्युजराव्याधिपीडितं कर्मबन्धनैः॥

२५. विलोमाक्षर-मृत्युञ्जय मन्त्र

तान्त्रिक-विधानों में मन्त्रजप के लिए तथा उनमें विशेष चैतन्य लाने की दृष्टि से कई नए-नए विधान बताये गये हैं। इसी दृष्टि से विलोमाक्षरों से भी यह "त्र्यम्बक मन्त्र" जपने की प्रक्रिया तन्त्र ग्रन्थों में प्राप्त है। यथा—

ॐ त ता मृ मा य क्षी मु र्त्यो मृ न् ना न्ध ब व मि क रु र्वा उ।
म् न र्ध व ष्टि पु न्धिं ग सु हे म जा य कं म्ब त्र्य॥

इस के आस पास भी ॐकार, व्याहृति आदि बीजों को लोम-विलोम रूप से लगाया जा सकता है।

इसी प्रकार और भी शास्त्रों में बहुत से प्रकार दिए गए हैं; किन्तु विस्तार भय से यहां संकेत मात्र किया है।

२७. सहस्राक्षर-मृत्युञ्जय-मालामन्त्र[1]

ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्त्वात्मकाय सर्वमन्त्र-स्वरूपाय सर्वयन्त्राधिष्ठिताय सर्वतन्त्रस्वरूपाय सर्वतत्त्वविदूराय ब्रह्मरुद्रावतारिणे नीलकण्ठाय पार्वतीप्रियाय सोमसूर्याग्निलोचनाय भस्मोद्धूलितविग्रहाय महामणिमुकुटधारणाय माणिक्यभूषणाय सृष्टि-स्थितिप्रलयकालरौद्रावताराय दक्षाध्वरध्वंसकाय महाकालभेदकाय मूलाधारैकनिलयाय तत्त्वातीताय गंगाधराय सर्वदेवाधिदेवाय षडाश्रयाय वेदान्तसाराय त्रिवर्गसाधनायानेककोटिब्रह्माण्डनायकायानन्त-वासुकितक्षककर्कोटकशंखकुलिकपद्‌ममहापद्‌मेत्यष्टनागकुलभूषणाय प्रणवस्वरूपाय चिदाकाशायाकाशादिस्वरूपाय ग्रहनक्षत्रमालिने सकलाय कलंकरहिताय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकसंहर्त्रे सकललो-कैकभर्त्रे सकललोकैकसाक्षिणे सकलनिगमेड्याय सकलवेदान्तपारगाय सकललोकैकवरप्रदाय सकललोकैकशंकराय शशांकशेखराय शाश्वत-निजावासाय निराभासाय निरामयाय निर्मलाय निर्लोभाय निर्मोहाय निर्मदाय निश्चिन्ताय निरहंकाराय निराकुलाय निष्कलंकाय निर्गुणाय निष्कामाय निरूपप्लवाय निरवद्याय निरन्तराय निष्कारणाय निरातंकाय निष्प्रपञ्चाय निस्संगाय निर्द्वन्द्वाय निराधाराय नीरोगाय निष्क्रोधाय निर्गमाय निष्पापाय निर्भयाय निर्विकल्पाय निर्भेदाय निष्क्रियाय निस्तुलाय निस्संशयाय निरंजनाय निरूपमविभवाय नित्य-शुद्धबुद्धपरिपूर्णसच्चिदानन्दादृश्याय परमशान्तस्वरूपाय तेजोरूपाय तेजोमयाय जय जय महारौद्रभद्रावतारमहाभैरव कालभैरव कल्पान्त-भैरव कपालमालाधर खट्वांग-खड्ग-पाशांगकुशडमरू-त्रिशूल-चाप-बाण-गदा-शक्ति-भिन्दिपाल-तोमर-मुसल-मुद्‌गर-पट्टिश-परशु-परिघ-भुशुण्डी-शतघ्नी-चक्राद्यायुध-भीषणकरसहस्रमुखदंष्ट्राकरालविकटाट्ट-हासविस्फारित-ब्रह्माण्डमण्डलनागेन्द्रकुण्डलनागेन्द्रहारनागेन्द्रवलय

१. 'शिव-कवच' में भी आया है।

नागेन्द्रचर्मधर मृत्युंजय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विरूपाक्ष विश्वेश्वरविश्वरूप वृषवाहन विश्वतोमुख सर्वतो मां रक्ष रक्ष ज्वल ज्वल महामृत्युभयमपमृत्युभयं नाशय नाशय रोगभयमुत्सादयोत्सादय विषसर्पभयं शमय शमय चौरान् मारय मारय मम शत्रूनुच्चाटयोच्चाटय त्रिशूलेन विदारय विदारय कुठारेण भिन्धि भिन्धि खड्गेन छिन्धि छिन्धि खट्वाङ्गेन विपोथय मुसलेन निष्पेषय निष्पेषय बाणैः सन्ताडय रक्षांसि भीषय भीषय भूतानि विद्रावय विद्रावय कूष्माड-वेताल-मारीच-ब्रह्मराक्षस-गणान् सन्त्रासय सन्त्रासय मामभयं कुरु कुरु वित्रस्तं मामाश्वासय नरकभयाद् मामुद्धरोद्धर सञ्जीवय सञ्जीवय क्षुत्तृड्भ्यां मामाप्याय-याप्यायय दुःखातुरं मामानन्दयानन्दय शिवकवचेन मामाच्छा-दयाच्छादय मृत्युञ्जय त्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते नमस्ते स्वाहा।

४. तान्त्रिक-शिव-सञ्जीवनी-प्रयोग

अनुष्ठान की पद्धति के अनुसार स्नान, पूजा से निवृत्त होकर आसन पर बैठें। आसन शुद्धि करें। शिखा बन्धन करें। आत्म शुद्धि करें, आचमन करें। फिर रुद्रसूक्त पढ़ें, संकल्प ग्रहण करें। भूमि, वाराह, शेष, कूर्म का पंचोपचार से पूजन करें। क्रमानुसार फिर कलश की संक्षिप्त पूजा करके जल को अभिमन्त्रित कर आत्मप्रोक्षण पूजा सामग्री का प्रोक्षण करें। पंचगव्य प्राशन कर लें। उचित समझें तो सर्वप्रथम दशविध स्नान भी करें। दीपक का पूजन करें। दिग्रक्षा का विधान करें तथा गणपति के पूजन, अभिषेक, आरती व पुष्पांजलि से निवृत्त होकर षोडशमातृका पूजन, नवग्रह पूजन, कलश पूजन, ब्राह्मण-वरण (११ ब्राह्मणों की आवश्यकता होगी) पुण्याहवाचन तथा प्रधान-देवता शिव का षोडशोपचार से पूजन करें। ब्राह्मणों को यथा-योग्य वरण-साहित्य प्रदान करें। ध्यान से लेकर पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, पंचामृत-स्नान, शुद्धस्नान, वस्त्र, उपवस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, अक्षत, पुष्प, दूर्वा, शमीपत्र, बिल्वपत्र, अबीर, गुलाल, परिमल द्रव्य, धूप, दीपक, नैवेद्य, ऋतुफल, आचमन, अखण्ड ऋतुफल, पान, सुपारी, लवंग, इलायची, कर्पूर (नागवल्ली-वीटिका) व द्रव्यदक्षिणा समर्पण करें।

तदनन्तर मूर्ति (लिंग) के आकार की विशालता या लघुता का ध्यान रखकर साफ चावलों को शुद्ध जल से धोकर शुद्ध जल में पकावें।

पक जाने पर उन्हें शीतल कर लें। घी, मधु व थोड़ी-सी शर्करा उनमें मिलावें। फिर उसे आटे की तरह एक जीव, एकरस व एकरूप कर दें। मूर्ति (लिंग) पर से पूजा सामग्री को उतार कर शान्ति व विश्वासपूर्वक सन्नद्ध होकर "नमस्ते रुद्रमन्यव···" आदि १६ मन्त्रों के 'रुद्रसूक्त' द्वारा चावलों का आवरण शिव मूर्ति पर चढ़ा देवें, ऊपर से घृत का सामान्य लेप लगा दें, ताकि असमय व अभिषेक के बीच में कवच-भंग न हो। ११ पण्डित प्रथम नीराजन व पुष्पांजलि से निवृत्त होकर पहले गणेश-मन्त्र के अंगन्यास, करन्यास व १०८ बार जप करें। फिर अघोर मन्त्र के अंगन्यासादि करें तथा नियमानुसार रुद्रपाठ के अंगन्यास व करन्यास कर महामृत्युंजय मन्त्र सम्पुटित सरल रुद्रपाठ प्रारम्भ करें।

शान्ति-कवच पर बिल्व-पत्र चढ़ा देवें ताकि जलधारा बिल्व-पत्र का स्पर्श करती रहे। अभिषेक-पात्र का पूजन-कलश की तरह कर लेना चाहिए। ऊपर श्वेत वस्त्र बांध दें। वस्त्रपूत जल ही पूजा के कार्य में ग्राह्य माना गया है। पात्र में दूध, गन्ने का रस, नारियल का जल, कुश, तीर्थजल, शर्करा व मधु मिला देना चाहिए। सांगोपांग पाठ पूर्ण हो जाने पर शान्ति-कवच को निकाल दें तथा पुनः विधिवत् उत्तर पूजा करें। आरती करें। एवं अवशिष्ट भोजन, दक्षिणा आदि का कार्य सम्पादित करें। निर्माल्य व शान्ति-कवच को पवित्र जल में प्रवाहित कर दें। अन्य पशु मुंह नहीं लगावें और पैरों में नहीं आ सकें, ऐसा प्रबन्ध करें या फिर गौ माता को खिला देवें।

'मन्त्र सम्पुट' का स्वरूप इस प्रकार होगा—

"ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे। सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम्। ऊर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः जूं हौं ॐ गणानान्त्वा गणपतिग्वं हवामहे, प्रियाणान्त्वा प्रियपति ग्वं हवामहे, निधीनान्त्वा निधिपति ग्वं, हवामहे वसोमम। आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्। ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे। सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। ॐ स्वः भुवः जूंः ॐ सः जूं हौं ॐ।'[1]

निर्देश—दो बार सम्पुट का उच्चारण करना चाहिए ताकि

१. इसी प्रकार 'रुद्राष्टाध्यायी' अथवा 'नमस्ते' आदि पञ्चमाध्याय का पाठ करना चाहिए। 'शतरुद्रियम्' का पाठ भी महत्त्वपूर्ण माना गया है।

रुद्र मन्त्र के दोनों ओर सम्पुट लग सके। सम्पुट रहित पाठ असफल होता है। कवच व मृत्युंजय सम्पुट ही इस प्रयोग के प्राण हैं। महामृत्युंजय मन्त्र के अंगन्यास, करन्यास आदि विधिपूर्वक पहले कर लेने चाहिएं। बाद में सम्पुटित पाठ प्रारम्भ करें। यह स्मरण रखें।

५. महामृत्युंजय मन्त्र और अन्य देवता

सर्वसामान्य जनों की मान्यता है कि महामृत्युंजय-मन्त्र केवल शिवजी का ही होता है, किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। अन्य सभी प्रमुख देवी-देवताओं के भी ऐसे मन्त्र और स्तोत्र हैं, जिनका मृत्यु-निवारण, रोग एवं संकट निवारण के लिए प्रयोग करने का विधान है। इस दृष्टि से दुर्गासप्तशती के १. शूलेन पाहि नो देवि! २. प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च०, ३. सौम्यानि यानि रूपाणि० और ४. खड्गशूलगदादीनि० ये चार मन्त्र भी महामृत्युंजय-मन्त्र कहे गए हैं। इसी प्रकार विष्णु, नृसिंह, धर्मराज, धन्वन्तरि आदि के भी मन्त्र प्राप्त होते हैं। एक निर्देश यह भी आगमों में प्राप्त होता है कि त्र्यम्बक-मन्त्र के पदों में अपने उपास्य देवता के मन्त्र को सन्दर्भित करने से वह उस देवता का मन्त्र बन जाता है।

शक्ति-उपासना और रुद्रयामल

१. शक्ति का अपूर्व माहात्म्य

यह कथन सर्वांश में सत्य है कि—'महेश्वर केवल पराशक्ति द्वारा ही प्रकाशित होते हैं।' शक्ति के बिना 'शिव' 'शव' मात्र ही रह जाते हैं। पराशक्ति ही महेश्वर की दिव्य ज्योति है। समाधिनिष्ठ महर्षि भी इस शक्ति के प्रकाश के बिना न महेश्वर-शिव को देख सकते हैं और न पा सकते हैं।' अतः शक्ति-उपासना का महत्त्व अत्यधिक है। यही नहीं, शक्ति ऐश्वर्य तथा पराक्रमस्वरूप है तथा इन दोनों को प्रदा न करने वाली भी है। 'देवी भागवत' में कहा गया है कि—

ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता॥९/२/१०॥

शक्ति मानव के दैनन्दिन व्यावहारिक जीवन में आपदाओं का निवारण कर ज्ञान, बल, क्रियाशक्ति आदि प्रदान कर उसकी धर्म-अर्थ-

काममूलक-इच्छाओं को पूर्ण करती है तथा अन्त में अलौकिक परमानन्द का अधिकारी बनाकर उसे मोक्ष प्राप्त कराती है।

भगवती शक्ति एक होकर भी लोककल्याण के लिए अनेक रूपों को धारण करती है। 'श्वेताश्वतर उपनिषद्' के अनुसार यही आद्या शक्ति 'त्रिशक्ति' के रूप में प्रकट होती है—

'अजामेकां लोहित-शुक्ल-कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानाः सरूपाः।'

(४/५)

और यही ज्ञान, बल एवं क्रियारूपा अपनी शक्ति से आविर्भूत होकर महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती—रूप को धारण करती है। परब्रह्म तथा त्रिदेवों का शक्ति के साथ सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए—'आनन्द-लहरी' में कहा गया है कि—

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिण-गृहिणीमागमविदो,
हरेः पत्नीं पद्मां हर - सहचरीमद्रितनयाम्
तुरीया काऽपि त्वं दुरधिगम-निःसीम महिमा,
महामाये विश्वं भ्रमयसि परब्रह्म-महिषि॥

इस प्रकार पराशक्ति त्रिशक्ति, नवदुर्गा, दश महाविद्या और अन्य ऐसे ही अनन्त नामों से परम-पूज्य है। 'रुद्रयामल' में महाशक्ति के ऐसे ही विशिष्ट स्वरूपों को ध्यान में रखकर उनके पंचांग दिए हैं। कतिपय विशिष्ट साधना-प्रकारों को उद्घाटित किया है तथा तान्त्रिक-साधना के सर्वस्वभूत प्रयोगों का दिग्दर्शन कराया है।

इतना होते हुए भी साधक के लिए स्वयं देवी ने यह स्पष्ट कहा है कि—मैं सदा एक हूं, मेरी एकता में कोई भेद नहीं है, मुझ में और देव-रूप में भी कोई अन्तर नहीं समझना चाहिए। जो वह है वही मैं हूं, जो मैं हूं वही वह है। 'वह-यह' ऐसा जो भेद दिखाई देता है, वह बुद्धि के विभ्रम से उत्पन्न है—

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।
योऽसौ साहमहं याऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्॥

(देवीभागवत, ३/६/२)

अतः मति-विभ्रम से दूर रहकर सात्त्विक भावना से भगवती की उपासना के 'रुद्रयामल' तन्त्र में अनेक विधान व्यक्त किए गए हैं। यहां

'अन्नपूर्णा, इन्द्राक्षी, उग्रतारा, काली, गायत्री, चण्डी, छिन्नमस्ता, ज्वाला, तारा, त्रिपुरा, त्रिपुर सुन्दरी, दुर्गा, देवी, धूमावती, नित्या, नीलसरस्वती, पंचमी, प्रत्यंगिरा, बाला (भैरवी और त्रिपुरसुन्दरी), भवानी, भुवनेश्वरी, महाषोडशी, योगिनी, राज्ञी, राधा, शक्ति, शारदा, शारिका, षष्ठी, सुमुखी' आदि के पूजा-विधान, साधना-पद्धतियां, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, चक्र, स्तोत्र, सहस्रनाम जैसी बहुत-सी सामग्री निर्दिष्ट है जिसका यहां संक्षिप्त संकेत किया गया है, उसका विस्तृत प्रयोग-विधान अन्यान्य तन्त्रग्रन्थों में परिस्फुट किया गया है। इन देवियों के बारे में इस लघु-ग्रन्थ में कितना क्या लिखा जाए ? यह निर्णय करना नितान्त कठिन है, तथापि पाठकों को ज्ञात-अज्ञात कुछ विधानों का यत्किंचित् उपयोगी ज्ञान हो सके, इस दृष्टि से संक्षिप्त प्रयोग प्रस्तुत कर रहे हैं।

ममतामयी माता के अनन्त रूप हैं। वही माता संसार में सर्वाधिक पूज्य है। 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' के 'गणेश-खण्ड' में कहा गया है कि—सृष्टि के समय एक बड़ी शक्ति पांच नामों से प्रकट हुई। वे पांच नाम हैं—१. राधा, २. पद्मा, ३. सावित्री, ४. दुर्गा और ५. सरस्वती। इस प्रकार ये पांचों पंच तत्त्वमयी शक्तियां हैं। तीन गुणों—सत्व, रजस् और तमस्—को सृष्टि के कारण वह त्रिगुणात्मिका कहलाती है और—१. महाकाली, २. महालक्ष्मी और ३. महासरस्वती के रूप में उसकी उपासना होती है तथा दस रूपों में आविर्भूत होने के कारण वह 'दशमहाविद्या' कहलाती है। अतः यहां हम दस महाविद्याओं के आधार पर कुछ विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।

२. रुद्रयामल तन्त्र और दशमहाविद्या-रहस्य
(एक तत्त्व के दस रूप)

रुद्रयामल-तन्त्र में दस महाविद्याओं का रहस्य प्रकाशित करने की दृष्टि से अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत हुआ है। वैसे दसों महाविद्याओं का तत्त्वात्मक स्वरूप एक ही है; किन्तु पूर्वाचार्यों ने परमतत्त्व का साक्षात्कार किसी एक रूप से ही न करके विभिन्न रूपों से किया है जिनमें आध्यात्मिक दृष्टि वाले साधकों ने आध्यात्मिक दृष्टि से और भौतिकवादियों ने भौतिक पदार्थों से जिस

तत्त्व को जाना है, सन्देहवादियों ने सन्देह में तथा अज्ञानवादियों ने ज्ञेय में जिसकी परिसमाप्ति की है, जो जैनों का अर्हत्, बौद्धों का शून्य, मीमांसकों का कर्म, वेदान्तियों का ब्रह्म, वैष्णवों का विष्णु एवं शैवों का शिव है, योगी जिसका दर्शन समाधि में करते हैं, उपनिषद् जिसके लिए 'नेति-नेति' कहते हैं, वेद—'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' कहकर जिसका निर्वचन करते हैं उसी परमतत्त्व का साक्षात्कार शाक्तमत में शक्ति के दस प्रकार के शक्ति-रूपों में करते हैं। परमत्त्व के वे दस प्रकार ही 'दश महाविद्या' के नाम से प्रसिद्ध हैं। जिनमें क्रमशः '१. काली, २. तारा, ३. षोडशी, ४. भुवनेश्वरी, ५. त्रिपुर भैरवी, ६. छिन्नमस्ता, ७. धूमावती, ८. बगलामुखी, ९. मातंगी और १०. कमला' के नामों की गणना है। **'चामुण्डातन्त्र'** एवं **'मुण्डमाला-तन्त्र'** में इनका उल्लेख इस प्रकार आया है—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा॥
बगला सिद्धविद्या च मातंगी कमलात्मिका।
एषा दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः:।

यद्यपि यह संख्या यहीं तक सीमित न रहकर आगे भी बढ़ी है और कहीं १२[1], कहीं १८[2] और इससे भी आगे बढ़ी है तथापि 'दस-विद्या' की प्रसिद्धि ही प्रमुख है। महिषमर्दिनी, त्वरिता, दुर्गा, प्रत्यंगिरा, स्वप्नावती और मधुमती देवियों के नाम और कुछ अन्य नामों के संयोजन से यह संख्या २४ तक भी पहुंची है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु के प्रमुख दस अवतार और उनके बाद २४ अवतारों की जिस प्रकार प्रसिद्धि हुई उसी प्रकार महाविद्याओं के अवतारों की भी प्रसिद्धि हुई है।

इन महाविद्याओं की उपासना 'काली-कुल' और 'श्रीकुल' इन दो कुलों में विभक्त है। 'काली-कुल' में १. काली, २. तारा, ३. छिन्नमस्ता, ४. भुवनेश्वरी, ५. महिषमर्दिनी, ६. त्रिपुरा (षोडशी), ७. त्वरिता, ८. दुर्गा तथा ९. प्रत्यंगिरा का समावेश है। जबकि

१. 'मालिनीविजयवार्तिक' में १२ वर्णित हैं।
२. तन्त्रसार में १८ कही गई हैं।

'श्रीकुल' में १. सुन्दरी, २. भैरवी, ३. बाला, ४. बगला, ५. कमला, ६. धूमावती, ७. मातंगी, ८. स्वप्नावती और ९. मधुमती को समाविष्ट किया गया है। इन दोनों कुलों में ९-९ अर्थात् कुल मिलाकर १८ देवियों की गणना है।

कुछ आचार्यों ने दस महाविद्याओं को ही तीन रूपों में व्यक्त किया है। जिनमें १. सौम्य, २. उग्र और ३. सौम्योग्र ऐसी तीन कोटियां बतलाई हैं। 'सौम्य' कोटि में १. त्रिपुरसुन्दरी, २. भुवनेश्वरी, ३. मातंगी और ४. कमला (महालक्ष्मी) आती हैं। उग्रकोटि में— १. काली, २. छिन्नमस्ता, ३. धूमावती और ४. बगलामुखी मानी जाती हैं तथा सौम्योग्र-कोटि की १. तारा और २. भैरवी महाविद्याएं हैं। इस प्रकार के प्रभेदों का आधार इनके तन्त्रों में वर्णित ध्यान-पद्य ही हैं।

वैसे यह कहना असंगत नहीं है कि 'इनमें प्रत्येक देवी के अनन्त रूप हैं जो तन्त्रशास्त्रों में दर्शित सृष्ट्यादिक्रम' आम्नायक्रम, काल-क्रम कल्पक्रम आदि विभिन्न क्रमों के कारण अनेकरूपता को प्राप्त हैं। इनमें भी काली, तारा और षोडशी (त्रिपुरसुन्दरी) के भेद तो सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं।

२. दश महाविद्याओं का दार्शनिक तात्पर्य

आद्याशक्ति भगवती परमेश्वरी 'विश्वातिरिक्त' और 'विश्व-व्यापिनी-विश्वरूपिणी' शक्ति के रूप में वर्णित है। जो एक, अद्वितीय होते हुए भी बहुविधमूर्ति है। दस महाविद्याओं में एक अखण्ड विश्व-शक्ति ही दशविध होकर प्रकाशमान है और इन्हीं शक्तियों से पराशक्ति समस्त जगत् का नियन्त्रण और परिचालन करती है। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में कहा गया है कि—

'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च।' (६/८)

अर्थात् "ब्रह्म की पराशक्ति विविध रूपा है और वह शक्ति ब्रह्म की स्वभावसिद्ध ज्ञानक्रिया और बलक्रिया है।" 'महानिर्वाण-तन्त्र' में इस पराशक्ति को सम्बोधित करते हुए कहा है कि—

त्वमाद्या सर्वविद्यानामस्माकमपि जन्मभूः।
त्वं जानासि जगत् सर्वं न त्वां जानाति कश्चन्॥

त्वं काली तारिणी दुर्गा षोडशी भुवनेश्वरी।
धूमावती त्वं बगला, भैरवी छिन्नमस्तका॥
त्वमन्नपूर्णा वाग्देवी त्वं देवी कमलालया।
सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं सर्वदेवमयी तनुः॥
(४, १२ से १४)

वहीं भगवती के अरूपा होने पर भी रूप धारण के कारण '१. उपासकों के कार्य, २. जगत् के कल्याण तथा ३. दानवों के विनाश' बतलाए हैं।

तन्त्र शास्त्रों ने इसीलिए बार-बार यह निर्देश किया है कि— 'साधक चाहे जिस महाविद्या की उपासना करता हो, किन्तु वह उनमें परस्पर भेद-बुद्धि न रखे। लीलाभेद के कारण विभिन्न स्वरूप धारण करने पर भी स्वरूपतः एकत्वबुद्धि रखने और अभेद ज्ञान पर स्थिर प्राण-प्रतिष्ठा-पूर्वक आराधना करना ही समुचित है।' इत्यादि।

यह अभेद बुद्धि दर्शन का सामान्य तत्त्व है। शाक्तदर्शन भी इस तत्त्व का प्रतिपादन करता है। काली, तारा आदि नाम भी दार्शनिक तत्त्वों के पोषक हैं तथा प्रत्येक नाम से वर्णित उपनिषद्-ग्रन्थ भी इन्हें परमतत्त्व की अधिष्ठात्री के रूप में इनका वर्णन करते हैं।

३. दस महाविद्याओं का प्रादुर्भाव

दस महाविद्याओं का सम्बन्ध सती, शिवा और पार्वती से बहुधा वर्णित है। महाभागवत में—दक्ष प्रजापति के द्वारा अपने यज्ञ में शिव को आमन्त्रित नहीं करना और पितृगृह में होने वाले उत्सव में दक्ष की पुत्री भगवती सती का जाने के लिए आग्रह तथा उसी के सन्दर्भ में सती को वहां जाने से रोकने के कारण क्रुद्ध होकर उग्ररूप धारण करने से भयभीत शिव के पलायन को दसों दिशाओं द्वारा रोकना वर्णित है। सती के वे स्वरूप ही दश-महाविद्याएं हैं। इनका परिचय भी वहीं (८/६५-७१) में स्वयं भगवती ने स्वमुख से कह दिया है।

इन महाविद्याओं के प्रादुर्भाव की कतिपय अन्यान्य कथाएं भी हैं, जो कि १. कालिकापुराण, २. दुर्गासप्तशती, ३. नारदपांचरात्र, ४. मार्कण्डेय पुराण आदि में पृथक्-पृथक् रूप में व्यक्त हुई हैं। महाविद्याओं का स्वरूप वस्तुतः एक ही आद्याशक्ति के विभिन्न

स्वरूपों का विस्तार है। दस महाविद्याओं का अंकगणित वेद-शास्त्र के दस के अंक की प्रधानता की ओर ही संकेत करना है। यजुर्वेद में—**"तेभ्यो दश प्राचीर्दशदक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वा"** मन्त्र इसका सूचन करते हैं। अंक कुल ९ हैं और दसवां उसकी पूर्णता का सूचक ० (शून्य) है, जो पूर्ण से-पूर्ण और पुनः पूर्ण होने का आध्यात्मिक सन्देश देता है।

मानव-स्वभाव तथा कर्म, कामना, स्वरूप, वैभव आदि के आधार पर ही एक ही वस्तु अनेक रूपों में ग्राह्य बनती है। यहां भी साधकों की रुचि-विचित्रता से विविधता आई है, यह स्पष्ट है और हमारी विविधता में जो एकरूपता निहित है वही यहां भी नित्य स्थिर है, इसी दृष्टि से उपासना करनी चाहिए।

१. भगवती काली और उसके उपासनातत्व

'महाभागवत' में वर्णित दस महाविद्याओं में महाकाली को ही मूलरूपा बतलाकर प्राथमिकता दी गई है। दार्शनिक दृष्टि से कालतत्त्व की प्रधानता होने से श्री काली को सभी विद्याओं में आदि कहा है। इसी के सौम्य और उग्र ऐसे दो रूप हैं जो प्रधानतः दस रूपों में व्याप्त होकर महाविद्या कहलाने लगे। महानिर्गुण की अधिष्ठात्री होने से इनकी उपमा अन्धकार से दी जाती है। महासगुण होकर ये 'सुन्दरी' कहलाती हैं। 'बृहन्नीलतन्त्र' में कहा गया है कि—

विद्या हि द्विविधा प्रोक्ता कृष्णा-रक्ता-प्रभेदतः।
कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता॥

भगवती काली के प्रादुर्भाव की कथा 'कालिकापुराण, मार्कण्डेय पुराण तथा नारदपञ्चरात्र में वर्णित है। ब्रह्मशक्तिमयी माता कालिका—"कालसंग्रसनात् काली, सर्वेषामादिरूपिणी" इस वचन के अनुसार **'आद्या'** है तथा 'नाहं तृप्ता' कहती हुई यह महाभैरवी विस्तीर्णमुख, अखिलविश्व को ग्रास बनाने के लिये भयंकर लपलपाती जीभवाली, दीप्तदशना, नृमुण्डमालाधारिणी, अट्टहास करती हुई मुण्ड, करवाल, अभय और वरद-मुद्राओं को धारण किये हुए भक्तों

का कल्याण करने के लिए तत्पर है। रुद्रयामल में भगवती कालिका की उपासना के अनेक मन्त्र, यन्त्र, कवच, हृदय, सहस्रनामादि स्तोत्रों का संग्रह है और स्फुटरूप से इनमें बहुत कुछ पद्धति-ग्रन्थों में छपे भी हैं। अतः हम अधिक विस्तार न करते हुए यहां **१. मन्त्र जप विधि,** **२. कवच** और **३. आवश्यक ज्ञातव्य** के रूप में संक्षिप्त लेखन कर रहे हैं।

(क) मंत्र-जप-विधि

१. विनियोगः—ॐ अस्य श्रीआद्याकाली मन्त्रस्य ब्रह्म-ब्रह्मर्षय ऋषयो गायत्र्यादीनिच्छन्दांसि श्रीआद्याकालीदेवता क्रीं बीजं ह्रीं शक्तिः श्रीं कीलकं मम श्रीआद्याकाली-कृपाप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

२. ऋष्यादिन्यासः—ब्रह्म-ब्रह्मर्षिभ्य ऋषिभ्यो नमः (शिरसि), गायत्र्यादिच्छन्दोभ्यो नमः(मुखे), श्रीआद्याकालोदेवतायै नमः (हृदये), क्रीं बीजाय नमः (गुह्ये), ह्रीं शक्तये नमः (पादयोः), श्रीं कीलकाय नमः (नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

३-४. कर-षडङ्ग-न्यासाः—"ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः"।

इन छः मन्त्रबीजों में से एक-एक बीज का उच्चारण कर उनसे पहले करन्यास और दूसरी बार अंगन्यास करना चाहिए।

५. ध्यान—मेघाङ्गीं शशिशेखरां त्रिनयनां रक्ताम्बरं बिभ्रतीं,
पाणिभ्यामभयं वरंच विलसद् रक्तारविन्दस्थिताम्।
नृत्यन्तं पुरतो निपीय मधुरं माध्वीकमध्यं महाकालं
वीक्ष्यविकासितानन वरामाद्यां भजे कालिकाम्॥

६. मंत्र—'ह्रीं श्रीं क्रीं' (त्र्यक्षरी) अथवा—'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा।

यही भगवती मध्याह्न में श्यामाकाली और सायाह्न में सिद्धि-काली के रूप में अन्य मंत्रों द्वारा उपास्या है। दक्षिणाकालिका भी सृष्टि, स्थिति और संहार क्रम से उपासित होती है। पांच त्रिकोण, त्रिवृत्त, अष्टदल, वृत्त एवं भूपुर (एक रेखात्मक) की रचना से काली-यन्त्र का निर्माण होता है। आगमों में—"क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं स्वाहा।" यह बाईस अक्षरों का 'विद्याराज्ञी' मन्त्र प्रसिद्ध है। अन्य मंत्रों में पांच, छः सात, आठ से

आरम्भ कर इक्कीस अक्षरों तक के मंत्र वर्णित हैं। वे सब क्रमशः गुरुगम्य हैं। उत्तरतन्त्र रुद्रयामल में इसका एक माला-मन्त्र भी दिया गया है।

मन्त्र-जप के पूर्वांग और उत्तरांगों का विधिवत् ज्ञान प्राप्त करके साधना करने से माता की अनन्य कृपा प्राप्त होती है।

(ख) कवच-पाठ

मंत्र-साधना में बतलाये गये पांच अंगों में 'कवच' का महत्त्व है जिसका परिचय-विभाग में निर्देश हुआ है। यहां भगवती आद्याकाली का एक महत्त्वपूर्ण कवच-पाठ हम दे रहे हैं। इसके पाठ एवं लिखित-रूप के धारण से स्वरक्षा और शत्रुनाश की सिद्धि होती है।

श्रीकाली-कवचम्

श्री गणेशाय नमः ॥

कैलाशशिखरासीनं शङ्करं वरदं शिवम् ।
देवी पप्रच्छ सर्वज्ञं देवदेवं महेश्वरम् ॥१॥

देव्युवाच ॥

भगवन् देवदेवेश देवानां मोक्षद प्रभो ।
प्रब्रूहि मे महाभाग गोप्यं यद्यपि च प्रभो ॥२॥
शत्रूणां येन नाशः स्यादात्मनो रक्षणं भवेत् ।
परमैश्वर्य्यमतुलं लभेद् येन हि तं वद ॥३॥

भैरव उवाच ॥

वक्ष्यामि ते महादेवि सर्वधर्म्मंहिताय च ।
अद्भुतं कवचं देव्यास्सर्वरक्षाकरं नृणाम् ॥४॥
सर्वारिष्ट-प्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
सुखदं भोगदं चैव वश्याकर्षणमद्भुतम् ॥५॥
शत्रूणां संक्षयकरं सर्वव्याधिनिवारणम् ।
दुःखिनो ज्वरिणश्चैव स्वाभीष्टप्रहतास्तथा ॥६॥
भोगमोक्षप्रदं चैव कालिकाकवचं पठेत् ।

इस प्रकार देवी की प्रार्थना पर भगवान् भैरवनाथ ने शत्रुनाश, आत्मरक्षा एवं ऐश्वर्य-प्राप्ति करने वाले 'काली-कवच' का कथन किया है। इस कवच के पाठ से उपर्युक्त फलों के अतिरिक्त भी अनेक लाभ होते हैं, अतः भक्तिपूर्वक इसका पाठ करना चाहिए। पाठ से पूर्व विनियोग और न्यास-ध्यान आवश्यक हैं। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

विनियोग—अस्य श्रीकालीकवचस्य श्रीभैरवऋषिर्गायत्रीच्छंदः श्रीमालिका देवता ममाभीष्टसिद्धये पाठे विनियोगः। क्रां, क्रीं, क्रूं, क्रैं, क्रौं, क्रः' इन छह बीजों से कर और हृदयादि न्यास करें और उसके पश्चात् ध्यान करें।

ध्यायेत् कालीं महामायां त्रिनेत्रां बहुरूपिणीम्।
चतुर्भुजां ललज्जिह्वां पूर्णचन्द्र निभाननाम् ॥७॥
नीलोत्पलदलप्रख्यां शत्रुसंघविदारिणीम् ॥८॥
नरमुण्डं तथा खड्गं कमलं च वरं तथा।
बिभ्राणां रक्तवसनां दंष्ट्रया घोररूपिणीम् ॥९॥
अट्टाट्टहास-निरतां सर्वदा च दिगम्बराम्।
शवासनस्थितां देवीं मुण्डमाला-विभूषिताम् ॥१०॥

मूल कवच-पाठः

इति ध्वात्वामहादेवीं पुनस्तु कवचं पठेत्।
ॐ कालिका घोररूपाढ्या सर्वकामप्रदा शुभा ॥११॥
सर्वदेव-स्तुतां देवी शत्रुनाशं करोतु मे।
ह्रीं ह्रीं स्वरूपिणीं चैव ह्रीं ह्रीं ह्रूं रूपिणीं तथा ॥१२॥
ह्रीं ह्रीं क्षें क्षें स्वरूपा सा सदा शत्रून्विदारयेत्।
श्रीं ह्रीं ऐं रूपिणी देवी भवबन्धविमोचिनी ॥१३॥
हसकल ह्रीं ह्रीं रिपून् सा हरतु देवी सर्वदा।
यथा शुम्भो हतो दैत्यो निशुम्भश्च महासुरः ॥१४॥
वैरिनाशाय वन्दे तां कालिकां शंकरप्रियाम्।
ब्राह्मी शैवी वैष्णवी च वाराही नारसिंहिका ॥ १५॥

कौमार्यैन्द्री च चामुण्डा खादयन्तु मम द्विषः।
सुरेश्वरी घोररूपा चण्ड-मुण्ड-विनाशिनी ॥१६॥

मुण्डमालावृतांगी च सर्वतः पातु माम् सदा। ह्रीं ह्रीं कालिके घोरंदष्ट्रे रुधिरप्रिये रुधिरपूर्ण-वक्त्रे रुधिरावृत्तस्तनि मम शत्रून् खादय खादय हिंसय हिंसय मारय मारय भिन्दि भिन्दि छिन्धि छन्धि उच्चाटय उच्चाटय द्रावय द्रावय शोषय शोषय स्वाहा स्वाहा। ह्रीं ह्रीं कालिकायै मदीय शत्रून् समर्पयामि स्वाहा। ॐ ज़य जय किरि किरि किटि किटि कुट कुट कट्ट कट्ट मर्दय मर्दय मोहय मोहय हर हर मम रिपून् ध्वंसय ध्वंसय भक्षय भक्षय त्रोटय त्रोटय यातुधानि चामुण्डे सर्वं जनान्राज्ञो राजपुरुषान् योषा रिपून् मम वश्यान् कुरु कुरु तनु तनु धान्यं धनमश्वान् गजान् रत्नानि दिव्यकामिनीः पुत्र-पौत्रान् राजश्रियं देहि देहि भक्ष भक्ष क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्वाहा।

फलश्रुति

इत्येतत्कवचं दिव्यं कथितं शुम्भना पुरा ॥१७॥
ये पठन्ति सदा तेषां ध्रुवं नश्यन्ति शत्रवः।
प्रलयः सर्व-व्याधीनां भवतीह न संशय ॥१८॥
धनहीनाः पुत्रहीनाः शत्रवस्तस्य सर्वदा।
सहस्त्र -पाठनात्सिद्धिः कवचस्य भवेत्तथा ॥१९॥
ततः कार्याणि सिद्धयन्ति यथा शङ्करभाषितम्।
श्मशानाङ्गारमादाय चूर्णीकृत्य प्रयत्नतः ॥२०॥
पादोदकेन स्पृष्ट्वा च लिखेल्लौह-शलाकया।
भूमौ शत्रून् हीनरूपान् उत्तराशिरसस्तथा ॥२१॥
हस्तं दत्त्वा तद्हृदये कवचं तु स्वयं पठेत्।
शत्रोः प्राणप्रतिष्ठान्तु कुर्यान्मंत्रेण मंत्रवित् ॥२२॥
हन्यादस्त्र-प्रहारेण शत्रुर्गच्छेद् यमालयम्।
ज्वलदंगार-तापेन भवन्ति ज्वरिणोऽरयः ॥२३॥
प्रोक्षणैर्वामपादेन दरिद्रो भवति ध्रुवम्।
वैरिनाशकरं प्रोक्तं कवचं वश्यकारकम् ॥२४॥

परमैश्वर्यदं चैव पुत्रपौत्रादिवृद्धिदम् ।
प्रभात-समये चैव पूजाकाले प्रयत्नतः ॥२५॥
सायंकाले तथा पाठात् सर्वसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
शत्रुरुच्चाटनं याति देशाच्च विच्युतो भवेत् ॥२६॥
पश्चात्किकरमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ।
शत्रुनाशकरं देवि सर्व-सम्पत्प्रदे शुभे ॥२७॥
सर्वदेवस्तुते देवि कालिके त्वां नमाम्यहम् ।

भगवती कालिका आद्यादेवी है। आद्या की उपासना का विस्तार तन्त्रों में बहुत अधिक है तथा स्वतन्त्र-ग्रन्थ भी अनेक प्राप्त होते हैं। रुद्रयामल में 'पंचांग' और कुछ अन्य नाम-भेद से भी साधना-साहित्य प्रस्तुत हुआ है। साधकगणों की सुविधा के लिए 'दक्षिणाचार' तथा 'वामाचार'—दोनों ही प्रकारों के इसमें विधान दिए हैं; किन्तु बिना गुरु-परम्परा से दीक्षा प्राप्त किए कालिका की उपासना में प्रवृत्त होना उचित नहीं है, यह सदा स्मरणीय है।

२. भगवती तारा की उपासना

वाक्शक्ति, शत्रुनाश एवं भोग-मोक्ष की सिद्धि के लिए भगवती तारा की उपासना होती है। यह क्रम की दृष्टि से द्वितीया होते हुए भी अद्वितीया है और एकजटा, उग्रतारा, नीलसरस्वती, तारिणी, क्रोध-रात्रिरूपा आदि अनेक नामों से आगमों में इसके मन्त्र-प्रयोग प्राप्त होते हैं। भारत में सर्वप्रथम महर्षि वशिष्ठ ने वैदिक और चीनाचार क्रम से तारा की उपासना की थी। 'तारामोंकारसारां सकलजन-हितानन्दसन्दोहदक्षाम्' इत्यादि वचनों के आधार पर यह सूर्यमण्डल-मध्यस्थिता तारा शब्द ब्रह्मस्वरूपा ओंकारनादमयी है। आगमिक आराधना के लिए तारा का मंत्र-जप-विधान इस प्रकार है—

(क) एकजटा-मंत्र जपविधि—

१. **विनियोग**—अस्य श्रीएकजटामन्त्रस्य वशिष्ठ ऋषिर्गायत्री-च्छन्दः श्रीएकजटा देवता हूं बीजं ह्रीं शक्तिः स्त्रीं कीलकं मम श्रीएक-जटा प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

२. **ऋष्यादिन्यास**—वशिष्ठऋषये नमः (शिरसि), गायत्रीच्छंदसे नमः (मुखे), श्रीएकजटादेवतायै नमः (हृदये), हूं बीजाय नमः (गुह्ये), ह्रीं शक्तये नमः (पादयोः), स्त्रीं कीलकाय नमः (नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

३-४. **कर-हृदयादिन्यासः**—ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः।
(इन छः बीजों से पूर्ववत् न्यास करें।)

५. **ध्यान**—

श्वेताम्बरां शारदचन्द्रकान्तिं सद्भूषणां चन्द्रकलावतंसाम्।
कर्त्री कपालांचितपाणिपद्मां, तारां त्रिनेत्रां प्रभजेऽखिलर्द्धयै ॥

६. **मंत्र**—'स्त्रीं हूं ह्रीं हूं फट्।' (पंचाक्षरी)

सृष्टि महोग्रतारा, स्थितिमहोग्रतारा और संहारमहोग्रतारा आदि नामान्तर होने से ध्यान मंत्र के स्वरूपों में अन्तर आ जाएगा। उग्रतारा की उपासना का सर्वत्र विस्तार से विधान प्राप्त होता है। उसका ध्यान इस प्रकार है—

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासा परा,
खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परभुजा हुङ्कारबीजोद्भवा।
खर्वा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता,
जाड्यं न्यस्य कपालकं त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम् ॥

त्रिकोण, अष्टदल-पद्म एवं द्विरेखमय भूपुर के द्वारा तारा-यन्त्र बनाने का विधान है। इस यन्त्र के मध्य और चारों दिशाओं के दलों में मन्त्राक्षर क्रमशः 'स्त्रीं' ह्रीं, (पूर्व में), ऐं (दक्षिण में), 'फट्' (उत्तर में) और 'ठम्' (पश्चिम में) लिखे जाते हैं।

रुद्रयामल में तारा-पंचांग, तारास्तोत्र आदि वर्णित हैं, जिनका पद्धतियों के रूप में स्वतन्त्र संकलन बहुधा हुआ है। नीलसरस्वती की प्रार्थना में सुप्रसिद्ध एक अष्टक हम यहां दे रहे हैं जो 'तारा-स्तोत्र' कहलाता है और नित्यपाठ द्वारा विद्या, बुद्धि, वैभव आदि देने में सफल माना जाता है। स्तोत्र इस प्रकार है—

(ख) **श्रीनीलसरस्वती स्तोत्र**

मातर्नीलसरस्वति प्रणमतां सौभाग्य-सम्पत्प्रदे,
प्रत्यालीढपदस्थिते शवहृदि स्मेराननाम्भोरुहे।

फुल्लेन्दीवरलोचने त्रिनयने कर्त्रीं कपालोत्पले,
खड्गञ्चादधती त्वमेव शरणं त्वामीश्वरीमाश्रये ।।१।।
वाचामीश्वरि भक्तकल्पलतिके सर्वार्थसिद्धीश्वरि,
गद्य-प्राकृत-पद्यजातरचनासर्वार्थसिद्धिप्रदे ।
नीलेन्दीवरलोचनत्रययुते कारुण्यवारांनिधे,
सौभाग्यामृतवर्धनेन कृपया सिञ्च त्वमस्मादृशम् ।।२।।
खर्वे गर्वसमूहपूरिततनो सर्पादिवेषोज्ज्वले,
व्याघ्रत्वक्परिवीतसुन्दरकटिव्याधूतघण्टाङ्किते ।
सद्यः कृत्तगलद्रजः परिमिलन्मुण्डद्वयी-मूर्धज-
ग्रन्थिश्रेणि-नृमुण्डदामललिते भीमे भयं नाशय ।।३।।
मायानङ्गविकाररूपललना बिन्द्वर्ध चन्द्राम्बिके,
हुं फट्कारमयि त्वमेव शरणं मन्त्रात्मिके मादृशः ।
मूर्तिस्ते जननि त्रिधामघटिता स्थूलातिसूक्ष्मा परा,
वेदानां नहि गोचरा कथमपि प्राज्ञैर्नुतामाश्रये ।।४।।
त्वत्पादाम्बुजसेवया सुकृतिनो गच्छन्ति सायुज्यतां,
तस्याः श्रीपरमेश्वरत्रिनयनब्रह्मादिसाम्यात्मनः ।
संसाराम्बुधिमज्जनेऽपटतनुर्देवेन्द्रमुख्यान् सुरान्,
मातस्त्वत्पदसेवने हि विमुखान् किं मन्दधीः सेवते ।।५।।
मातस्त्वत्पदपङ्कजद्वयरजो-मुद्राङ्ककोटीरिण—
स्ते देवा जयसङ्गरे विजयिनो निःशङ्कमङ्के गताः ।
देवोऽहं भुवने न मे सम इति स्पर्धां वहन्तः परा—
स्तत्तुल्यान्नियतं यथाशु चिरवी नाशं व्रजन्ति स्वयम् ।।६।।
त्वन्नामस्मरणात् पलायनपरा द्रष्टुञ्च शक्ता न ते,
भूतप्रेतपिशाचराक्षसगणा यक्षाश्च नागाधिपाः ।
दैत्या दानवपुङ्गवाश्च खचरा व्याघ्रादिका जन्तवोः
डाकिन्यः कुपितान्तकश्च मनुजो मातः क्षणं भूतले ।।७।।
लक्ष्मीः सिद्धगणाश्च पादुकमुखाः सिद्धास्तथा वैरिणां,
स्तम्भश्चापि वराङ्गने गजघटास्तम्भस्तथा मोहनम् ।

मातस्त्वत्पदसेवया खलु नृणां सिध्यन्ति ते ते गुणाः,
क्लान्तः कान्तमनोभवस्य भवति क्षुद्रोऽपि वाचस्पतिः ॥८॥
ताराष्टकमिदं पुण्यं भक्तिमान् यः पठेन्नरः।
प्रातर्मध्याह्नकाले च सायाह्ने नियतः शुचिः ॥९॥
लभते कवितां विद्यां सर्वशास्त्रार्थविद् भवेत्।
लक्ष्मीमनश्वरां प्राप्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ॥१०॥
कीर्ति कान्तिञ्च नैरुज्यं प्राप्यान्ते मोक्षमाप्नुयात्।
श्रीतारायाः प्रसादेन सर्वत्र शुभमश्नुते ॥११॥

(ग) अन्य मंत्र भेद आदि ज्ञातव्य

भगवती तारा के भैरव 'अक्षोभ्य' हैं। देवी के मंत्रों का जप करने से पूर्व उसके भैरव-मंत्र का दशांश जप और पुरुषदेवता के मंत्रों का जप करने से पूर्व उसकी भैरवी के मंत्र का दशांश जप करने का विधान है। इस प्रकार के जप से शिव-शक्त्यात्मक उपासना हो जाती है और वह शीघ्र फलदायिनी होती है। महाविद्याओं की साधना में आम्नायों के आधार पर मन्त्रभेद और ध्यानभेद भी होते हैं और तदनुसार ही नाम-भेद भी हो जाते हैं। तारा-विद्या अधराम्नाय को होने पर बौद्धमतावलम्बी उस मार्ग से इसकी उपासना करते हैं, जबकि भारतीय परम्परा में यह दक्षिणाम्नाय से उपास्य है। फेत्कारिणीतन्त्र, मत्स्यसूक्त और मेरुतन्त्र में इस विद्या का विशेष वर्णन हुआ है। तारा का सार्धपंचाक्षरी प्रणवरहित मन्त्र 'एकजटा' का है। यही जप 'प्रणव' और 'फट्' से युक्त होने पर 'नील सरस्वती' का मन्त्र बनता है। उग्रतारा और महोग्रतारा भी इसी के अन्य नाम हैं और महोग्रतारा के सृष्टि, स्थिति, संहार, अनाख्या एवं भासाकाल के अनुसार मंत्रों में बीज आदि की वृद्धि हो जाती है तथा ध्यान बदल जाते हैं। भगवान् श्रीराम ने सात वर्ण की और उसी में पंचमकूट का स्वरूप बदलकर श्री बलराम ने उपासना की थी। सरस्वती और उसके १. चिन्तामणि सरस्वती, २. ज्ञानसरस्वती, ३. नीलसरस्वती, ४. घटसरस्वती, ५. किनि सरस्वती, ६. अन्तरिक्ष सरस्वती और ७. महासरस्वती ये ब्राह्मीसरस्वती के सात भेद बतलाये हैं। शारदा सरस्वती के—१. वाणी सरू, २. वागीश्वरी, ३. वाचा, ४. वाक्प्रदा

(वाग्देवी) और ५. महासरस्वतो ये पांच भेद हैं। तथा १. परिजात-सरस्वती, २. सन्ध्या सरस्वती और ३. अग्निरुद्धसरस्वती ये सभी तारा के भेद हैं। सन्ध्या सरस्वती ब्रह्मगायत्री का रूपान्तर है। अतः यह ऊर्ध्वाम्नाय से तथा अनिरुद्ध सरस्वती दक्षिणकाली रूपा होने से दक्षिणाम्नाय से पूज्य है। इस विषय में अधिक विस्तार वडवानल-तन्त्र में दर्शनीय है। रुद्रयामल में इनके स्तोत्र-मन्त्रादि पृथक्-पृथक् प्राप्त होते हैं।

३. षोडशी 'श्रीविद्या' साधना के सूत्र और रुद्रयामल

(क) श्रीविद्या-उपासना-परिचय

—शाक्तोपासना के प्रतिपादक तन्त्रों में श्रीविद्या की उपासना-पद्धति पर पर्याप्त विस्तार से लिखा गया है। इस विद्या की उपासना में दीक्षा-क्रम के आधार पर अनेक नामों से उपास्य देवियों की दीक्षाएं हैं और उनके मन्त्रों का क्रम भी अति विस्तृत है। साधक अपनी दीक्षा के क्रम से ही क्रमशः आगे बढ़ते हुए परम लक्ष्य की सिद्धि प्राप्त करता है। अन्तर्याग और बहिर्याग के नाम से विख्यात दोनों यागों में अंतर्याग पर अधिक बल दिया गया है; किन्तु आचार्यों का यह भी स्पष्ट निर्देश है कि बिना बाह्ययाग के अन्तर्याग की भूमिका सुदृढ़ नहीं होती है। अतः दोनों ही यागों का दैनिक अभ्यास करना चाहिए तथा उत्तरोत्तर क्रम की साधनाओं से उच्च भूमिका पर पहुंचने की स्थिति में बाह्य आचारों को गौण कर देना चाहिए।

दीक्षा-क्रम की दृष्टि से इसमें 'लघुक्रम, पूर्णक्रम, महाक्रम तथा महाविद्याक्रम' आदि अनेक प्रकारों का वर्णन मिलता है। वस्तुतः इस विद्या के इन क्रमों का आधार परशुरामकल्पसूत्र, श्रीविद्यार्णव और बृहद्वडवानल-तन्त्र है। 'श्रीगुरु, गणपति, बाला, पंचदशी, लघुषोडशी और महाषोडशी' का क्रम सर्वत्र प्रचलित है, जबकि बडवानल-तंत्रानुसारी क्रम—'श्रीगुरु, गणपति, आद्या, तारा आदि के क्रम से आरम्भ करके जो प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालीन मन्त्रों का पुरश्चरणपूर्वक

क्रमशः ग्रहण होता है वह पूर्णक्रम कहलाता है। इस क्रम के मन्त्रों के साथ ही प्रत्येक मन्त्र के भैरव-मन्त्रों का जप भी करना आवश्यक बतलाया गया है। सभी देवियों के ध्यान भी पृथक्-पृथक् हैं।

(ख) दो स्वतन्त्र ग्रन्थ

रुद्रयामल से सम्बद्ध साहित्य में 'देवी-रहस्य' और 'त्रिकूटा-रहस्य' नामक दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से प्राप्त होते हैं। इनमें त्रिकूटा-रहस्य में श्रीविद्या के मन्त्रादि का और अर्चना-विधानों का विस्तार से वर्णन हुआ है, जबकि देवी-रहस्य में अनेक देवियों की उपासना तथा उनसे सम्बद्ध देवों की उपासना-विधि पर भी लिखा गया है।

इसी में 'दशमहाविद्या-रहस्य' के नाम से संकलित विषय भी परिशिष्ट के रूप में अंकित है। यथा—

रुद्रयामलोक्त देवी रहस्य

यह ग्रन्थ ६० पटल में है तथा परिशिष्ट में ज्वालामुखी, शारिका, महाराज्ञी एवं बाला के पंचांगों के साथ उद्धारकोश भी इसमें दिया है। इसमें वक्ता श्रीभैरव हैं और प्रश्नकर्त्ता श्रीदेवी हैं। प्रारम्भ में श्रीभैरव कहते हैं कि—'

अधुना देवि वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्।
यन्न सर्वेषु तन्त्रेषु यामलादिषु भाषितम्॥१॥

अर्थात् हे देवि ! मैं परम अद्भुत रहस्य को कहूंगा, जोकि सभी तन्त्र और यामल आदि में नहीं कहा गया है। प्रथम पटल में दीक्षा, शिष्यसंस्कार तथा दीक्षाप्रकार वर्णित हैं। द्वितीय पटल में देवी, वैष्णव, शैव और शाक्तमंत्रों का निरूपण हुआ है। तृतीय पटल में मृत्युंजय से आरम्भ करके शिव और उनके परिवार-देवताओं के मन्त्र दिए हैं। चतुर्थ पटल में वैष्णव मन्त्र है। तदनन्तर अग्रिम पटलों में उत्कीलन, संजीवन, शापमोचन, जयसाधन, पारायणविधि, सम्पुट-मन्त्र, पुरश्चरणसाधन, यन्त्रोद्धार, यंत्रधारणविधि, मंत्रों में ऋष्यादि-निर्णय, श्मशानसाधना, माला-विधि, पात्र-व्यवस्था, सुराशोधनादि, शक्तिशोधन, मालाशोधन तथा यंत्रशोधन° के विषयों का निरूपण २५वें पटल तक हुआ है। तदनन्तर गणपति, सूर्य, लक्ष्मीनारायण,

मृत्युंजय और दुर्गा के पंचांगों का विधान ५२वें पटल तक प्रस्तुत है। ५३ से ६० तक के पटलों में विद्याएं, उनके शिव, ध्यान, दीक्षा, पुरश्चरण, होम तथा तत्सम्बन्धी आचारों को बतलाया है। परिशिष्ट का सभी विषय रुद्रयामल-तंत्र के दशमहाविद्या रहस्य से संकलित है।

रुद्रयामल-तंत्र के देवीरहस्यात्मक विषयों को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करने वाला यह ग्रंथ पर्याप्त सामग्री से परिपूर्ण है। इसकी जो पाण्डुलिपियां यत्र-तत्र उपलब्ध हैं, उनमें यंत्र भी बने हुए प्राप्त होते हैं तथा कूट-बीज यंत्रों का लेखन भी प्राचीन लेखन-पद्धति से अंकित किया गया है।

'त्रिकूटा-रहस्य' श्री विद्या के पंचदशी मंत्र में आने वाले तीन कूट जिन्हें—१. **वाग्भव**, २. **कामराज**, तथा ३.**शक्तिकूट** के नामों से भी जाना जाता है—से सम्बद्ध है। शाक्तोपासना के रहस्यों को बहुत ही गम्भीरता से इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है। श्रीसुन्दरी के मंत्रों की जो यहां तालिका मिलती है, उसमें इस विद्या के भिन्न-भिन्न उपासकों द्वारा दृष्ट मंत्रों का भी निर्देश है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित मंत्र द्रष्टव्य हैं—

१. ॐ क्लीं ह्लीं श्रीं ऐं क्लीं सौ। क एईल ह्लीं हसकल ह्लीं सकल ह्लीं स्त्रीं ऐं क्रों क्रीं हूं हसकल ह्लीं हसकल ह्लीं हं सः। (सप्तदशी)

२. हसकलह ह्लीं ससकहल ह्लीं सकल ह्लीं हसकल ह्लीं सह सकहल ह्लीं सकल ह्लीं। (षोडशीद्वय)

३. हसकल ह्लीं। हसकलह ह्लीं हः। सकलह ह्लीं। (लोपामुद्रा सप्तदशी) ऐं हः क्लीं हसौः सः सप्तदशी में इन बीजों को जोड़ने से अष्टादशी विद्या बनती है तथा नौ लाख जप के पश्चात् इसका जप किया जाता है।

४. ऐं क ५ ह्लीं ह ६ श्रीं स० ४। (अष्टादशी)

५. ऐं क्लीं सौः क ५ सौः क्लीं ऐं औः ऐं क्लीं सौः ह ६ सौः क्लीं ऐं ओं कलईसार (ब्रह्मविद्या, कादि, उन्मनी) क्लीं हः स ह क ल ह्लीं (वरुणोपासिता)

६. कल ह्लीं हकह ह्लीं सहकल ह्लीं। (धर्मराजोपासिता)

७. क सकल ह्रीं हसकल कल ह्रीं सकल रल ह्रीं। (वह्न्यु-पासिता)

८. हसकल ह्रीं हः सकल ह ह्रीं हसकलर ह्रीं (नागराजो-पासिता)

९. क ए र ल र ह्रीं हकरल ह्रीं सकलर ह्रीं। (वायूपासिता)

१०. कएईरल ह्रीं हकहलर ह्रीं सहकल ह्रीं (बुधोपासिता)

११. कहल ह्रीं हकल हललर ह्रीं सकल ह्रीं (ईशानोपासना)

१२. क ५ ह ६ स ४ (पंचदशी रत्युपासिता)

१३. क ५ ह ६ स ४ स४ ह ६ क ५। (३० अक्षरी नारायणो-पासिता)

१४. कहकहसर ह्रीं हसकल ह्रीं। (ब्रह्मोपासिता)

१५. हक हसर ह्रीं हसकल ह्रीं (जीवोपासिता)

१६. हसकल ह्रीं हसकहल ह्रीं सकएल ह्रीं (लोपामुद्रो-पासिता)

१७. सह कए ईल ह्रीं सहकहएईल ह्रीं। सकएईल ह्रीं कहएईल ह्रीं कएईल ह्रीं सकएईल ह्रीं (मनूपासिता)

१८. हसकएईल ह्रीं हसकहएईल ह्रीं हरक एईल ह्रीं (कुबेरोपासिता)

१९. कएईल ह्रीं हसकहल ह्रीं सहसकल ह्रीं (अगस्त्यो-पासिता)

२०. सएईल ह्रीं सहकहल ह्रीं सकल ह्रीं। (नन्द्युपासिता)

२१. क ए ईल ह्रीं सहकल ह्रीं सहसकल ह्रीं क ए ईल हंस कहल सह सकल ह्रीं। (शिवोपासिता) इत्यादि।

ऐसे ही अन्य अनेकविध मंत्र-स्वरूप 'नाभिविद्या, राजविद्या गुह्यविद्या' के पारायण-मंत्रों में भी प्रयुक्त हैं। अतः इस विद्या का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

(ग) महात्रिपुर-सुन्दरी : श्रीविद्या (संक्षिप्त परिचय)

कामेश्वरी और कामेश्वरी की स्वारसिक समरसता को प्राप्त परतत्त्व ही महात्रिपुर सुन्दरी के रूप में विराजमान है। परब्रह्म-

चित्कला अथवा संवित्कला आदि इसी के नामान्तर हैं। यही सकलाधिष्ठानभूत सर्वानन्दमयी भगवती ललिताम्बिका है। इसमें सभी वेदान्तों का तात्पर्य समाविष्ट हो जाता है और जगत् के व्यापार रूप समस्त कार्य भी इसी में प्रतिष्ठित हैं। यहां न शिव की प्रधानता है और न शक्ति की; अपितु दोनों में समानता है। यह पृथ्वी आदि छत्तीस तत्त्वों के रूप में विद्यमान होते हुए भी सबसे अतीत है और इसीलिए इसे 'तत्त्वातीता' कहते हैं। यह जगत् में व्याप्त भी है तथा जगत् से पृथक भी है, इसोलिए यह 'विश्वोत्तीर्णा' कहलातो है। यही 'परा' कही गई है। यह दृश्यमान प्रपंच इसका उन्मेष मात्र है तथा चर और अचर रूप दोनों प्रकार के जगत् के निर्माण में यह समर्थ है। आगमों में श्रीललिता को 'व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी' कहकर निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों में व्यक्त किया है। ऐसी यह 'परा-शक्ति' नाम-रूप रहित होते हुए भी अपने सेवकों पर अनुकम्पा करके सगुण-रूप को धारण करती है और विविध रूपों में अर्चित तथा ध्यात होकर विश्व का कल्याण करती है। अनन्त कोटि देव-समुदाय से सेवित अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की नायिका यही 'श्रीविद्या' है।

भगवती महात्रिपुर सुन्दरी 'चैतन्यरूपा चिच्छक्ति' कही गई है। तदनुसार चैतन्य ब्रह्म का स्वरूप चित्-शक्ति ही है और वही तेजः-पुंजाकृति शक्ति अनामा श्रीविद्या है। इसी भगवती ने दृश्यमान आब्रह्म-कीट पर्यन्त जगत् का निर्माण करके स्वयं अपनी प्रभा से भासित सुधा-सागर के मध्य में स्थित मणिद्वीप का निर्माण किया और उसी में स्थित चिन्तामणि-मन्दिर में अपने आपको चित्कला के रूप में विराजमान किया। तदनन्तर तत्त्वत्रय के रूप में अपने वैविध्य को व्यक्त किया। ये तीनों तत्त्व—१. आत्मतत्त्व, २. विद्यातत्त्व एवं ३. शिवतत्त्व के रूप में औघत्रय से अभिन्न हैं। इस तत्त्वत्रय के कारण ही शक्ति ने १. शाम्भवी, २. श्यामा और ३. विद्या के रूप में त्रिविधता को प्राप्त किया। इन तीनों शक्तियों के पति परमशिव, सदाशिव और रुद्र हैं। इनमें विद्या ही त्रिपुर सुन्दरी है जो कि चिन्तामणि-मंदिर की स्वामिनी है तथा वही भण्डासुर की संहारिका है।

(घ) **आम्नाय-व्यवस्था**—त्रिपुर सुन्दरी के पूर्व भाग में श्यामा और उत्तरभाग में शाम्भवी स्थित है। इन्हीं दोनों विद्याओं से अनेक

विद्याओं का आविर्भाव हुआ है और वे ही विद्याएं श्रीविद्या की परिवार देवता हैं। यही कारण है कि श्यामा-विद्या से पूर्व-दक्षिण आम्नायोपदिष्ट चिन्तामणिगृह के पूर्व और दक्षिण द्वार की अधिकारिणी विद्याएं उत्पन्न हुईं जिनका उपदेश कामराज ने किया है। इसी प्रकार पश्चिम और उत्तर आम्नाय शाम्भवी से उत्पन्न हुए। इन्हीं से चार आम्नायों का प्रचलन हुआ है। श्यामा और शाम्भवी के बीच में विराजमान महाविद्या की स्थिति ऊर्ध्वाकार में होने से 'ऊर्ध्वाम्नाय' कहा गया है और चिन्तामणि-गृह में स्थित सुन्दरी को 'अनुत्तर-आम्नाय' कहकर छठे 'अनुताराम्नाय' का सूचन किया है। वहीं 'बैन्दव चक्र' की स्थिति है। भक्तों पर अनुग्रह करने की इच्छा से भण्डासुर वध के लिए एक होते हुए भी अनेक रूपों को धारण करना उस महाशक्ति का वैविध्य है।

इसी वैविध्य से विभावित श्रीविद्या-सम्प्रदाय का भी वैविध्य है। उसमें मुख्यतः १. हयग्रीव सम्प्रदाय, २. आनन्द भैरव सम्प्रदाय तथा ३. दक्षिणामूर्ति-सम्प्रदाय के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इनमें मन्त्र, क्रम, आचार, आम्नाय और प्रक्रियाओं में तर-तमता होते हुए भी इसकी व्यष्टि में समष्टि कहीं अवरुद्ध नहीं हुई है, ऐक्य बना हुआ ही है। जैसा कि परा स्तोत्रकार ने कहा है—

पुरोक्तेच्छाशक्तिस्त्रिपुरललिता हादिमतगा,
महोग्रा ज्ञानाख्या जगति विदिता सादिमतगा।
क्रियाशक्तिः काली कलननिरता कादिमतगा,
परे ! एकैव त्वं जयसि मतभेदैस्त्रिपुरयुक् ॥४॥ इत्यादि ॥

श्रीविद्या-साधना का विस्तार

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, उसके अनुसार श्रीविद्या की साधना के प्रकारों का विस्तार अकलनीय है। रुद्रयामल और त्रिकूटा-रहस्य के अतिरिक्त यतस्ततः विकीर्ण साहित्य से इस बात की पुष्टि हो जाती है। यामलीय उपासना-प्रकारों में 'पंचांग' (पटल, कवच, पूजा-पद्धति, सहस्रनाम और स्तोत्र) का अत्यन्त महत्त्व निरूपित है, तदनुसार ही श्रीविद्या के पंचांग का भी विस्तृत साहित्य रुद्रयामल के **'दशमहाविद्यारहस्य'** में दिया गया है। परशुराम-कल्पसूत्र,

श्रीविद्यार्णव, तन्त्रराज, बडवानल-तन्त्र आदि सैकड़ों ग्रंथों में श्रीविद्या साधना का विस्तार वर्णित होने से यह विषय नितान्त गुरुगम्य हो गया है। साहित्य के अध्ययन मात्र से पाठक यह निर्णय करने में समर्थ नहीं होता है कि "क्या क्या करे, कितना कितना करे?" इसीलिए दीक्षा-पूर्वक क्रमिक साधना करते हुए आगे बढ़ने का मार्ग गुरु द्वारा प्राप्त करना आवश्यक माना गया है।

श्रीविद्या-साधना का मूल आधार 'श्रीयंत्र' है। इसी का दूसरा नाम 'श्रीचक्र' है। यह यंत्र १. बिन्दु, २. त्रिकोण, ३. अष्टकोण, ४. दशकोण, ५. दशकोण, ६. चतुर्दशकोण, ७. अष्टदल, ८. षोडश-दल, ९. वृत्तत्रय और १०. भूपुर (चतुर्द्वारयुक्त त्रिरेखात्मक) से बनता है। साधक की पात्रता के अनुसार इसकी 'बाह्यपूजा' और शरीर में भावना करते हुए 'आन्तर-पूजा' के विधान हैं। **'आन्तर-पूजा'** यद्यपि गहन विषय है; किन्तु यह निरन्तर अभ्यास से शनैः शनैः समझ में आने लगता है। रुद्रयामल में इसके लिए बहुत से विधान वर्णित हैं। शरीरस्थ योगचक्रों की स्तुतियां, ध्यान और उन्हें उद्बुद्ध करने के लिए मंत्रजप भी विस्तार से बतलाये हैं। उनमें एक प्रयोग 'उद्घाटन-कवच' का भी है जिसका परिचय और मूल पाठ इस प्रकार है—

(च) उद्घाटन-कवच : एक चिन्तन

योग-साधना के मूलतः चार प्रकार माने गये हैं। यथा—१. हठयोग, २. मंत्रयोग, ३. लययोग तथा ४. राजयोग। इस योग-चतुष्टयी में हठयोग—१. 'शरीर शुद्धि, २. यम, ३. नियम, ४. आसन और प्राणायाम'—की साधना के स्तर को समुन्नत बनाने की एक आवश्यक भूमि है। हठयोग की भूमि पर ही मंत्रयोग की प्रतिष्ठा होती है, अतः मंत्रयोग का समस्त 'प्रासाद' इसी पर स्थित है। मंत्रयोग के पश्चात् लययोग और राजयोग की दिशा में प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है।

मंत्रयोग की साधना के दो पार्श्व हैं। जिसमें प्रथम है 'विश्व-विज्ञान' और दूसरा है 'संसार-बंधन-त्राण'। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। यथा—

मननाद् विश्वविज्ञानं त्राणं संसार-बन्धनात्।
यतः करोति संसिद्धिं 'मन्त्र' इत्युच्यते बुधैः ॥

मंत्र के स्थूल एवं सूक्ष्म रूप से पुनः दो अंग माने गये हैं जिनमें स्थूल रूप में—प्रणव, बीज, कूट, अक्षर तथा इनके विशिष्ट संयोजन से सम्बद्ध मंत्र के पल्लवादि-विधान आते हैं; किन्तु सूक्ष्म रूप में उनके स्वरूप, ध्यान, शक्ति, गति, क्रियाकारित्व आदि का समावेश होता है।

इन में भी सर्वाधिक महत्त्व कुण्डलिनी-जागरण का है और यह कार्य शरीरस्थ मूलाधारादि चक्रों के उन्मीलन की अपेक्षा रखता है। चक्रों के उन्मीलन का प्रकार जप एवं ध्यान से सम्भव है। तत्तत् चक्रों की अधिष्ठात्री देवता जब तक प्रसन्न नहीं होती, तब तक इस कार्य में भी बाधाएं आती हैं। ये बाधाएं केवल इसी जन्म से सम्बद्ध न होकर अपर जन्म में भी बाधक बनती हैं। सम्भवतः इसी दृष्टि से **'रुद्रयामल'** में शक्ति-उपासकों के लिए एक **'उद्घाटन कवच'** स्तोत्र दिया है, जिसका भक्तिपूर्वक अजपा जप के पश्चात् पाठ करना अत्यन्त लाभप्रद माना गया है। यह कवच इस प्रकार है—

मूल-पाठः—

मूलाधारे स्थिता देवि, त्रिपुरा चक्रनायिका।
नृजन्मभीति-नाशार्थं, सावधाना सदाऽस्तु मे ॥१॥
स्वाधिष्ठानाख्यचक्रस्था, देवी श्रीत्रिपुरेशिनी।
पशुबुद्धिं नाशयित्वा, सर्वैश्वर्यप्रदाऽस्तु मे ॥२॥
मणिपूरे स्थिता देवी, त्रिपुरेशीति विश्रुता।
स्त्रीजन्म-भीतिनाशार्थं, सावधाना सदाऽस्तु मे ॥३॥
स्वस्तिके संस्थिता देवी, श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
शोकभीति-परित्रस्तं, पातु मामनघं सदा ॥४॥
अनाहताख्य-निलया, श्रीमत्त्रिपुरवासिनी।
अज्ञानभीतितो रक्षां, विदधातु सदा मम ॥५॥
त्रिपुराश्रीरिति ख्याता विशुद्धाख्य-स्थलस्थिता।
जरोद्भव-भयात् पातु, पावनी परमेश्वरी ॥६॥

आज्ञाचक्रस्थिता देवी त्रिपुरामालिनी तु या।
सा मृत्युभीतितो रक्षां, विदधातु सदा मम ॥७॥
ललाट-पद्म-संस्थाना, सिद्धा या त्रिपुरादिका।
सा पातु पुण्यसम्भूतिर्भीति-संघात् सुरेश्वरी ॥८॥
त्रिपुराम्बेति विख्याता, शिरःपद्मे सुसंस्थिता।
सा पापभीतितो रक्षां, विदधातु सदा मम ॥९॥
ये पराम्बापदस्थान—गमने विघ्न-सञ्चयाः।
तेभ्यो रक्षतु योगेशी, सुन्दरी सकलार्तिहा ॥१०॥

उपर्युक्त स्तोत्र में भगवती के श्रीचक्र में विराजमान आवरण-गत प्रमुख देवियों से प्रार्थना की गई है जो कि चक्र नायिकाएं हैं। यहां नव आवरण रूप नो शरीरगत चक्र एवं हृदय में विराजमान देवियों से जिन-जिन भयों से रक्षा की प्रार्थना की गई है उनकी तालिका इस प्रकार है—

चक्र	चक्र नायिका	भय
१. मूलाधार	त्रिपुरा	नृजन्म
२. स्वाधिष्ठान	त्रिपुरेशिनी	पशुबुद्धि
३. मणिपूर	त्रिपुरेशी	स्त्रीजन्म
४. स्वस्तिक	त्रिपुरसुन्दरी	शोक
५. अनाहत	त्रिपुरवासिनी	अज्ञान
६. विशुद्ध	त्रिपुराश्री	जरा
७. आज्ञा	त्रिपुरामालिनी	मृत्यु
८. ललाटपद्म	त्रिपुरा सिद्धा	भीतिसंघ
९. सहस्रार	त्रिपुराम्बा	पाप
१०. बिन्दु	सुन्दरी योगेशी	विघ्न

इन सब भयों से निवृत्ति की याचना करते हुए इसमें पराम्बा के चरणों में शरण-प्राप्ति की कामना की गई है जो उचित ही है। ऐसे ही अन्तर्याग के लिए अन्य उपयोगी विधान श्री रुद्रयामल में वर्णित हैं।

उपर्युक्त चक्रों में ही प्रत्येक आवरण देवी के मन्त्र का जप किया जाता है। जैसे-जैसे साधना क्रम आगे बढ़ता है उसमें और भी विशिष्ट

प्रक्रियाओं का समावेश करते हुए सायुज्य तथा सारूप्य की प्राप्ति तक पहुंचा जा सकता है।

(छ) बाह्यपूजा-विधान

इसके 'न्यास, पात्रासादन और अर्चन' ये तीन महत्त्वपूर्ण अंग हैं। '**न्यासप्रिया तु श्रीविद्या**' इस आगमवचन के अनुसार श्रीविद्या के अंगभूत न्यासों की संख्या अति विशाल है। किन्तु पूजाधिकार सिद्धि के लिए—ब्रह्म विद्यासम्प्रदायस्तोत्र, यागमन्दिर प्रवेश, तत्त्वाचमन, गुरुपादुकामन्त्र जप, घण्टापूजन, संकल्प, आसनपूजा, देहरक्षा, दिग्बन्धन, मन्दिरपूजा, दीपपूजा, भूतशुद्धि, आत्मप्राण-प्रतिष्ठा के बाद मातृकान्यास (दोनों प्रकार का), करशुद्धिन्यास, आत्मरक्षान्यास, बाला षडंगन्यास, चतुरासनन्यास, वाग्देवतान्यास, बहिश्चक्रन्यास, अन्तश्चक्रन्यास,कामेश्वर्यादिन्यास और मूल विद्यान्यास करने चाहिएं। यदि महाषोडशी प्राप्त हो, तो षोडशाक्षरीन्यास, सम्मोहनन्यास और महाषोडशाक्षरी के संहार, स्थिति एवं सृष्टिन्यास तक के न्यास अवश्य करने चाहिएं। इनके अतिरिक्त लघुषोढादि न्यासों के करने से अभ्युदय होता है; किन्तु यदि नहीं किए जा सकें तो कोई दोष नहीं है।[1]

पात्रासादन में—वर्धनीकलश, सामान्यार्घ्य तथा विशेषार्घ्य की स्थापना एवं पात्रों में वह्नि, सूर्य, सोमकला आदि का पूजन होता है। तदनन्तर शुद्धिपात्र, गुरुपात्र एवं आत्मपात्र की स्थापना और पूजा करके अन्तर्याग किया जाता है। यहीं अन्य आचार्यों के मत से अर्घ्याचनादि के पात्र भी स्थापित होते हैं।

अर्चन में—आवाहन, चतुःषष्ट्युपचार पूजा, चतुरायतन पूजा, लयांग पूजा, षडंगार्चन, नित्यायजन एवं गुरुमण्डलार्चन के पश्चात् आवरणार्चन[2] (उपदेशानुसार सृष्ट्यादि क्रम से) करते हैं। तदनन्तर पंचपंचिका पूजा, षड्दर्शनविद्या, षडाधार, आम्नाय समष्टि, दण्डनाथा, मन्त्रिणी एवं ललितानामार्चनपूर्वक अर्चन सम्पन्न होता है। यहीं

---

१. महाषोडान्यास प्रत्येक वार के अनुसार पृथक्-पृथक् भी होते हैं, जिनका मूल पाठ हमने 'मतिदण्डैश्वर्य-विधान' में लिखा है।

२. आवरणों में ९, १०, १६ और उससे अधिक ७२ तक आवरण-पूजाएं होती हैं।

अवकाशानुसार सहस्रनामार्चनादि भी किये जाते हैं। महानैवेद्य, आरती, पुष्पांजलि, प्रदक्षिणा, कामकलाध्यान, बलिदान, जप, पुष्पांजलिस्तोत्र, कल्याणवृष्टिस्तोत्र, सर्वसिद्धिकृतस्तोत्र और क्षमा-प्रार्थना, गुरुस्तोत्रादि का पाठ करके सुवासिनीपूजन, तत्त्वशोधन, पूजासमर्पण देवतोद्वासन शान्तिस्तव पाठ के साथ अर्चनविधि पूर्ण होती है।

जो साधक इतने विस्तार से पूजादि नहीं कर पाएं उनके लिए आचार्यों ने अनेक प्रकार की लघु-पूजा विधियां भी बनाई हैं जिनमें कलश और शंख (सामान्यार्घ्य पात्र) स्थापन करके निम्नलिखित पद्धति से अर्चन करना चाहिए—

अथ संक्षिप्त श्रीयन्त्र पूजा

आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ च संकीर्त्य। श्रीगुरुं महागणपतिं भगवतीं महात्रिपुरसुन्दरीं च प्रणम्य पूजयेत्।

ध्यानम्—

बालार्कारुण-तेजसं त्रिनयनां रक्ताम्बरोल्लासिनीं,
नानालंकृतिराजमानवपुषं बालोडुराड्-शेखराम्।
हस्तैरिक्षुधनुः सृणीसुमशरान् पाशं मुदा बिभ्रतीं,
श्रीचक्रस्थितसुन्दरीं त्रिजगतामाधारभूतां भजे॥

इति ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूजयेत् ततश्च—

१. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं आं सौः चतुरस्रत्रयात्मकत्रैलोक्यमोहनचक्राधिष्ठात्र्यै अणिमाद्यष्टाविंशतिशक्तिसहितप्रकटयोगिनीरूपायै त्रिपुरादेव्यै नमः।

२. ॐ त्रिवृत्तात्मकत्रिवर्गसाधकचक्राधिष्ठात्र्यै कालरात्र्यादिसहितमातृकायोगिनीरूपायै त्रिपुरेशिनी देव्यै नमः।

३. ॐ ऐं क्लीं सौः षोडशदलपद्मात्मकसर्वाशापरिपूरकचक्राधिष्ठात्र्यै कामाकर्षिण्यादि षोडशशक्तिसहितगुप्तयोगिनीरूपायै त्रिपुरेश्वरीदेव्यै नमः।

४. ॐ ह्रीं क्लीं सौः अष्टदल पद्मात्मकसर्वसंक्षोभणचक्राधिष्ठात्र्यै अनङ्गकुसुमाद्यष्टशक्ति सहितगुप्ततरयोगिनीरूपायै त्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नमः।

५. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हैं ह्क्लीं हसौः चतुर्दशारात्मक-सर्वसौभाग्य-दायक चक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसंक्षोभिण्यादि चतुर्दशशक्तिसहितसम्प्रदाय-योगिनीरूपायै त्रिपुरावासिनीदेव्यै नमः।

६. ॐ हसें हस्क्लीं हस्सौः बहिर्दशारात्मक सर्वार्थसाधकचक्रा-धिष्ठात्र्यै सर्वसिद्धिप्रदादि दशशक्तिसहितकुलोत्तीर्णयोगिनीरूपायै त्रिपुराश्रीदेव्यै नमः।

७. ॐ ह्रीं क्लीं ब्लें अन्तर्दशारात्मकसर्वरक्षाकरचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वज्ञादिदशशक्तिसहित निगर्भयोगिनीरूपायै त्रिपुरमालिनीदेव्यै नमः।

८. ॐ ह्रीं श्रीं सौः अष्टारात्मक सर्वरोगहर चक्राधिष्ठात्र्यै वशिन्याद्यष्टशक्तिसहितरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुरासिद्धादेव्यै नमः।

९. ॐ हस्रैं हस्क्ल्रीं हस्रौः त्रिकोणात्मक सर्वसिद्धिप्रदचक्रा-धिष्ठात्र्यै कामेश्वर्यादि त्रिशक्तिसहितातिरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुराम्बादेव्यै नमः।

१०. ॐ (मूलमन्त्रः) बिन्द्वात्मकसर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै षडङ्गायुधदशशक्तिसहितपरापरातिरहस्ययोगिनीरूपायै महात्रिपुर-सुन्दरी देव्यै नमः।

इसके पश्चात् नैवेद्यादि विधि करके नित्यकृत्य पूर्ण कर लें।

रुद्रयामल में तो यहां तक लिखा है कि—

आराधनाऽसमर्थश्चेद् दद्यादर्चन-साधनम्।
यो दातुं नैव शक्नोति कुर्यादर्चन-दर्शनम्॥

अर्थात्—आराधना में समर्थ न होने पर पूजा की सामग्री प्रदान करे और यदि वह भी नहीं बन सके तो जहां पूजा होती हो, वहीं श्रद्धापूर्वक बैठकर पूजा का दर्शन करे।

वस्तुतः यह महाविद्या 'ब्रह्म-विद्या' है। इसकी १. स्थूल, २. सूक्ष्म और ३. परा के रूप में त्रिविध उपासना होती है। पराशक्ति ही विज्ञानानन्दघन ब्रह्म है। विज्ञानानन्दघन ब्रह्म का तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म एवं गुह्य होने के कारण शास्त्रों में उसे नाना प्रकार से समझाने

की चेष्टा की गई है। यह वास्तविक तथ्य है कि—किसी भी कार्य को करने के लिए मनुष्य में शक्ति का होना आवश्यक है और सबको शक्ति प्रदान करने वाली पराशक्ति ही उसकी अधिष्ठात्री देवता है। वही राजराजेश्वरी, श्रीमहादेवी, ललिता, त्रिपुरसुन्दरी, षोडशी, श्रीविद्या आदि नामों से प्रसिद्ध है । वही परब्रह्मस्वरूपिणी है। अत: उसकी यथाशक्ति उपासना करते हुए—**महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनु:'** के अनुसार ब्रह्म-सम्मिलन के लिए अपने शरीर को नित्य-पूजा, नैमित्तिक पूजा तथा जपादि के द्वारा ब्रह्मरूप बनाना चाहिए। इसीसे मानव-जीवन की सार्थकता होती है और लक्ष्य तक पहुंचने की क्षमता प्राप्त होती है। श्रीविद्यासम्बद्ध साहित्य से रुद्रयामल एवं तदन्तर्गत त्रिकूटारहस्य में बहुत विस्तार से वर्णित है; किन्तु विस्तार भय से यहां संक्षेप में ही दिग्दर्शन कराया है। अधिक जानकारी के लिए हमारे अन्य ग्रन्थ १. खड्गमाला २. सुभगोदयस्तुति, ३. परास्तोत्र आदि देखें।

माता भुवनेश्वरी की उपासना

(क) **पूर्वाभास**—माता भुवनेश्वरी शिव के समस्त लीला-विलास की सहचरी और निखिल-प्रपंचों की आदि कारण, सब की शक्ति और सभी का नाना प्रकार से पोषण करने वाली हैं। इनका स्वरूप सौम्य और अंगकान्ति अरुण है। भक्तों को अभय एवं समस्त सिद्धियां प्रदान करना आपका स्वाभाविक गुण है। पूर्वाम्नाय की तृतीया विद्या 'भुवनेश्वरी' है। इसकी उपासना तीन क्रम से होती है जिनमें १. एकाक्षरी भुवनेश्वरी, २. त्र्यक्षरी भुवनेशी और ३. पंचाक्षरी भुवनसुन्दरी का क्रम मन्त्राक्षरभेद से कथित है। भुवनेश्वरी को ही ललिता भी कहते हैं। भगवान् शिव ने 'ललिता' नाम से जगदम्बा के दो आम्नाय विभाजित किए हैं। एक पूर्वाम्नाय में तथा दूसरी ऊर्ध्वाम्नाय में। 'ललिता' शब्द 'सुन्दरी' शब्द का पर्याय है, इसलिए ललिता शब्द से जब 'त्रिपुरसुन्दरी' समझी जाती है तब वह 'श्रीविद्या ललिता' होती है और जब वही 'ललिता' पद से 'भुवनेश्वरी' की बोधक होती है तो वह भुवनेश्वरी ललिता' समझी जाती है। इनके भैरव सदाशिव हैं। भुवनेश्वरी का 'एकाक्षरी-मंत्र विधान' इस प्रकार है—

(ख) **एकाक्षरी मन्त्र विधान**

विनियोग—अस्य श्री भुवनेश्वरीमन्त्रस्य शक्तिर्ऋषिर्गायत्री-च्छन्दो भुवनेश्वरी देवता हकारो बीजम्, ईकारः शक्तिः, रेफः कीलकं चतुर्वर्गसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—ऋषये नमः (शिरसि)। गायत्रीच्छन्दसे नमः (मुखे)। श्रीभुवनेश्वरी देवतायै नमः (हृदये)। हकारबीजाय नमः (गुह्ये)। ईकारशब्दाय नमः (पादयोः)। रकारकीलकाय नमः (नाभौ)। विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-षडङ्ग न्यास—ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः। (इन छह बीजों से यह न्यास करें)।

ध्यान

बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुंगकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्॥

तदनन्तर मानसोपचार पूजा करके 'ह्रीं' मन्त्र का जप करें।

त्र्यक्षरीमन्त्र—ह्रीं ॐ ह्रीं। पंचाक्षरी मन्त्र—ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ह्रीं।

श्रीभुवनेश्वरी का बीज मन्त्र ह्रीं देवीप्रणव के रूप में भी प्रसिद्ध है तथा भावभेद से अनेक मन्त्रों के साथ इसका स्मरण होता है। भुवनेश्वरी-यन्त्र का स्वरूप, मध्य में षट्कोण, उसके बाद अष्टदल पद्म, फिर षोडशदल कमल और चतुर्द्वारयुक्त भूपुर से युक्त होता है। रुद्रयामल में इनकी उपासना के लिए विस्तार से वर्णन हुआ है। यहां हम पाठकों के लिए 'भुवनेश्वरी-अष्टोत्तर शतनामस्तोत्र' का पाठ दे रहे हैं। यह स्तोत्र प्रातः स्नानादि से निवृत्त होकर नित्यकर्म के पश्चात् पढ़ने से समस्त कामनाओं को पूर्ण करता है।

(ग) **अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र**

विनियोग—अस्य श्रीभुवनेश्वर्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रस्य शक्ति-ऋंषिः गायत्रीच्छन्दः। श्रीभुवनेश्वरीदेवता मम चतुर्वर्गसाधनार्थं पाठे। पूजने विनियोगः।

—इसके न्यास, ध्यानादि एकाक्षरी मन्त्र के समान करें।

महामाया महाविद्या महायोगा महोत्कटा।
माहेश्वरी कुमारी च ब्रह्माणी ब्रह्मरूपिणी ॥१॥
वागीश्वरी योगरूपा योगिनी कोटिसेविता।
जया च विजया चैव कौमारी सर्वमङ्गला ॥२॥
हिङ्गुला च विलासी च ज्वालिनी ज्वालरूपिणी।
ईश्वरी क्रूरसंहारी कुलमार्गप्रदायिनी ॥३॥
वैष्णवी सुभगाकारा सुकुल्याकुलपूजिता।
वामाङ्गा वामचारा च वामदेवप्रिया तथा ॥४॥
डाकिनी योगिनीरूपा भूतेशी भूतनायिका।
पद्मावती पद्मनेत्रा प्रबुद्धा च सरस्वती ॥५॥
भूचरी खेचरी माया मातङ्गी भुवनेश्वरी।
कान्ता पतिव्रता साक्षी सुचक्षुः कुण्डवासिनी ॥६॥
उमा कुमारी लोकेशी सुकेशी पद्मरागिणी।
इन्द्राणी ब्रह्मचाण्डाली चण्डिका वायुवल्लभा ॥४॥
सर्वधातुमयीमूर्तिर्जलरूपा जलोदरी।
आकाशी रणगा चैव नृकपाल-विभूषणा ॥८॥
नर्मदा मोक्षदा चैव कामधर्मार्थदायिनी।
गायत्री चाथ सावित्री त्रिसन्ध्या तीर्थगामिनी ॥९॥
अष्टमी नवमी चैव दशम्येकादशी तथा।
पौर्णमासी कुहूरूपा तिथिमूर्ति-स्वरूपिणी ॥१०॥
सुरारिनाशकारी च उग्ररूपा च वत्सला।
अनला अर्धमात्रा च अरुणा पीतलोचना ॥११॥
लज्जा सरस्वती विद्या भवानी पापनाशिनी।
नागपाशधरा मूर्तिरगाधा धृतकुण्डला ॥१२॥
क्षत्ररूपा क्षयकरी तेजस्विनी शुचिस्मिता।
अव्यक्ता व्यक्तलोका च शम्भुरूपा मनस्विनी ॥१३॥
मातङ्गी मत्तमातङ्गी महादेवप्रिया सदा।
दैत्यघ्नी चैव वाराही सर्वशस्त्रमयी शुभा ॥१४॥

इस स्तोत्र का माहात्म्य भी यहां अति विस्तार से दर्शित है जिसमें भक्तिपूर्वक एक काल अथवा त्रिकाल पाठ करने से पुत्रप्राप्ति, धन लाभ, विद्याप्राप्ति, सद्गति लाभ, पाप निवारण एवं शत्रुनाश आदि होते हैं, ऐसा बतलाया है।

(घ) वराह-मन्त्र-प्रयोग

विष्णु के अवतारों के साथ भुवनेश्वरी देवी का ऐक्य होने पर भगवान् वराह इनके साथ उपास्य हैं। पूर्वाम्नाय से उनकी उपासना होती है। श्रीवराह का अष्टाक्षर मन्त्र है—'ॐ भूर्वराहाय नमः'। इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि, जगती छन्द, वराह देवता हैं। अष्टाक्षर मन्त्र से ही पंचांग-न्यास होता है। इनका ध्यान इस प्रकार है—

कृष्णाङ्गं नीलवक्त्रं च मलिनं पद्मसंस्थितम्।
पृथ्वीशक्तियुतं वन्दे शंखचक्राम्बुजं गदाम्॥
धारयन्तं कराब्जेषु श्रीवराहप्रभुमुत्तमम्।
भूलक्ष्मी-कान्ति-रतिभिः समन्तात् परिवारितम्॥

इनकी शक्ति धरणी-पृथ्वी है। तदनुसार पृथ्वी देवी के मन्त्र का जप भी इनके साथ होता है। वैसे उन्मनी, अन्नपूर्णा और भुवना के रूप में भुवनेश्वरी का त्रिकाल जप करने पर 'ह्रीं नमः शिवाय' इस मन्त्र का दशांश जप करना चाहिए और अन्नपूर्णा के मन्त्रजप से पूर्व स्वर्णाकर्षण भैरव के मन्त्र का दशांश जप करना अत्युत्तम माना गया है। क्योंकि—

शक्त्या विना शिवे शुष्के नाम धाम न विद्यते।
शिवं विना चित्कलानां कलात्वं न क्वचिद् भवेत्॥

यह आगमों का आदेश है।

५. श्रीत्रिपुर भैरवी की उपासना

(क) परिचय एवं महामन्त्र-विधान—रुद्रयामल के पंचांग खण्ड-निरूपण' के प्रसंग में भगवान् महेश्वर ने त्रिपुरभैरवी का वर्णन किया है। इसके अनुसार इन्हें दिव्यरूपिणी, सिद्धविद्या, कामराहुप्रिया, सर्वलक्ष्मीमयी तथा आनन्दरूपिणी आदि विशेषणों से परिचित कराया

है। सब प्रकार के भय निवारणार्थ त्रिपुरभैरवी की उपासना विशेष रूप से की जाती है। इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

देवैर्ध्येयां त्रिनेत्रामसुरदलघनारण्यघोराग्नि रूपां,
रौद्रीं रक्ताम्बराढ्यां रतिघटिघटितोरोजयुग्मोग्ररूपाम्।
चन्द्रार्धभ्राजिभव्याभरणकरलसद्भालबिम्बां भवानीं,
सिन्दूरापूरिताङ्गीं त्रिभुवनजननीं भैरवीं भावयामि।

श्रीभैरवी की उपासना वाम दक्षिण दोनों ही मार्गों से होती है। गुरुपरम्परा एवं आत्मसम्प्रदाय के अनुसार उपासना करने से ही सफलता प्राप्त होती है, यह सदा स्मरण रखें तथा भक्तिपूर्वक साधना मार्ग में आगे बढ़ें। इनका यन्त्र मध्य में नवयोनिकोण, अष्टदलपद्म तथा चतुर्द्वार-युक्त भूपुर से बनता है। इनका मूलमन्त्र है—'हसैं ह्स्क्रीं ह्सैं'। यह मन्त्र जप और धारण से सर्व सम्पदा को प्रदान करता है। मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति एवं पंक्ति छन्द है। ह्स्रां, ह्स्रीं, ह्स्रूं आदि छह दीर्घबीजों से कर एवं अंगन्यास होता है। मन्त्रजप के समय निम्नलिखित पद्य से ध्यान करें—

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां,
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं,
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्दे समन्दस्मिताम्।

यह देवी 'दुर्गासप्तशती' के तीसरे अध्याय की भी अधिष्ठात्री है। रुद्रयामल में भैरवप्रोक्त १६ पद्यों का स्तोत्र, ५१ पद्यों का कवच तथा पूजाविधान आदि वर्णित हैं। यह देवी श्रीललितामहात्रिपुर-सुन्दरी के रथ की संचालिका भी कही गई है। इसके विषय में विस्तार से जानने के लिए मूलग्रन्थ देखें।

६. छिन्नमस्ता-भगवती की आराधना

(क) **स्वरूप-दर्शन एवं यन्त्र-मन्त्र परिचय**—दस महाविद्याओं में छिन्नमस्ता का स्वरूप अन्य सभी से भिन्न है। अपनी प्रिय सहचरी जया और विजया की क्षुधाशान्ति के लिए दयावती माता ने स्वयं का सिर काटकर स्वशरीर से निकली हुई त्रिधारा से उन दोनों को

तथा स्वयं को तृप्त किया। इसका अपर नाम 'प्रचण्डचण्डिका' भी है। इस देवी की आराधना दक्षिण, उत्तर और अधर आम्नायों से होती है। चतुर्थ सन्ध्याकाल में शत्रुविजय, समूहस्तम्भन, राज्यप्राप्ति एवं मोक्षप्राप्ति हेतु छिन्नमस्ता देवी के मन्त्र का जप और पूजन का विधान है। इस महाविद्या के भैरव 'विकराल' हैं। त्रिकोण, त्रिवृत्त, त्रिकोण, अष्टदल और भूपुररेखात्रय से छिन्नमस्ता का मन्त्र बनाया जाता है। 'श्रीं ह्रीं क्रीं ऐं वज वैरोचनोये हूं हूं फट् स्वाहा' यह षोडशाक्षरी मन्त्र और कुछ अन्य मन्त्र इनके प्राप्त होते हैं। इनका ध्यान इस प्रकार है—

प्रत्यालोढपदां सदैव दधतीं छिन्नं शिरः कर्त्रिकां,
दिग्वस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधारां पिबन्तीं मुदा।
नागाबद्धशिरोमणिं त्रिनयनां हृद्युत्पलालङ्कृतां,
रत्यासक्तमनोभवोपरि दृढां ध्यायेज्जवासन्निभाम्॥

रुद्रयामल में उपर्युक्त मूलमन्त्र के बीजों को भिन्न-भिन्न क्रम से रखकर उनसे बने मन्त्रों के जप से वशीकरण, पापनाश, मुक्तिलाभ आदि फलों की प्राप्ति का संकेत दिया है। वांछित कामनापूर्ति, अष्ट-सिद्धि, धन-धान्य-पुत्र-पौत्रादि की प्राप्ति के लिए मन्त्र-जप के साथ स्तोत्र-पाठ, कवच, हृदय, अष्टोत्तरशत और सहस्रनाम पाठ भी करने चाहिएं। एक आठ पद्यों का स्तोत्र साधकों की सुविधा के लिए हम यहां दे रहे हैं—

(ख) श्रीछिन्नमस्ता-स्तवराजः

नाभौ शुभ्रारविन्दं तदुपरि विलसन्मण्डलं चण्डरश्मेः,
संसारस्यैकसारां त्रिभुवनजननीं धर्मकामार्थदात्रीम्।
तस्मिन् मध्ये त्रिभागे त्रितयतनुधरां छिन्नमस्तां प्रशस्तां,
तां वन्दे छिन्नमस्तां शमनभयहरां योगिनीं योगमुद्राम्॥१॥
नाभौ शुद्धसरोजवक्त्रविलसद्बन्धूकपुष्पारुणां,
भास्वद्भास्करमण्डलं तदुदरे तद्योनिचक्रं महत्।
तन्मध्ये विपरीतमैथुनरतप्रद्युम्नसत्कामिनी—
पृष्ठस्थां तरुणार्ककोटिविलसत्तेजः स्वरूपां भजे॥२॥

वामे छिन्नशिरोधरां तदितरे पाणौ महत्कर्तृकां,
प्रत्यालीढपदां दिगन्तवसनामुन्मुक्तकेशव्रजाम्।
छिन्नात्मीयशिरस्समुच्छलदसृग्धारां पिबन्तीं परां,
बालादित्यसमप्रकाशविलसन्नेत्रत्रयोद्भासिनीम् ॥३॥
वामादन्यत्रनालं बहुगहनगलद्रक्तधाराभिरुच्चै—
र्गायन्तीमस्तिभूषां करकमललसत्कर्त्रिकामुग्ररूपाम्।
रक्तामारक्तकेशीमपगतवसनां वर्णिनीमात्मशक्तिं,
प्रत्यालीढोरुपादामरुणितनयनां योगिनीं योगनिद्राम् ॥४॥
दिग्वस्त्रां मुक्तकेशीं प्रलयघनघटाघोररूपां प्रचण्डां,
दंष्ट्रादुष्प्रेक्ष्य वक्त्रोदरविवरलसल्लोलजिह्वाग्रभासाम्।
विद्युल्लोलाक्षियुग्मां हृदयतटलसद्भोगिनीं भीममूर्त्ति,
सद्यश्छिन्नात्मकण्ठप्रगलितरुधिरैर्डाकिनीं वर्धयन्तीम् ॥५॥
ब्रह्मेशानाच्युताद्यैः शिरसि विनिहितामन्दपादारविन्दै—
राप्तैर्योगीन्द्रमुख्यैः प्रतिपदमनिशं चिन्तितां चिन्त्यरूपाम्।
संसारे सारभूतां त्रिभुवनजननीं छिन्नमस्तां प्रशस्ता—
मिष्टां तामिष्टदात्रीं कलिकलुषहरां चेतसा चिन्तयामि ॥६॥
उत्पत्तिस्थितिसंहृतीर्घटयितुं धत्ते त्रिरूपां तनुं,
त्रैगुण्याज्जगतो यदीयविकृतिर्ब्रह्माच्युतः शूलभृत्।
तामाद्यां प्रकृतिं स्मरामि मनसा सर्वार्थसंसिद्धये,
यस्याः स्मेरपदारविन्दयुगले लाभं भजन्ते नराः ॥७॥
अभिलषितपरस्त्रीयोगपूजापरोऽहं,
बहुविधजनभावारम्भसम्भावितोऽहम्।
पशुजनविरतोऽहं भैरवीसंस्थितोऽहं,
गुरुचरणरतोऽहं भैरवोऽहं शिवोऽहम् ॥८॥

प्रणति पद्य

वैयाघ्राजिनरञ्जितस्वजघनेऽरण्ये प्रलम्बोदये,
खर्वेऽनिर्वचनोयपर्वसुभगे मुण्डावलीमण्डिते।
कर्त्रीं कुन्दरुचिं विचित्रवनितां ज्ञाने दधाने पदे,
मातर्भक्तजनानुकम्पिनि महामायेऽस्तु तुभ्यं नमः॥

(ग) परशुरामोपासना

परशुरामजी और छिन्नमस्ता में ऐक्य है। अतः परशुरामजी की उपासना सात्त्विक, राजस और तामस रूप में की जाती है तब छिन्न-मस्ता के यन्त्र में ही उनकी पूजा होती है और परशुराम गायत्री का जप किया जाता है। यथा—

ब्रह्मक्षेत्राय विद्महे, क्षत्रियान्ताय धीमहि।
तन्नो रामः प्रचोदयात्।

यह परशुराम गायत्री अद्‌भुत है। राज्य एवं वैभव प्रदान करने वाली है। इसके ऋषि भारद्वाज, छन्द गायत्री, देवता श्री परशुराम हैं। इनका सात्त्विक ध्यान इस प्रकार है—

सात्त्विकं श्वेतवर्णं च भस्मोद्‌धूलितविग्रहम्।
अग्निहोत्रस्थलासीनं नानामुनिगणावृतम्॥
कम्बलासनमारूढं स्वर्णतारकुशाङ्गुलिम्।
श्वेतवस्त्रद्वयोपेतं जुह्वन्तं राममाश्रये॥

६. भगवती धूमावती की साधना

(क) पूर्व परिचय—महाविद्या धूमावती उग्रशक्ति हैं। भगवान् शिव इनमें धूम्ररूप से विराजमान हैं। विश्व की अमांगल्यपूर्ण अवस्था की अधिष्ठात्री के रूप में ये भगवती त्रिवर्णा, चंचला, गलिताम्बरा, विरलदन्ता, विधवा, मुक्तकेशी, शूर्पहस्ता, काकध्वजिनी, रूक्षनेत्रा, कलहप्रिया आदि विशेषणों से वर्णित है। शत्रुसंहार, दारिद्र्य-विध्वंसन एवं भक्तसंरक्षण के लिए ये सदा आराध्य हैं। नारदपंचरात्र में इनकी उत्पत्ति कथा वर्णित है, जिसमें कहा गया है कि—"एक समय भगवान् शिव के अंक में विराजमान पार्वती देवी ने शिव से प्रार्थना की कि मुझे भूख लगी है, कुछ खाने के लिए दें। तब शिव ने आश्वासन दिया कि कुछ प्रतीक्षा करो, अभी व्यवस्था होती है, किन्तु व्यवस्था नहीं हुई और बहुत समय बीत गया। तब भगवती ने स्वयं शिव को ही मुख में रखकर निगल लिया। उससे उनके शरीर से धुआं निकला और अपनी माया से शिवजी बाहर आ गये। शिव ने पार्वती से कहा कि—"मैं एक ही पुरुष हूं और तुम एक ही स्त्री हो। तुमने अपने पति को

निगल लिया, अतः तुम विधवा हो गई हो। अतः सौभाग्यवती के शृंगार छोड़कर वैधव्यवेष में रहो। तुम्हारा यह शरीर परा भगवती बगला के रूप में विद्यमान था। अब तुम 'धूमावती' महाविद्या के रूप में विश्व में पूजित होकर संसार का कल्याण करोगी।" इसी प्रकार दक्षप्रजापति के यज्ञ में सती के शरीर के हवन से निकले धुएं से भी धूमावती का आविर्भाव माना गया है।

ज्येष्ठा देवी, धूमिनी, धूमावती आदि नामों से प्रसिद्ध इस भगवती के अनेक उपासक हुए हैं, जिनमें अर्धनारीश्वर, नारसिंह, स्कन्द, क्षपणक, पिप्पलाद, बौधायन आदि प्रमुख हैं। इनका मन्त्र— 'ॐ धूं धूं धूं धूमावति स्वाहा' इस प्रकार है। इस मन्त्र का एक लाख जप और दशांश क्रम से हवन, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण भोजन करना चाहिए। इसके विनियोग तथा ध्यान इस प्रकार हैं—

(ख) मन्त्र-विधान

विनियोग—अस्य श्रीधूमावती मन्त्रस्य स्कन्दऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः श्रीधूमावतीदेवता धूं बीजं स्वाहा शक्तिः प्रणवः कीलकं मम शत्रुक्षयार्थे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—स्कन्दर्षये नमः (शिरसि)। पङ्क्तिच्छन्दसे नमः (मुखे)। श्रीधूमावतीदेवतायै नमः (हृदये)। धूं बीजाय नमः (गुह्ये)। स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः)। प्रणवकीलकाय नमः (नाभौ)। विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-हृदयादि-न्यास—(मूल मन्त्र द्वारा)।

ध्यान—

श्यामाङ्गीं रक्तनयनां श्यामवस्त्रोत्तरीयकम्।
वामहस्ते शोधनं च दक्षहस्ते तु शूर्पकम्॥
धृत्वा विकीर्णकेशां च धूलिधूसरविग्रहाम्।
लम्बोष्ठीं शुभ्रदशनां लम्बमान-यशोधराम्॥
संलग्नभ्रूयुगयुतां कटुदंष्ट्रोष्ठवल्लभाम्।
कृसरं तु कुलुत्थोत्थं भग्नभाण्डतले स्थितम्॥
तिलपिष्टसमायुक्तं मुहुर्मुहुश्च भक्तितम्।
महिषीशृङ्गताटङ्कां लम्बकर्णातिभीषणाम्॥

भजे धूमावतीं देवीं शत्रुसंहारकारिणीम्।
सर्वसिद्धिप्रदात्रीं च मातरं शोकहारिणीम्॥

(ग) **यन्त्र, कवचादि बोध**—धूमावती-यन्त्र का स्वरूप 'षट्कोण, अष्टदल और चतुर्द्वारयुक्त भूपुर' वाला है। कामनाभेद से अन्य प्रकार के यन्त्र भी बनाये जाते हैं। धूमावती के कवच, हृदय, मालामन्त्र, स्तोत्र, शतनाम, सहस्रनाम आदि सभी अंग प्राप्त होते हैं। धूमावती की अंग-साधना में—वीरेश, बटुक, प्रत्यंगिरा, शरभ. पाशुपत, संहारास्त्र, ककुदो, कर्कटिका, मारिणी, त्वरिता और कुल्लका आदि की साधनाएं भी की जाती हैं। साधक को गुरुपरम्परा से मन्त्र प्राप्त कर विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिए तथा किसी का अपकार नहीं करना चाहिए। आत्मरक्षा के लिए यह अत्युपयोगी है। धूमावती देवी का 'मालामन्त्र' यहां पाठकों की सुविधा के लिए हम दे रहे हैं। इस मन्त्र का १०८ या १००८ की संख्या में जप करने से सब प्रकार के संकटों का नाश एवं सुख-समृद्धि प्राप्त होती है। मूल मालामन्त्र इस प्रकार है—

(घ) **श्रीधूमावती माला-मन्त्र**—"ॐ, धूं धूमावति चतुर्दशभुवननिवासिनि सकलग्रहोच्चाटनि सकलशत्रुरक्तमांसभक्षिणि, मम शरीररक्षिणि भूतप्रेत-पिशाचब्रह्मराक्षसादि सकलग्रहसंहारिणि मम शरीर परमन्त्र-परयन्त्र-परतन्त्रनिवारिणि आत्ममन्त्रयन्त्रतन्त्र प्रकाशिनि मम शरीरे परकट्टु-परवाटु-परवेट्टु-परजप-परहोम-परशून्य-परवृष्टि-परकौतुक-परौषधादिच्छेदिनि-चिट्टेरि-काहेरि-कन्नेरि-पाट्टेरि शुनककाट्टेरि-प्ररिटिकाट्टेरि - दर्भकाट्टेरि - पातालकाट्टेरि - सकलजातिकाट्टेरि-ग्रहच्छेदिनि मम नाभि-कमलस्थान-संचारग्रहसंहारिणि धूम्रलोचनि उग्ररूपिणि सकलविषच्छेदिनि सकलविषसंचयान् नाशय नाशय मारय मारय विषमज्वर-तापज्वर-शीतज्वर-वातज्वर-लूतज्वर-पयत्यज्वर - श्लेष्मज्वर-मोहज्वर - सान्निपातज्वर-पातालकाट्टेरिज्वर-प्रेतज्वर-पिशाचज्वर-कृत्रिमज्वर-नानादोषज्वर - सकलरोगनिवारिणि सकलग्रहच्छेदिनि शिरःशूलाक्षिशूल-कुक्षिशूल कर्णशूल-नाभिशूल-कटिशूल-पार्श्वशूल-गण्डशूल-गुल्मशूलांगशूल-सकलशूलान् निर्धूमय सकलग्रहान् निवारय निवारय रां र। रां रां रां, क्ष्रां क्ष्रां क्ष्रां क्ष्रां क्ष्रां, स्त्रैं स्त्रैं स्त्रैं स्त्रैं स्त्रैं, ध्रूं ध्रूं ध्रूं ध्रूं ध्रूं, फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें, धूं धूं धूं धूं धूं

धूमावति मां रक्ष रक्ष शीघ्रं शीघ्रमागच्छागच्छ क्षिप्रमेवारोग्यं कुरु कुरु हुं फट् धूं धूं धूमावति स्वाहा।"

इस मन्त्र को सूर्य-ग्रहण, चन्द्रग्रहण, अक्षयतृतीया की रात्रि और होली की रात्रि में विधिवत् पुरश्चरण करके सिद्ध कर लें और बाद में आवश्यकता पड़ने पर जल-भस्म आदि का अभिमन्त्रण तथा नीम की डाली से झाड़-फूंक करने में उपयोग करें इससे रोग एवं भूत-प्रेतादि के दोष दूर होते हैं।

प्रणाम करने का पद्य

वन्दे कालाभ्रनीलां विकलितवदनां काकनासां विकर्णां
सम्मार्जिन्युल्कशूर्पैर्युत-मुसलकरां वक्रदन्तां विषास्याम्।
ज्येष्ठां निर्वाणवेषां भ्रुकुटितनयनां मुक्तकेशामुदारां,
पीनोत्तुङ्गाद्रितुङ्गस्तनभरनमितां निष्कृपां शत्रुहन्त्रीम्॥

८. माता बगलामुखी की आराधना

(क) **पूर्वाभास तथा मन्त्र परिचय**—आराधना का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसमें प्रवेश पा लेने के पश्चात् एक के बाद एक मार्ग उद्घाटित होते रहते हैं। दस महाविद्याओं की आराधना में बगलामुखी देवी की साधना पर विद्वानों का अत्यधिक ध्यान गया है। इनकी साधना में लौकिक और अलौकिक फलों की प्राप्ति सहज होती है। साधक अपने अधिकार के अनुसार दक्षिणाम्नाय अथवा ऊर्ध्वाम्नाय से इनकी उपासना करते हैं। जब ये दक्षिणाम्नायात्मक होती हैं तो इनकी दो भुजाएं ही रहती हैं और जब ऊर्ध्वाम्नायात्मक होती हैं तो चतुर्भुजी बन जाती हैं। इन दोनों क्रमों में बीजमन्त्र और मन्त्राक्षरों की संख्या में सामान्य अन्तर रहता है। दक्षिणाम्नाय में ह्लीं बीज सहित ३४ अक्षरात्मक मन्त्र माना गया है। यथा—

"ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा।"

इसमें कीलय पद दो बार तथा केवल नाशय पद रखने में यह ३६ अक्षर का मन्त्र बनता है।

जबकि ऊर्ध्वाम्नाय में यह मन्त्र ब्रह्मास्त्रस्वरूपिणी बगला का होने से ३६ अक्षरों का हो जाता है। यथा—

"ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय, जिह्वां कीलय, बुद्धि विनाशय, ह्लीं ॐ स्वाहा।" (मेरुतन्त्र)

एक अन्य मन्त्र इस प्रकार भी है—

"ॐ ह्लीं ऐं श्रीं क्लीं श्रीबगलानने मम रिपून् नाशय नाशय ऐश्वर्याणि देहि देहि शीघ्रं मनोवांछितं कार्यं साधय साधय ह्लीं स्वाहा।"

सांख्यायन-तन्त्र में श्रीबगलामुखी के एकाक्षर से आरम्भ करके सहस्राक्षरी तक के मन्त्रों के अनेक रूप दिखलाए हैं जिनके द्वारा विभिन्न काम्यकर्मों की साधना की विधियां भी सम्पन्न होती हैं। इनका यन्त्र 'मध्यत्रिकोण, षट्कोण, अष्टदल और भूपुर' से बनता है। रुद्रयामल के अतिरिक्त 'विष्णुयामल, सिद्धेश्वरतंत्र, विश्वसारोद्धार-तंत्र, मेरुतंत्र और उत्कटशम्बर नागेन्द्रप्रयाणतन्त्र' में भी बगलामुखी की आराधना पर विस्तार से लिखा गया है, जिनमें कवच, शतनाम, सहस्र नाम, स्तोत्र आदि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इस विषय पर हमारी **'श्री बगलामुखी सिद्धि और साधना'** नामक पुस्तक भी शीघ्र प्रकाशित होने वाली है। यहां आगे दो मंत्रों का जप-विधान दे रहे हैं। वह द्रष्टव्य है।

श्रीबगलामुखी के मंत्र का विधान इस प्रकार है—

(ख) दो मन्त्रों के विधान

१. विनियोग—अस्य श्री बगलामुखी-मन्त्रस्य नारद ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः श्री बगलामुखीदेवता ह्लीं बीजं स्वाहा शक्तिः श्रीबगला-मुखीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—नारदर्षये नमः (शिरसि), त्रिष्टुप्छन्दसे नमः (मुखे), श्रीबगलामुखीदेवतायै नमः (हृदये), ह्लीं बीजाय नमः (गुह्ये), स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः), विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

कराङ्ग-न्यास—ह्लीं (अंगु० हृदयाय०), बगलामुखि (तर्जनी० शिरसे०) सर्वदुष्टानां (मध्यमा० शिखायै०), वाचं मुखं स्तम्भय (अनामिका० कवचाय०), जिह्वां कीलय कीलय (कनिष्ठा० नेत्र-त्रयाय०), बुद्धि नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा (करतल० अस्त्राय०)।

ध्यान—'मध्ये सुधाब्धि' इत्यादि दो पद्य पृ० २०४।

मुद्रा—धेनु, योनि। पंचोपचार पजा। पीतपुष्पांजलि एवं हरिद्रा की माला द्वारा जप।

मूलमन्त्र—ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धि नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा।

ऐश्वर्य प्राप्ति और कार्य सिद्धि के लिए अन्य मन्त्र का विधान इस प्रकार है—

विनियोग—ॐ अस्य श्रीबगलामुखी ब्रह्मास्त्रस्वरूपिणी मन्त्रस्य भैरवऋषिः विराट् छन्दः श्रीबगलामुखी देवता क्लीं बीजं ऐं शक्तिः श्रीं कीलकं मम मनोभिलषितेष्टकार्यसिद्धये विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—भैरवर्षये नमः (शिरसि), विराट्छन्दसे नमः (मुखे), श्रीबगलामुखीदेवतायै नमः (हृदये), क्लीं बीजाय नमः (गुह्ये), ऐं शक्तये नमः (पादयोः), श्रीं कीलकाय नमः (नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-षडङ्गन्यास—'ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः' इन छह बीजों से करें।

ध्यान—

सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं,
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां स्रक् चम्पकस्रग्युताम्।
हस्तैर्मुद्गरपाशबद्धरसनां संबिभ्रतीं भूषण—
व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तये॥

मूलमन्त्र—ॐ ह्लीं ऐं श्रीं क्लीं श्रीबगलानने मम रिपून् नाशय नाशय ममैश्वर्याणि देहि देहि शीघ्रं मनोवांछितकार्यं साधय साधय ह्लीं स्वाहा।

समयानुसार कवच, हृदय, स्तोत्र, शतनाम और सहस्रनाम का भी पाठ करें। एक महत्त्वपूर्ण सिद्धस्तोत्र यहां सुविधा के लिए प्रस्तुत है।

(ग) श्रीबगलामुखीस्तोत्रम्

विनियोग—अस्य श्रीबगलामुखीस्तोत्रस्य नारदऋषिः श्रीबगलामुखीदेवता मम सन्निहितानां विरोधिनां वाङ्मुखपदबुद्धीनां स्तम्भनार्थे विनियोगः।

स्तोत्र

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां,
सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम् ।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं,
देवीं भजामि धृतमुद्‌गरवैरिजिह्वाम् ॥१॥

जिह्वाग्रमादाय करेण देवी, वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम् ।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन, पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि ॥२॥

चलत्कनककुण्डलोल्लसितचारुगण्डस्थलां,
लसत्कनकचम्पकद्युतिमदिन्दु-बिम्बाननाम् ।
गदाहत-विपक्षिकां कलितलोलजिह्वाञ्चलां,
स्मरामि बगलामुखीं विमुखवाङ्मुखस्तम्भिनीम् ॥३॥

पीयूषोदधिमध्यचारुविलसद् रक्तोत्पले मण्डपे,
सत्सिंहासन मौलिपातितरिपुं प्रेतासनाध्यासिनीम् ।
स्वर्णाभां करपीडितारिरसनां भ्राम्यद्‌गदां विभ्रमा—
मित्थं ध्यायति यान्ति तस्य विलयं सद्योऽथ सर्वापदः ॥४॥

देवि त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते यः पीतपुष्पाञ्जलिं,
भक्त्या वामकरे निधाय च मनुं मन्त्री मनोरक्षरम् ।
पीठ-ध्यानपरोऽथ कुम्भकवशाद् बीजं स्मरेत् पार्थिवं,
तस्यामित्रमुखस्य वाचि हृदये जाड्यं भवेत् तत्क्षणात् ॥५॥

वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति,
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति ।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वद्यन्त्रणायन्त्रितः,
श्रीनित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः ॥६॥

मन्त्रस्तावदलं विपक्षदलनं स्तोत्रं पवित्रं च ते,
यन्त्रं वादिनियन्त्रणं त्रिजगतां चित्रं च जैत्रं च ते ।
मातः श्रीबगलेति नाम ललितं यस्यास्ति जन्तोर्मुखे,
त्वन्नामग्रहणेन संसदि मुखस्तम्भो भवेद् वादिनाम् ॥७॥

दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं दारिद्र्य-विद्रावणं,
भूभृद्भीशमनं चला-मृगदृशां चेतः समाकर्षणम्।
सौभाग्यैकनिकेतनं समदृशः कारुण्यपूर्णामृतं,
मृत्योर्म्मारणमाविरस्तु पुरतो मातस्त्वदीयं वपुः ॥८॥
मातर्भञ्जय मद्विपक्षिवदनं जिह्वाञ्चलं कीलय,
ब्राह्मीं मुद्रय नाशयाशु धिषणामुग्रां गतिं स्तम्भय।
शत्रूंश्चूर्णय देवि तीक्ष्णगदया गौराङ्गि पीताम्बरे,
विघ्नौघं बगले हर प्रणमतां कारुण्यपूर्णेक्षणे ॥९॥
मातर्भैरवि भद्रकालि विजये वाराहि विश्वाश्रये,
श्रीविद्ये समये महेशि बगले कामेशि रामे रमे।
मातङ्गि त्रिपुरे परात्परतरे स्वर्गापवर्गप्रदे,
दासोऽहं शरणागतः करुणया विश्वेश्वरि त्राहि माम् ॥१०॥
संरम्भे चौरसङ्घे प्रहरणसमये बन्धने वारिमध्ये,
विद्यावादे विवादे प्रकुपितनृपतौ दिव्यकाले निशायाम्।
वश्ये वा स्तम्भने वा रिपुवधसमये निर्जने वा वने वा,
गच्छँस्तिष्ठँस्त्रिकालं यदि पठति शिवं प्राप्नुयादाशु धीरः ॥११॥
नित्यं स्तोत्रमिदं पवित्रमिह यो देव्याः पठत्यादराद्,
धृत्वा यन्त्रमिदं तथैव समरे बाहौ करे वा गले।
राजानोऽप्यरयो मदान्धकरिणः सर्पा मृगेन्द्रादिका—
स्ते वै यान्ति विमोहिता रिपुगणा लक्ष्मीः स्थिराः सिद्धयः ॥१२॥
त्वं विद्या परमा त्रिलोकजननी विघ्नौघसञ्छेदिनी,
योषाकर्षणकारिणी त्रिजगतामानन्दसंवर्धिनी।
दुष्टोच्चाटनकारिणी जनमनः सम्मोहसन्दायिनी,
जिह्वाकीलनभैरवी विजयते ब्रह्मादिमन्त्रो यथा ॥१३॥
विद्यालक्ष्मीः सर्वसौभाग्यमायुः पुत्रैः पौत्रैः सर्वसाम्राज्यसिद्धिः।
मानं भोगो वश्यमारोग्य सौख्यं, प्राप्तं तत् तद् भूतलेऽस्मिन्नरेण ।१४।
यत्कृतं जपसन्नाहं गदितं परमेश्वरि।
दुष्टानां निग्रहार्थाय तद्गृहाण नमोऽस्तु ते ॥१५॥

ब्रह्मास्त्रमिति विख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
गुरुभक्ताय दातव्यं न देयं यस्य कस्यचित्॥१६॥
पीताम्बरां द्विभुजां च त्रिनेत्रां गात्रकोज्ज्वलाम्।
शिलामुद्गरहस्ताञ्च स्मरेत् तां बगलामुखीम्॥१७॥

रुद्रयामलोक्त यह सिद्धस्तोत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका त्रिकाल अथवा रात्रिकाल में पाठ करने से शत्रुस्तम्भन और मुकदमा, अन्य वाद विवाद आदि में विजय अवश्य प्राप्त होती है। १७ दिन तक प्रतिदिन १७ पाठ करने से इसका पुरश्चरण होता है। बगलामुखी के भैरव महामृत्युंजय हैं। अतः उस मन्त्र का दशांश जप करने से शीघ्र लाभ होता है।

६. भगवती मातङ्गी की साधना

(क) **प्रारम्भिक परिचय**—मतंग मुनि की कन्या के रूप में अवतरित वाणी और संगीत की अधिष्ठात्री, गृहस्थ-जीवन को सुखी एवं समृद्ध बनाने वाली तथा पुरुषार्थ चतुष्टय की प्रदात्री भगवती मातंगी महाविद्याओं में अति प्रसिद्ध देवी हैं। श्यामला, त्रिनेत्रा, रत्न-सिंहासनस्था, चतुर्भुजा, पाश-खड्ग-खेटक-अंकुशधारिणी मातंगी भक्तों को अभय और अभीष्ट प्रदान करती है। 'महात्रिपुरसिद्धान्त' में मातंगी के मन्त्र का माहात्म्य वर्णित करते हुए कहा है कि—सप्तकोटि-महामन्त्रमध्ये शीघ्र-फलप्रदः। महाभाग्यप्रदं नृणामयमेव महामनुः॥ और यह भी कहा है कि—श्रीविष्णु ने पुराकाल में मातंगी देवी की उपासना की थी। उसी के प्रभाव से वे भाग्य, सुख, कान्ति, स्थिति आदि से सम्पन्न हुए। मातंगी की साधना दक्षिणाम्नाय और पश्चिमाम्नाय दोनों के क्रम से होती है। उच्छिष्टा, सम्मोहिनी, लघुश्यामा, राज-मातंगी, वश्यमातंगी, चण्डमातंगी, कर्णमातंगी तथा षडाम्नायसाध्या सुमुखीमातंगी आदि के रूप में इनकी साधना के अनेक प्रकार हैं। रति, प्रीति, मनोभवा, क्रिया, शुद्धा, अनंगकुसुमा, अनंगमदना और मदना-लसा में इनकी आठ शक्तियां हैं। इनका मन्त्रविधान इस प्रकार है—

(ख) मन्त्र-विधान

विनियोग—अस्य श्रीमातंगीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिऋषिः विराट्-

छन्दः श्रीमातंगोदेवता ह्रीं बीजं हूं शक्तिः क्लीं कीलकं मम सर्व-वांछितार्थसिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—दक्षिणामूर्तिऋषये नमः (शिरसि), विराट्-छन्दसे नमः (मुखे), श्रीमातंगी देवतायै नमः (हृदये), ह्रीं बीजाय नमः (गुह्ये), हूं शक्तये नमः (पादयोः), क्लीं कीलकाय नमः (नाभौ), वनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-हृदयादिन्यास—ह्रीं, क्लीं, हूं, ह्रीं, क्लीं, हूं (इन बीजों से करें।

ध्यान—**श्यामां शुभ्रांशुभालां त्रिकमलनयनां रत्नसिंहासनस्थां,**
भक्ताभीष्टप्रदात्रीं सुरनिकरकरासेव्यकञ्जाङ्घ्रियुग्माम्।
नीलाम्भोजांशुकान्ति निशिचरनिकरारण्यदावाग्निरूपां,
पाशं खड्गं चतुर्भिर्वरकमलकरैः खेटकञ्चांकुशञ्च॥
मातङ्गीमावहन्तीमभिमत भयदां मोदिनीं चिन्तयामि॥[1]

अन्य ध्यान पद्य इस प्रकार भी मिलता है—

श्यामाङ्गीं शशिशेखरां त्रिनयनां सद्‌रत्नसिंहासने,
संस्थां रत्नविचित्रभूषणयुतां संक्षीणमध्यस्थलाम्।
आपीनस्तनमण्डलां स्मितमुखीं वन्दे दधानां क्रमाद्,
वेदैर्बाहुभिरङ्कुशासिलतिके पाशं तथा खेटकम्॥

मानसोपचार पूजन करके मन्त्र जप करें। मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं क्लीं हूं मातङ्ग्यै फट् स्वाहा।

पूजा के लिए 'षट्कोण, अष्टदल और भूपुर' से यन्त्र बनाएं तथा जवापुष्प से पूजा करें।

रुद्रयामल में दिए गए अन्यान्य विधानों के साथ वाग्देवता के रूप में स्मरणीय एक 'मातंगीस्तोत्र' यहां अवश्य स्मरणीय है—

(ग) श्रीमातङ्गी स्तोत्रम्

आराध्य मातश्चरणाम्बुजे ते, ब्रह्मादयो विस्तृत कीर्तिमापुः।
अन्ये परं वा विभवं मुनीन्द्राः, परां श्रियं भक्तिपरेण चान्ये॥१॥

---

१. यह पांच पदों वाला ध्यान पद्य है, अतः ऐसा ही पाठ करें।

नमामि देवीं नवचन्द्रमौलेर्मातङ्गिनीं चन्द्रकलावतंसाम् ।
आम्नायप्राप्तिप्रतिपादितार्थं, प्रबोधयन्तीं प्रियमादरेण ॥२॥
विनम्रदेवस्थिरमौलिरत्नैर्विराजितं ते चरणारविन्दम्
अकृत्रिमाणां वचसां विशुक्लं, पदात्पदं शिक्षितनूपुराभ्याम् ॥३॥
कृतार्थयन्तीं पदवीं पदाभ्यामास्फालयन्तीं कलवल्लकीं ताम् ।
मातङ्गिनीं सद्हृदयां धिनोमि,लीलांशुकां शुद्धनितम्बबिम्बाम् ॥४॥
लीलादलेनार्पितकर्णभूषां, माध्वीमदोद्घूर्णितनेत्रपद्माम् ।
घनस्तनीं शम्भुवधूं नमामि, तडिल्लताकान्तिमनर्घभूषाम् ॥५॥
चिरेण लक्ष्यां नवलोमराज्यां, स्मरामि भक्त्या जगतामधीशे ।
वलित्रयाढ्यं तव मध्यबिम्ब-नीलोत्पलांशुश्रियमावहन्तीम् ॥६॥
कान्त्या कटाक्षैः कमलाकराणां, कदम्बमालाञ्चितकेशपाशाम् ।
मातङ्गकन्यां हृदि भावयामि, ध्यायेयमारक्तकपोलबिम्बम् ॥७॥
बिम्बाधरन्यस्तललामवश्यमालोललीलालकमायताक्षम् ।
मन्दस्मितं ते वदनं महेशि, स्तुत्याऽनया शङ्करधर्मपत्नीम् ॥८॥
मातङ्गिनीं वागधिदेवतां तां, स्तुवन्ति ये भक्तियुता मनुष्याः ।
परां श्रियं नित्यमुपाश्रयन्ति, परत्र कैलासतले वसन्ति ॥९॥

नन्द्यावर्ततन्त्र, तन्त्रसार, दक्षिणामूर्तिसंहिता, वडवानलतन्त्र, मन्त्रमहोदधि, मेरुतंत्र आदि में इस सम्बन्ध में और विस्तार से लिखा गया है।

१०. महाविद्या श्रीकमला की उपासना

(क) **मूल-परिचय**—कमलात्मिका लक्ष्मी को सौभाग्यलक्ष्मी भी कहते हैं। मुख्य श्री तो श्रीविद्या महात्रिपुर सुन्दरी ही है। जब समुद्र मंथन हुआ तब कमलात्मिका लक्ष्मी उत्पन्न हुई। उन्होंने श्रीमहात्रिपुर सुन्दरी से ऐक्य प्राप्त करने के लिए बहुत आराधना की जिससे प्रसन्न होकर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ने अपने में ऐक्य कर दश महाविद्याओं में एक महाविद्या बना दिया और श्री के नाम से ही कमलात्मिका को लोक प्रसिद्ध होने का वरदान देकर वे अन्तर्ध्यान हो गईं। लक्ष्मी के अनेक भेद हैं तथा एकाक्षरी मन्त्र से लेकर मन्त्र-ध्यानादि के अनन्त भेद हैं। कमला वैष्णवी शक्ति हैं। महाविष्णु के लीलाविलास की

सहचरी कमला की उपासना वस्तुतः जगदाधारशक्ति की उपासना है। महालक्ष्मी की कृपा-प्राप्ति के लिए मानव, दानव, देव आदि सभी लालायित रहते हैं। जितनी सांसारिक सम्पदाएं हैं वे इनकी कृपा से ही प्राप्य हैं। निगम और आगमों में महालक्ष्मी की उपासना के अनेक विधान उपलब्ध होते हैं जिनमें से कुछ यहां प्रस्तुत हैं।

(ख) मन्त्र-विधान के तीन प्रकार

१. **एकाक्षर मन्त्र**—'श्रीं' इसी को चिन्तामणि-मन्त्र भी कहा है। इसके ऋषि भृगु, निचृत् छन्द और श्री देवता हैं। 'श्रां, श्रीं, श्रूं,, श्रैं, श्रौं, श्रः' इनसे कर-हृदयादिन्यास करने चाहिएं।

ध्यान है—कान्त्या कांचनसन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै—
हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम्।
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां,
क्षौमाबद्ध नितम्बबिम्बललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥

२. **चतुर्बीजात्मक मन्त्र**—'ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं'। न्यास उपर्युक्त ही हैं।

ध्यान—माणिक्यप्रतिमप्रभां हिमनिभैस्तुंगैश्चतुर्भिर्जै—
हस्ताग्राहितरत्नकुम्भसलिलैरासिच्यमानां सदा।
हस्ताब्जैर्वरदानमब्जयुगलाभीतोर्दधानां हरेः,
कान्तां काङ्क्षितपारिजातलतिकां वन्दे सरोजाननाम्॥

३. **त्रयोदशाक्षरी मन्त्र**—'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं क्षौः जगत्प्रसूत्यै नमः।

विनियोग—अस्य श्री कमलात्मिका मन्त्रस्य भृगु ऋषिः निचृच्छन्दः श्रीकमलात्मिका देवता मम सौभाग्य-सम्पत् प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—भृगुऋषये नमः (शिरसि), निचृच्छन्दसे नमः (मुखे), श्रीकमलात्मिका देवतायै नमः (हृदये), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)। 'श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः' इनसे कर-हृदयादिन्यास करें।

ध्यान—'कान्त्या कांचनसन्निभां' इत्यादि हैं।

लक्ष्मी के पांच भेद प्रमुख हैं जिनमें—१. सौभाग्यलक्ष्मी, २. महालक्ष्मी, ३. त्रिशक्तिलक्ष्मी, ४. साम्राज्यलक्ष्मी और

५. सिद्धिलक्ष्मी का समावेश है। ऊर्ध्वाम्नाय में सिद्धिलक्ष्मी के स्थान पर श्रीविद्यालक्ष्मी (महात्रिपुरसुन्दरी), पश्चिमाम्नाय में राजलक्ष्मी (कुब्जिका) तथा पूर्वाम्नायी धान्यलक्ष्मी (अन्नपूर्णा) की उपासना करते हैं। इन तीनों के साथ मिलकर कुल अष्टलक्ष्मी होती हैं। इन्हीं अष्टलक्ष्मियों के मतभेद से दो दो रूपों में विभक्त कर अन्यान्य नामों से षोडश लक्ष्मियां भी पूज्य हैं।

महालक्ष्मी आद्या शक्ति है। लक्ष्मीजी सुवर्णवर्णा, परमकान्तिमती स्मितवदना, कमलानना, कमलदलनयनयुगला और अतिशय सुन्दरी हैं। चतुर्भुजा, कमल युगल, अभय और वर चारों हाथों में धारण किए हुए हैं। किरीट, कुण्डल, केयूर, कंकण, ग्रैवेय, हेमहार, वैजयन्ती, कांची और नूपुर आदि विभूषणों से विभूषित, पीताम्बर-धारिणी और कमलासना हैं। लक्ष्मी उपासना के लिए श्रीसूक्त, लक्ष्मीहृदय तथा नारायण कवच, सम्पत्करी विद्या एवं अनेक आगमिक मन्त्र अति प्रसिद्ध हैं। रुद्रयामल में एक अत्यन्त लघु स्तोत्र भी दिया है, जिसका विधान इस प्रकार है—

कुंकुम से किसी चांदी अथवा पीतल की थाली में कुकुम, केशर, चन्दन, सिन्दूर अथवा हल्दी से षट्कोण, अष्टदल और एकरेखात्मक चतुर्द्वारयुक्त भूपुर बनाएं। उसमें लक्ष्मीदेवी का आह्वान करके गन्धाक्षत-पुष्पादि से पूजन करें और प्रार्थना करें—

त्रैलोक्यपूजिते देवि, कमले विष्णुवल्लभे।
यथा त्वमचला कृष्णे, तथा भव मयि स्थिरा॥

और इसके पश्चात् नीचे बताए हुए बारह नामों से लक्ष्मी की पूजा करें। पूजा में सुगन्धित पुष्प, केसर से रंगे हुए अक्षत, हरिद्रा अथवा कुंकुम का प्रयोग करें। नामावलि इस प्रकार है—

(ग) नामावली-विधान

ॐ श्रीं ईश्वर्यै नमः। ॐ श्रीं कमलायै नमः। ॐ श्रीं लक्ष्म्यै नमः।
ॐ श्रीं चलायै नमः। ॐ श्रीं भूत्यै नमः। ॐ श्रीं हरिप्रियायै नमः।
ॐ श्रीं पद्मायै नमः। ॐ श्रीं पद्मालयायै नमः। ॐ श्रीं समीचे नमः।
ॐ श्रीं उच्चैः नमः। ॐ श्रीं श्रियै नमः। ॐ श्रीं पद्मधारिण्यै नमः॥

इनसे पूजा करके धूप, दीप, नैवेद्य करके विसर्जन करें। इससे

सर्वविध, सुख, समृद्धि एवं स्थिर लक्ष्मी प्राप्त होती है। फलश्रुति में कहा गया है कि—

द्वादशैतानि नामानि लक्ष्मीं सम्पूज्य यः पठेत् ।
स्थिरा लक्ष्मीर्भवेत् तस्य पुत्रदारादिभिः सह ॥

इसी प्रकार लक्ष्मी की उपासना करने वाले को **'लक्ष्मी-कवच'** का पाठ करने का भी शास्त्रों में आदेश दिया है। यहां एक छोटा-सा 'लक्ष्मी-कवच' हम लिख रहे हैं, जिसका कथन स्वयं हरि-विष्णु ने नारद के आग्रह पर किया था। इस कवच का पाठ एवं धारण करके इन्द्रादि देवों ने ऐश्वर्य प्राप्त किया था। अतः इसे ऐश्वर्यप्रद भी कहा है। मूल विधान इस प्रकार है—

(घ) लक्ष्मी-कवच-विधान

विनियोग—अस्य श्री सर्वेश्वर्यप्रद लक्ष्मीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः पंक्तिश्छन्दः श्रीपद्मालया देवता सिद्धैश्वर्यजयप्राप्त्यर्थे विनियोगः।

यह विनियोग करके श्रीं बीज से न्यास एवं लक्ष्मी का ध्यान करके कवच पाठ करें।

मस्तकं पातु मे पद्मा, कण्ठं पातु हरिप्रिया।
नासिकां पातु मे लक्ष्मीः, कमला पातु लोचनम् ॥१॥
केशान् केशवकान्ता च, कपालं कमलालया।
जगत्प्रसूर्गण्डयुग्मं, स्कन्धं सम्पत्प्रदा सदा ॥२॥
ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु।
ॐ श्री पद्मालयायै स्वाहा, वक्षः सदाऽवतु ॥३॥
पातु श्रीर्मम कङ्कालं, बाहु-युग्मं च ते नमः।
ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः पादौ पातु मे सततं चिरम् ॥४॥
ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम्।
ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वाङ्गं पातु मे सदा ॥५॥
ॐ ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मां पातु सर्वतः।

(ङ) लक्ष्मीविषयक विशेषज्ञातव्य

प्रत्येक लक्ष्मी के भैरव नाम पृथक्-पृथक् हैं जो विष्णु के नामों से सम्बद्ध हैं। कमलात्मिका सौभाग्य लक्ष्मी के भैरव नारायण हैं।

सौभाग्यलक्ष्मी और नारायण का ऐक्य ही लक्ष्मीनारायण है। इनकी पूजा पूर्वाम्नाय से होती है। महालक्ष्मी के भैरव वासुदेव हैं। दुर्गा-सप्तशती में जो महालक्ष्मी हैं वे सर्वदेवों की तेजोराशि से समुद्भूत आग्नेयाम्नायात्मिका हैं। अष्टादशभुजा महालक्ष्मी उग्रचण्डमहालक्ष्मी है, उन्हीं को दुर्गालक्ष्मी भी कहते हैं। उग्रचण्डा पश्चिमाम्नाय में पूजित हैं; किन्तु ये छहों आम्नायों में पूज्या हैं। इनको मातृकामहालक्ष्मी भी कहते हैं। इनके भैरव इस प्रकार हैं: दुर्गासप्तशतीप्रोक्तलक्ष्मी के भैरव 'विष्णु' हैं, दुर्गामहालक्ष्मी के भैरव 'नवात्म' हैं और मातृका महालक्ष्मी के भैरव 'संहार' हैं। साम्राज्यलक्ष्मी के भैरव 'हरि' हैं।

(च) साम्राज्य-लक्ष्मी मन्त्र विधान और हरिमन्त्र

साम्राज्यलक्ष्मी-मन्त्र है—'श्रीं स्ह्क्ल्ह्रीं श्रीं'। इसके ऋषि हरि हैं, गायत्री छन्द है, साम्राज्यदायिनी लक्ष्मी देवता, स्ह्क्ल्ह्रीं बीज, श्रीं शक्ति है। श्रां श्रीं आदि छह बीजों से न्यास होता है तथा ध्यान है—

अतसीपुष्पसङ्काशां रत्नभूषणभूषिताम्।
शंखचक्रगदापद्मशार्ङ्गबाणधरां करैः॥१॥
षड्भिः कराभ्यां देवेशीं वरदाभयशोभिताम्।
एवमष्टभुजां ध्यायेत् सर्वसाम्राज्यसिद्धये॥२॥

पूजन के लिए बिन्दु, षट्कोण, त्रिकोण, अष्टदल और भूपुर से युक्त यन्त्र बनायें। इनके भैरव हरि का मन्त्र है—'ॐ ह्रीं हरये नमः'। यह सिद्ध मन्त्र है। अतः विनियोग और न्यास अपेक्षित नहीं हैं। ध्यान इस प्रकार है—

शङ्खचक्रगदापद्मधरं पद्मासनस्थितम्।
पीताम्बरं घनश्यामं स्मितं श्यामं हरिं भजे॥

इस प्रकार महालक्ष्मी की उपासना के अनेक प्रकार रुद्रयामल और उससे प्रभावित अन्य आगम-यामल-तन्त्रादि ग्रन्थों में दिखलाये हैं। इनमें से कोई भी विधान दीक्षा-पूर्वक गुरु कृपा से प्राप्त कर उपासना करें और सर्वविध लाभ प्राप्त करें।

६. महा विद्या और सिद्ध विद्या

महा विद्या के रूप में जो प्रधान-प्रधान देवियां हैं उनमें प्रत्येक की भेद-प्रभेदरूप में जो अन्य देवियां हैं वे सिद्ध विद्याएं कहलाती हैं। जैसे काली के अन्य भेद गुह्यकाली आदि हैं, वे सिद्ध विद्याएं हैं। कहीं-कहीं महा विद्या को सिद्ध विद्या भी कहा है। जैसे—'सिद्ध विद्या च मातंगी' इसका अभिप्राय यह है कि—मातंगी का कोई भेद सिद्ध विद्या है तो कोई महा विद्या। वैसे सिद्ध विद्या और महा विद्या में कोई अन्तर नहीं है। इनमें वाणी और अर्थ के समान परस्पर अभेद है। ये दोनों हो विद्याओं में परस्पर समष्टि होती हैं और इन दोनों ही विद्याओं से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति होती है। दस महा विद्याओं के अतिरिक्त जो दुर्गा आदि पुरुषार्थ चतुष्टय के लिए साधन हो सकतो हैं वे सब सिद्ध विद्याएं हैं। जो षट्कर्मादि क्षुद्र कर्म के लिए प्रयोग में ली जाती हैं वे यक्षिणी आदि क्षुद्र विद्याएं हैं और वे मुमुक्षु साधकों के लिए त्याज्य हैं। ये सभी अनादि परब्रह्म की शक्तियां हैं। ये ही अवतार कही जाती हैं। इन्हें तीन विद्याओं में विभाजित किया गया है। वे हैं—१. महा विद्या, २. सिद्ध विद्या और ३. क्षुद्र-विद्या। ये सभी विद्याएं षोडशी महात्रिपुर-सुन्दरी में ही समष्टि रूप हो जाती हैं। इसीलिए उन्हें 'महा विद्या—षोडशी' कहते हैं।

तन्त्रशास्त्र अगाध है। उनमें वर्णित आम्नाय, उपाम्नाय, साधकगण, क्रम-विशेष एवं व्यष्टि-समष्टिरूप भेद-प्रभेदों के कारण जो विस्तार हुआ है उसके कारण देवता और मन्त्रों की संख्या असीम हो गई है। शक्ति-विज्ञान की दृष्टि से दुर्गा सप्तशती का चिन्तन बहुत हुआ है। उसमें सप्तसती और सप्तशती के रूप में जिन शक्तियों की गणना अथवा निर्देश प्राप्त होते हैं उन सबका विवेचन करना सर्वथा असाध्य है। 'श्रीविद्यार्णव' दुर्गा सप्तशती में ३६० देवियों को परिगणना की है। चामुण्डा देवी के नवार्णमन्त्र में वर्णित 'चामुण्डायै विच्चे' पद के स्थान पर 'चण्डिकायै स्वाहा' पद आने पर वह चण्डिका दुर्गा हो जाती है। त्रिशक्ति चामुण्डा, मातृका चामुण्डा, रक्त चामुण्डा विपरीत-भद्रकालो प्रत्यंगिरा, दुर्गा भद्रकाली आदि ऐसे भेद हैं जिनका अनु-शीलन स्वतन्त्र ग्रन्थ का ही विषय है। यहां सिद्ध विद्या के प्रसंग में हम दुर्गा सप्तशती के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।

दुर्गा सप्तशती और उसके महत्त्वपूर्ण प्रयोग

भूतानि दुर्गा भुवनानि दुर्गा, स्त्रियो नरश्चाथ पशुश्च दुर्गा।
यद्यद्धि दृश्यं खलु सैव दुर्गा, दुर्गास्वरूपादपरं न किंचित् ।।

(क) दुर्गा सप्तशती

भारतीय आस्तिक सम्प्रदाय की सर्वमान्य ग्रन्थावली में मूर्धन्य-स्थान को प्राप्त "दुर्गा सप्तशती" का सम्मान वेदों के समान ही चिरकाल से किया जा रहा है। भुवनेश्वरीसंहिता में कहा गया है कि—

यथा वेदो ह्यनादिर्हि तथा सप्तशती मता।

अर्थात् जिस प्रकार वेद अनादि हैं, उसी प्रकार "सप्तशती" भी अनादि ही है। तथापि नारायणावतार श्री व्यासजी द्वारा रचित महा-पुराणों में "मार्कण्डेयपुराण" के माध्यम से मानवमात्र के कल्याण के लिए इसका प्रकाशन किया है। सात सौ पद्यों का इसमें समावेश होने से इसे "सप्तशती" का नाम दिया गया है। वैसे इसमें सात सतियों की प्रधानता होने से इसे "सप्तसती" भी कहते हैं। तीनों चरित्रों में वर्णित शक्तियों का योग होने पर सब मिलाकर इसमें २१ शक्तियां पूज्य मानी गई हैं। यथा—

(ख) चरित्रत्रय की सात-सात शक्तियां

प्रथम चरित्र की सात शक्तियाँ

१. काली, २. तारा, ३. छिन्ना, ४. सुमुखी, ५. भुवनेश्वरी, ६. बाला, ७. कुब्जिका।

द्वितीय चरित्र की सात शक्तियाँ

१. लक्ष्मी, २. ललिता, ३. काली, ४. दुर्गा, ५. गायत्री, ६. अरुन्धती और ७. सरस्वती।

तृतीय चरित्र की सात शक्तियाँ

१. ब्रह्माणी, २. वैष्णवी, ३. माहेश्वरी, ४. इन्द्राणी, ५. वाराही, ६. नारसिंही और ७. कौमारी।

(ग) चरित्रत्रय की ३६० शक्तियाँ और श्रीमन्त्र पूजा

पूरी सप्तशती में ३६० शक्तियों का नाम-कर्मादि के रूप में वर्णन भी प्राप्त होता है, जिनकी नामावली का क्रम **"श्रीविद्यार्णव"** में

दिखलाया गया है, और उसके ४०-४० नामों के ६ भाग करके नवरात्रि के दिनों में ६ दिन तक पूजन होता है। श्रीयन्त्र के नौ आवरणों में भी प्रत्येक दिन ४० नामों की, अथवा प्रत्येक आवरण में एक-एक चत्वारिंशती की पूजा होती है, और जो दशावरणी पूजा करते हैं वे अन्तिम दिन समष्टिपूजा करते हैं। इनके अतिरिक्त ७०० शक्तियों का भी क्रम है।

दुर्गा सप्तशती में सात सौ मन्त्र हैं, किन्तु वे उवाचमन्त्र, अर्धश्लोक, एवं त्रिपादश्लोकों के संग्रह से पूर्ण होते हैं। हजारों वर्षों से लाखों नर-नारियों के द्वारा पाठ होते रहने के कारण इसके पाठ्यांशों में भी बहुधा अन्तर होता आया है और कात्यायनीतन्त्र, चिदम्बर-संहिता, मरीचितन्त्र, रुद्रयामल आदि सैकड़ों तन्त्रों में इसके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न निर्देश भी प्राप्त होते हैं।

ऐसे पाठान्तरों के अतिरिक्त केवल बीजमन्त्रों की **"बीजदुर्गा, लघुदुर्गा, त्रयोदशश्लोकी, सप्तश्लोकी दुर्गा"** आदि अनेक रूपों से भी इसका संकोच-विकास होता रहा है। एक सहस्राक्षरी बीजमन्त्रों से गर्भित होने से इसका **सहस्राक्षरी-मन्त्र** भी प्राप्त है जबकि एक **'सप्तशती पूरे सात सौ पद्यों'** की भी उपलब्ध हुई है जिसमें अर्धश्लोकों, एवं उवाचमन्त्रों की गणना नहीं की गई है।

(घ) तान्त्रिक दृष्टि और सप्तशती

तन्त्रशास्त्रों में इसका सर्वाधिक महत्त्व प्रतिपादित करने के कारण तान्त्रिक प्रक्रियाओं का इसके पाठ में बहुधा उपयोग होता आया है। आगमों में आम्नायमूलक उपासना-पद्धति पर अधिक बल दिया गया है। तदनुसार दुर्गासप्तशती को पश्चिमाम्नायात्मिका कहा गया है; किन्तु प्रकारान्तर से यह सर्वाम्नायात्मिका भी सिद्ध की गई है। इसके साथ ही साधक चाहे शाक्त न होकर गाणपत्य, शैव अथवा वैष्णव हो, तो भी वे सभी शक्ति की कृपा प्राप्त कर स्वयं को सशक्त बनाने के लिए इसका पाठ करते हैं। पाठकर्ता अपने-अपने आम्नायों के अनुसार इसके पाठ-प्रकारों में अनेकविध तान्त्रिक-प्रक्रियाओं का समावेश करके सद्यः सिद्धि प्राप्त करते हैं। धर्मार्थकामादि की प्राप्ति के लिए इसके एक पाठ

से लेकर एक लाख पाठ तक किए जाते हैं और मन्त्रों के द्वारा हवन किए जाते हैं।

(ङ) नवार्ण-मन्त्र

दुर्गा सप्तशती के तीनों चरित्रों की अधिष्ठात्रियां क्रमशः महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती हैं। सर्वसाधारण के लिए प्रचलित नवार्णमन्त्र (नव=९, अर्ण=अक्षर वाला) त्रिबीज और "चामुण्डायै विच्चे" पद से युक्त प्रसिद्ध है, जबकि इन तीनों महादेवियों के पृथक्-पृथक् मन्त्र भी हैं और उनके भी नौ-नौ अक्षर हैं। साथ ही उनका जप करने से पूर्व उनके भैरव-मन्त्रों का भी दशांश जप आवश्यक होता है। ये मन्त्र **"चरिते चरिते राजन्"** इस आदेश के अनुसार प्रत्येक चरित के साथ जपनीय हैं।

(च) अंगानुष्ठान-क्रम

१. दुर्गा सप्तशती के पाठ में मार्कण्डेय-पुराणोक्त सात सौ पद्य-मन्त्रों का पाठ करने से पूर्व तदंगत्वेन किये जाने वाले पाठ और न्यासों के सम्बन्ध में अनेक क्रम प्राप्त होते हैं। सामान्यतः "कवच, अर्गला तथा कीलक" इन तीन का पाठ करके रात्रिसूक्त का पाठ करते हैं और १०८ नवार्ण का जप करके मूलपाठ के पश्चात् १०८ नवार्णजप, देवी-सूक्त तथा रहस्यत्रय का पाठ करते हैं। किन्तु इस क्रम को भास्करराय मखी (महान् सिद्ध तन्त्राचार्य) स्वीकार नहीं करते हैं। उनके अनसार—१. कवच, २. अर्गला, ३. कीलक, ४. नवार्ण जप और ५. रात्रि सूक्त के पश्चात् सप्तशती पाठ करके पुनः १. देवी सूक्त, २. नवार्ण जप तथा ३ से ५ रहस्यत्रय पाठ" पूर्व पंचांग और उत्तर पंचांग के रूप में स्वीकृत हैं। इस प्रकार यह **"दशांग-युत-सप्तशती पाठ"** माना जाता है।

रात्रिसूक्तं जपेदादौ मध्ये सप्तशतीस्तवम्।
अन्ते तु पठनीयं वै देवीसूक्तमिति क्रमः॥ (मरीचिकल्प)
शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवार्णकम्।

इन दोनों वचनों के अनुसार यह क्रम पूर्ण माना गया है।

२. शास्त्रों में यह वचन भी आता है कि शक्ति के साथ भैरव की उपासना भी अनिवार्य है। भैरव के अभाव में शक्ति का अंग पूर्ण नहीं होता। **"यतिदण्डेश्वर्य-विधान"** में भी कहा गया है कि—

शक्तयः सर्वदा सेव्या भैरवेण समन्विताः ।

इसके अनुसार साधक-सम्प्रदाय में अष्टोत्तरशतनामरूप बटुक-भैरव की नामावली का पाठ भी दुर्गासप्तशती के अंगों में जोड़ दिया जाता है। इसका प्रयोग तीन प्रकार से होता है—

१. आदि में नवार्ण-मन्त्र जप से पूर्व पाठ ("भैरवो भूतनाथश्च" से प्रभविष्णुरितीव हि" तक अथवा नमोऽन्त नामावली)।

२. प्रत्येक चरित्र के आद्यन्त में १-१ पाठ।

३. प्रत्येक उवाचमन्त्र के आस-पास सम्पुट देकर पाठ।

इनके अतिरिक्त प्रत्येक अध्याय के आद्यान्त में भी पाठ किया जा सकता है। इस प्रकार **'भैरवनामावली-समन्वित पाठ'** अतीव लाभप्रद एवं विघ्ननिवारक माने गये हैं। भैरव-नामावली के समान ही कामना-भेद से अन्य मन्त्र, नामावली, सूक्त आदि के प्रयोग भी होते हैं।

३. रात्रिसूक्त (विश्वेश्वरीं जगद्धात्री०) और देवीसूक्त (नमो देव्यै महादेव्यै) के पाठों के प्रकार में वैदिकसूक्तों के पाठ भी प्रचलित हैं, जिनमें "रात्री व्यख्यदायती" इत्यादि ऋग्वेद के मं० १०, अ० १०, सूक्त १२७, मन्त्र १ से ८ तक रात्रिसूक्त और "अहं रुद्रेभिर्वसुभिः" आदि ऋग्वेदोक्त ८ मन्त्रों का भी पाठ होता है। कुछ प्राचीन पाण्डुलिपियों में इन दोनों वैदिकसूक्तों के मन्त्रों की संख्या ८-८ से बढ़कर पूरे सूक्त के पाठ की भी सूचना है।

४. एक अन्य पद्धति के अनुसार "त्रिसूक्त"—(महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती के पुराणोक्त) भी पठनीय माने गये हैं। ये सूक्त आरम्भ में तीनों कवचार्गलाकीलक के पश्चात् प्रयुक्त होते हैं, जबकि कुछ विद्वान् इनका पाठ प्रत्येक चरित्र के साथ क्रमशः १-२-३ के आरम्भ में करते हैं। ये सूक्त भी दो प्रकार के उपलब्ध होते हैं, जिनमें कुछ सामान्य अन्तर अथवा पाठभेद हैं।

५. कतिपय पद्धतियों में देव्यथर्वशीर्ष का पाठ भी होता है।

६. रहस्यत्रय का पाठ कुछ विद्वान् आवश्यक नहीं मानते हैं। इसके स्थान पर काश्मीर में 'लघुस्तव' का पाठ किया जाता है। उसी प्रकार कहीं स्वेष्ट स्तोत्र का ही पाठ कर लिया जाता है।

७. सिद्धकुंजिकास्तोत्र का पाठ भी अन्त में होता है, जो कि—

यस्तु कुंचिकया देवि ! हीनां सप्तशतीं पठेत्।
न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ।। कुं० स्तो० १०।।

के अनुसार स्वयं अपनी आवश्यकता अभिव्यक्त करता है। दुर्गासप्तशती के साथ प्रकाशित रुद्रयामलोक्त कुंचिकास्तोत्र के अतिरिक्त एक अन्य 'तान्त्रिक कुंचिकास्तोत्र, भी है, जिसका पाठ अतिलाभदायक बतलाया है।

(छ) उपांग योजना

जब सप्तशती का पाठ दशांग, द्वादशांग आदि क्रम से आगे बढ़ता हुआ चौबीस अंग तक पहुंचता है, तो उसमें **"चण्डिका-दल"** और **"चण्डिका-हृदय"** के पाठ भी जुड़ जाते हैं और अन्त में **"सर्वसिद्धि-स्तोत्र"** का पाठ भी बढ़ जाता है। यदि इसी क्रम को अधिक महत्त्वपूर्ण बनाया जाता है तो उसमें प्रारम्भ में तो १. **रक्षोघ्नसूक्त**, २. **'यो भूतानाम्'** आदि ८ मन्त्र, ३. **अथर्वशीर्ष**, ४. **श्रीसूक्त**, ५. **रुद्रसूक्त**, अन्त में ६. **वास्तुसूक्त**, और **सद्योजातादि** पांच मन्त्रों का पाठ भी समाविष्ट कर लेते हैं। इस प्रकार २४, ३० और ५९ अंग तक के पाठों का विधान है।

(ज) नवरात्र के नौ पाठों का क्रम

शाक्त उपासकों के लिए नवरात्र-पर्व का बहुत ही महत्त्व माना गया है। वैसे तो आश्विन मास के शुक्लपक्ष में आने वाले प्रतिपदा से नवमी तक के दिनों को ही "नवरात्र" के रूप में सर्वत्र माना जाता है, किन्तु पूरे वर्ष में क्रमश १. चैत्र, २. आषाढ़, ३. आश्विन और ४. माघ में चार नवरात्र आते हैं और उनमें देवी उपासना का विधान होता है। उनमें भी अलग-अलग ढंग से तिथियों का निर्णय करके साधना आरम्भ की जाती हैं। अतः उनमें केवल नौ दिन ही होते हैं, ऐसा भी नहीं है। प्रायः १० दिन, १५ दिन और इनसे न्यूनाधिक दिनों में भी ऐसी साधनाएं होती है।

दुर्गासप्तशती-पाठ की प्रक्रियाओं में महत्त्वपूर्ण एक क्रम नौ प्रकार के पाठों का इस प्रकार प्राप्त होता है जो कि रुद्रयामल में निर्दिष्ट है—

दिन	पाठ-नाम	पाठ-प्रकार
१.	महाविद्या	प्रथम, द्वितीय और तृतीय-चरित्र
२.	महातन्त्री	प्रथम, द्वितीय और तृतीय ,,
३.	चण्डी	प्रथम, द्वितीय और तृतीय ,,
४.	सप्तशती	द्वितीय, प्रथम और तृतीय ,,
५.	मृतसंजीवनी	तृतीय, प्रथम और द्वितीय ,,
६.	महाचण्डी	तृतीय, द्वितीय और प्रथम ,,
७.	रूपदोपिका	"रूपदेहि०" इस श्लोकार्ध और नवार्ण मन्त्र से सम्पुटित पाठ
८.	चतुः षष्टि-योगिनी	चौंसठ योगिनियों के मंत्रों के योग से पाठ (जिसके आद्यन्त में काली, लक्ष्मी और सरस्वती की योगिनियां रहें।
९.	परा (चण्डीपाठ)	पराबीज से सम्पुटित पाठ।

(दसवें दिन "उत्कीलन-पाठ" भी होता है जिसके लिए स्वसम्प्रदाय और गुर्वाज्ञा प्राप्त होने पर अधोदर्शित क्रम से पाठ करें।

१०.	उत्कीलन	अध्याय क्रम १३, १, २, १२, ३, ११, ४, १०, ५, ८, ६, ७ और ९।

नवरात्र में **"खड्गमाला"** के पाठ का क्रम अपनाकर यदि पाठ किया जाए तो उसका क्रम इस प्रकार होगा—

(१) काली, (२) तारा, (३) बाला, (४) गायत्री, (५) गुह्य-काली, (६) भुवनेश्वरी, (७) चामुण्डा (८) कुब्जिका, (९) महात्रिपुर-सुन्दरी तथा **(१०) अपराजिता।**

तान्त्रिक ग्रन्थों में नवरात्रि पर विस्तार से विचार हुआ है तथा कृष्ण पक्ष की षष्ठी से पूर्णिमा तक २७ दिन की और अष्टमी से पूर्णिमा

तक का नवरात्र मनाने का भी निर्देश किया है। ये नवरात्र सृष्टि, और संहारात्मक भी होते हैं।

(झ) एक अति महत्त्वपूर्ण प्रयोग—"सार्ध नवचण्डी पाठ"

ऐसे अनुष्ठान-विधानों में सद्यः फलदायो एक प्रयोग **"सार्ध-नवचण्डी पाठ"** का भी विद्वानों द्वारा किया जाता है। यह प्रयोग रुद्रयामल तथा 'वाराहीतन्त्र' में दर्शित है। इस अनुष्ठान में ११ ब्राह्मणों द्वारा सप्तशती पाठ, एक ब्राह्मण द्वारा सप्तशती के अर्धांश का पाठ तथा एक ब्राह्मण द्वारा षडंग रुद्राष्टाध्यायो का पाठ होता है। इसका फल वहां इस प्रकार बतलाया गया है कि—जो "सार्धनवचण्डो" प्रयोग को करता है वह प्राणान्तक भय से मुक्त होता है। राज्य, श्री, सर्वविधसम्पत्ति एवं सभी ईप्सित कामनाओं को प्राप्त करता है।

रुद्रयामल में कहा गया है कि—सार्ध नवचण्डी प्रयोग अति गुप्त है और देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। इस प्रयोग को मैं तुम्हें कहता हूं। तुम इसे सावधान होकर सुनो।

इस प्रयोग में दुर्गासप्तशती के पूर्ण पाठ नौ ब्राह्मणों द्वारा तथा एक ब्राह्मण द्वारा अर्धपाठ किया जाता है। अर्ध-पाठ का क्रम इस प्रकार है—मधुकैटभनाश, महिषासुर-विनाश, शक्रादिस्तुति, देवीसूक्त, नारायणस्तुति, फलानुकीर्तन और वरप्रदान। इसी को अर्धपाठ कहते हैं और एक पण्डित रुद्राष्टाध्यायी का पाठ करता है।

यह अर्धपाठ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला कहा गया है। अर्धपाठ के विना नौ पाठों का फल प्राप्त नहीं होता है।

यह प्रयोग शुभ मुहूर्त अथवा पर्व के दिनों में किसी दिन ११ ब्राह्मणों द्वारा किया जाता है। सर्वप्रथम कुमारिका-पूजन करके उसे भोजन कराए तथा प्रार्थनापूर्वक उससे प्रयोग करने की अनुमति प्राप्त करे। तदनन्तर गृहशान्ति-विधान के अनुसार गणपति-स्मरण से भद्रपीठ पूजनान्त प्रयोग करे। भद्रपीठ अष्टदल एवं त्रिकोण से बनाकर उससे भवानीशंकर की सांगोपांग पूजा की जाए। तत्पश्चात् एक ब्राह्मण रुद्राष्टाध्यायी पाठ तथा ९ ब्राह्मण सप्तशती पाठ करें। एक ब्राह्मण अंग पाठ करके बाद में अर्धपाठ करे जिसमें—प्रथमाध्याय से चौथे अध्याय (शक्रादिस्तुति) में "रक्ष सर्वतः" तक, पंचमाध्याय में प्रारम्भ से "भक्तिविनम्रमूर्तिभिः" तक, फिर एकदशाध्याय में प्रारम्भ

से "वरदा भव" तक तथा अन्त में १२ और १३वां अध्याय का पूर्ण पाठ करें।

पाठ के पश्चात् उत्तरांग करके अग्निस्थापनादि से पूर्णाहुत्यन्त हवन करे। इसमें नवग्रह की समिधाओं से गृहयाग, सप्तशती के पूर्ण पाठ मन्त्रों का हवन श्रीसूक्तहवन तथा शिवमन्त्र "रूद्रसूक्त" का हवन भी अपेक्षित है। तदनन्तर ब्राह्मण-भोजन कुमारिका एवं बटुकों को भोजन कराये।

इस प्रयोग के द्वारा दुःसाध्य रोगों से मुक्ति मिलती है और असाध्य रोगी नीरोगी बन जाते हैं।

११. शान्तिदुर्गादि नौ दुर्गाओं के मन्त्र-विधान

दुर्गादेवी के अनेक रूपों की साधना आगम शस्त्रों में बतलाई गई हैं, उनमें नौ दुर्गाओं के पृथक्-पृथक् प्रयोग अति महत्त्वपूर्ण हैं। अतः उनका संक्षिप्त विधान लोक हितार्थ लिख रहे हैं—

(क) १. शान्तिदुर्गा : विनियोग—अस्य श्रीशान्तिदुर्गामन्त्रस्य शेषपर्यंकशायी ऋषिः जगतीच्छन्दः, शान्तिदुर्गादेवता दुं बीजं गीं शक्तिः देवीं कीलकं मम श्रीशान्तिदुर्गाप्रसादसिद्ध्यर्थे मन्त्रजपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—शेषपर्यंकशायि ऋषये नमः (शिरसि)। जगतीच्छन्दसे नमः (मुखे)। शान्तिदुर्गादेवतायै नमः (हृदये)। दुं बीजाय नमः (गुह्ये)। गीं शक्तये नमः (पादयोः)। देवीं कीलकाय नमः (नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-हृदयादिन्यास—दुं (अंगु० हृदयाय०)। गीं तर्जनी० (शिरसे०)। देवीं (मध्यमा० शिखायै०)। शरणं (अना० कवचाय०)। अहं (कनि० नेत्रत्रयाय०)। प्रपद्ये (करतल० अस्त्राय०)।

ध्यान—

निर्भर्त्स्य दैत्यानखिलान्तक द्रुहां शान्तामराजोरगभोग—शायिनीम्।
भक्ताखिलोपद्रवहेतुभञ्जिनीं देवीं प्रपद्ये दिविषद्भिरीडिताम्॥

मूलमन्त्र—"दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये।"

२. **अग्निदुर्गा**—अस्य श्रीअग्निदुर्गामन्त्रस्य काश्यप ऋषिः

अनुष्टुप् छन्दः अग्निदुर्गा देवता दुं बीजं स्वाहा शक्तिः गीं कीलकं मम श्रीअग्निदुर्गाप्रसादसिद्ध्यर्थे मन्त्रजपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—काश्यपऋषये नमः (शिरसि) अनुष्टुप् छन्दसे नमः (मुखे)। अग्निदुर्गा देवतायै नमः (हृदये)। दुं बीजाय नमः (गुह्ये)। स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः) गीं कीलकाय नमः (नाभौ)। विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-हृदयादिन्यास—जातवेदसे सुनवाम (अं० हृ०)। सोममराती यतः (त० शिरसे०)। निदहातिवेदः (म० शिखा०)। स नः पर्षदति-दुर्गाणि विश्वा (अ०क०)। नावेव सिन्धुं (कनि० नेत्र०)। दुरितात्यग्निः (कर० अस्त्राय०)।

ध्यान—

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां,
कन्याभिः करवालखेट विलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखें विशिखाँश्चापं गुणं तर्जनीं,
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥

मूलमन्त्र—

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति
वेदः स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा नावेव
सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥

३. **वनदुर्गा**—अस्य श्रीवनदुर्गामन्त्रस्य आरण्यकऋषिः जगतीच्छन्दः वनदुर्गादेवता ॐ बीजं श्रीं शक्तिः क्रां कीलकं मम श्री वनदुर्गाप्रसादसिद्ध्यर्थे मन्त्रजपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—आरण्यकऋषये नमः (शिरसि)। जगतीच्छन्दसे नमः (मुखे)। वनदुर्गादेवतायै नमः (हृदये)। ॐ बीजाय नमः (गुह्ये)। श्री शक्तये नमः (पादयोः)। क्रां कीलकाय नमः (नाभौ)। विनियोगाय नम. (सर्वांगे)।

कर-हृदयादिन्यास—उत्तिष्ठ पुरुषि (अं० हृ०)। किं स्वपिषि (त० शिरसे०)। भयं मे समुपस्थितम् (म० शिखायै०)। यदि शक्यम-शक्यं वा (अन्त० क०)। तन्मे दुर्गे भगवति (कनि० नेत्र०)। शमय स्वाहा (कर० अस्त्राय०)।

ध्यान—अरिशङ्खकृपाणखड्गबाणान्, सधनुःशूलकतर्जना दधाना।
भवतान्महिषोत्तमङ्गसंस्था, वनदुर्गा यशसे श्रियै च दुर्गा॥

मूलमन्त्र—उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितम्। यदि शक्यमशक्यं ना तन्मे दुर्गे भगवति शमय शमय स्वाहा।

४. गिरिदुर्गा—अस्य श्रीगिरिदुर्गामन्त्रस्य नारायणऋषिः अनुष्टुप्छन्दः गिरिदुर्गादेवता ह्लां बीजं ह्लीं शक्तिः क्लीं कीलकं मम श्रीगिरिदुर्गाप्रसादसिद्ध्यर्थे मन्त्रजपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—नारायणऋषये नमः (शिरसि)। अनुष्टुप् छन्दसे नमः (मुखे)। गिरिदुर्गादेवतायै नमः (हृदये)। ह्लां बीजाय नमः (गुह्ये)। ह्लीं शक्तये नमः (पादयोः)। क्लीं कीलकाय नमः (नाभौ)। विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-हृदयादिन्यास—'ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः' (इन छह बीजों से क्रमशः)।

ध्यान—गिरिराजकुमारिकां भवानीं शरणागतपालने च दक्षाम्।
वरदाभयशङ्खचक्रहस्तां वरदात्रीं स्मरतां स्मरामि नित्यम्॥

मूलमन्त्र—"ॐ ह्लीं"।

५. अम्बिका दुर्गा—अस्य श्री अम्बिकादुर्गामन्त्रस्य मार्कण्डेय-ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः श्रीअम्बिकादुर्गा देवता ॐ बीजं श्रीं शक्तिः दुं कीलकं मम श्री अम्बिकादुर्गा महालक्ष्मीप्रसादसिद्ध्यर्थे मन्त्रजपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—मार्कण्डेय ऋषये नमः (शिरसि)। अनुष्टुप् छन्दसे नमः (मुखे)। अम्बिकादुर्गादेवतायै नमः (हृदये)। ॐ बीजाय नमः (गुह्ये)। श्रीं शक्तये नमः (पादयोः)। कीलकाय नमः (नाभौ)। विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-हृदयादिन्यास—"श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः" (इन छह बीजों से क्रमशः)

ध्यान—या सा पद्मासनस्था पृथुलकटितटी पद्मपत्रायताक्षी,
गम्भीरावर्तनाभिः स्तनभरनमिता शुभ्रवस्त्रोत्तरीया।
लक्ष्मीर्दिव्यैर्गजेन्द्रैर्मणिगणखचितैः स्नापिता हेमकुम्भै—
र्नित्यं सा पद्महस्ता मम वसतु गृहे सर्वमाङ्गल्ययुक्ता॥

मूलमन्त्र—"ॐ श्रीं दुर्गायै नमः।"

६. **चण्डिका दुर्गा**—अस्य श्रीचण्डिकादुर्गामन्त्रस्य दीर्घतमा ऋषिः ककुप् छन्दः चण्डिकादुर्गा देवता ॐ बीजं ह्रीं शक्तिः धूं कीलकं मम श्रीचण्डिकादुर्गाप्रसादसिद्ध्यर्थे मन्त्रजपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—दीर्घतमसे ऋषये नमः (शिरसि)। ककुप्छन्दसे नमः (मुखे)। चण्डिकादुर्गादेवतायै नमः (हृदये)। ॐ बीजाय नमः (गुह्ये)। ह्रीं शक्तये नमः (पादयोः)। धूं कीलकाय नमः (नाभौ)। विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

कर-हृदयादिन्यास—ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः (इन छह बीजों से क्रमशः)

ध्यान—**शशलाञ्छनभूषितां त्रिनेत्रां वरदाभयशूलबाणहस्ताम्।**
धनुखेट्कधारिणीं महेशीं त्रिपुरारिवधूमहं भजामि॥

मूलमन्त्र—"ॐ ह्रीं ॐ धूं दुर्गायै स्वाहा।"

७. **महिषमर्दिनीदुर्गा**—अस्य श्रीमहिषमर्दिनी दुर्गामन्त्रस्य ककुप्छन्दः महिषमर्दिनीदेवता ॐ बीजं महिषमर्दिनीशक्तिः स्वाहा कीलकं मम श्रीमहिषमर्दिनीदुर्गाप्रसादसिद्ध्यर्थे मन्त्रजपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—दीर्घतमसे ऋषये नमः (शिरसि)। ककुप्छन्दसे नमः (मुखे)। महिषमर्दिनीदुर्गादेवतायै नमः (हृदये)। ॐ बीजाय नमः (गुह्ये)। महिषमर्दिन्यै शक्तये नमः (पादयोः)। स्वाहा कीलकाय नमः (नाभौ)। विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

कर-हृदयादिन्यास—"महिषसिंहे हुं फट्।" (इस मन्त्र से करें।)

ध्यान—

अष्टौ भुजाङ्गीं महिषस्य मर्दिनीं सशंखचक्रां शरचापधारिणीम्।
तां सूर्यकोटिप्रतिमां लुलस्थितां दुर्गां सदा तां शरणं व्रजाम्यहम्॥

मूलमन्त्र—"ॐ महिषमर्दिनि स्वाहा"

८. **जयदुर्गा**—अस्य श्रीजयदुर्गामन्त्रस्य दुर्वासा ऋषिः ककुप् छन्दः जयदुर्गा देवता दुं बीजं श्रीं शक्तिः क्लीं कीलकं मम श्रीजय-दुर्गाप्रसादसिद्ध्यर्थे मन्त्रजपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—दुर्वाससे ऋषये नमः (शिरसि)। ककुप्छन्दसे नमः (मुखे)। जयदुर्गादेवतायै नमः (हृदये)। दुं बीजाय नमः (गुह्ये)।

श्रीं बीजाय नमः (पादयोः)। क्लीं कीलकाय नमः (नाभौ)। विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

कर-हृदयादिन्यास—"दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा" (इस मन्त्र से करें)

ध्यान—कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां,
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं,
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धसंघैः।।

मूलमन्त्र—"दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा"।

९. **नवाक्षरीदुर्गा**—अस्य श्रीनवाक्षरीदुर्गामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः गायत्रीच्छन्दः श्रीमहालक्ष्मीर्देवता ऐं बीजं ह्रीं शक्तिः क्लीं कीलकं मम श्रीमहालक्ष्मीप्रसादसिद्ध्यर्थे मन्त्रजपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—ब्रह्मणे ऋषये नमः (शिरसि)। गायत्रीच्छन्दसे नमः (मुख)। श्रीमहालक्ष्मीदेवतायै नमः (हृदये)। ऐं बीजाय नमः(गुह्ये)। ह्रीं शक्तये नमः (पादयोः)। क्लीं कीलकाय नमः (नाभौ)। विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

कर-हृदयादिन्यास—" १. ऐं ह्रीं क्लीं, २. चामुण्डायै, ३. विच्चे" (इन तीन खण्डों से दो बार न्यास करें)।

ध्यान—पूर्णेन्दुप्रतिमद्युतिं निजवतंसेन्द्वंशधाराप्लुतां,
भक्तानां कृपया कराग्रविलसद् दिव्यायुधैरापदः।
क्रूरारिग्रहभूतरोगविपुलत्रासप्रदांस्तत्क्षणात्,
संहृत्याशु तदिष्टदामिह महालक्ष्मीं सदा भावये।।

मूल-मन्त्र—"ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे"।

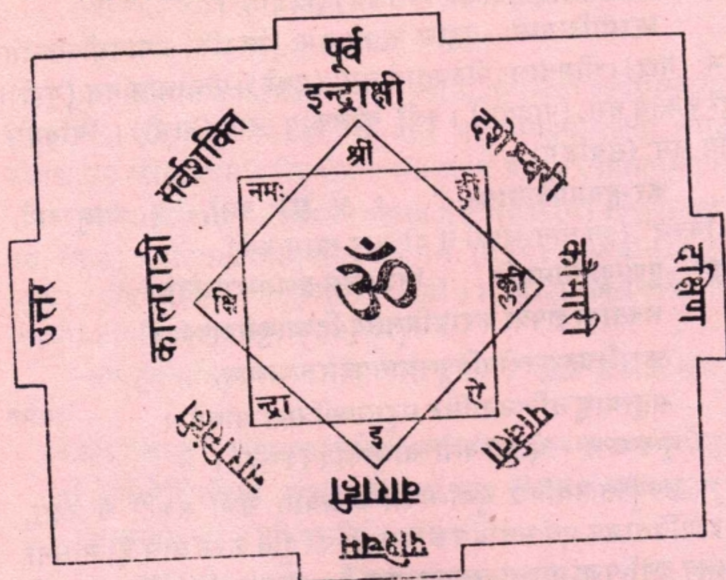
उपर्युक्त नवविध दुर्गा-मन्त्रों के प्रयोग सभी संकटों से रक्षा, दरिद्रताविनाशक एवं सर्वविध कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं। साधना के समय दुर्गा-पूजा करना अत्यावश्यक है। अन्य आदि और अन्त की विधियां अन्य पूजा-विधानों के समान ही हैं। इनमें प्रत्येक देवी के स्वतन्त्र पृथक्-पृथक् यन्त्र भी हैं; किन्तु यहां विस्तार के भय से अधिक नहीं लिखा है। अतः यन्त्र-पूजा के इच्छुक दुर्गा-यन्त्र में ही सभी की पूजा करें।

(ख) इन्द्राक्षी-दुर्गा का अपूर्व प्रयोग—दुर्गादेवी के अनन्तरूप हैं। माता दुर्गा ने अपने भक्तों की रक्षा एवं उनकी भिन्न-भिन्न भावनाओं के अनुसार आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अनेक रूपों में अवतार लिए हैं। विभिन्न रोगों की निवृत्ति के लिए 'इन्द्राक्षी-दुर्गा' का मन्त्र-जप, कवच-पाठ, स्तोत्रपाठ तथा यन्त्र-पूजा आदि का निर्देश रुद्रयामलोक्त **'इन्द्राक्षी पञ्चाङ्ग'** में हुआ है। यहां हम कुछ पाठ प्रस्तुत कर रहे हैं।

इन्द्राक्षी-दुर्गा की आराधना करने के इच्छुक सर्वप्रथम गुरु और गणपति का स्मरण करके अपने समक्ष एक पट्टे पर, किसी पात्र में अथवा भोज-पत्र पर निम्नलिखित 'इन्द्राक्षी-यन्त्र' अष्टगन्ध से दाडिम की लेखनी से बनायें। तदनन्तर यन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा करके षोडशोपचार पूजा करें और उसके बाद मन्त्र-जप करें। मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं इन्द्राक्षि नमः।

यन्त्र का स्वरूप—



मन्त्रजप के आदि और अन्त में कवच का पाठ करना उत्तम माना गया है। इससे शरीर की रक्षा के साथ ही मन्त्र-जप में विघ्न डालने वाले क्षुद्र देवों का प्रभाव नहीं होता है।

इन्द्राक्षीं कवच स्तोत्रम्

विनियोग—ॐ अस्य श्रीइन्द्राक्षीकवचस्तोत्रममहामन्त्रस्य शचीपुरन्दर ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः। इन्द्राक्षी दुर्गा देवता। लक्ष्मीर्बीजम्। भुवनेश्वरी शक्तिः, भवानीति कीलकम्, मम इन्द्राक्षीप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

न्यास—ॐ इन्द्राक्षीत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ महालक्ष्मीरिति तर्जनीभ्यां नमः। ॐ माहेश्वरीति मध्यमाभ्यां नमः। ॐ अम्बुजाक्षीत्यनामिकाभ्यां नमः। ॐ कात्यायनीति कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ कौमारीति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

ॐ इन्द्राक्षीति हृदयाय नमः। ॐ महालक्ष्मीरिति शिरसे स्वाहा। ॐ माहेश्वरीति शिखायै वषट्। ॐ अम्बुजाक्षीति कवचाय हुम्। ॐ कात्यायनीति नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ कौमारीत्यस्त्राय फट्। ॐ भूर्भुवस्वरोमिति दिग्बन्धः।

भगवती इन्द्राक्षी का ध्यान

नेत्राणां दशभिश्शतैः परिवृतामत्युग्रचर्मम्बरां,
हेमाभां महतीं विलम्बितशिखामामुक्तकेशान्विताम्।
घण्टामण्डितपादपद्मयुगलां नागेन्द्रकुम्भस्तनी—
मिन्द्राक्षीं परिचिन्तयामि मनसा कल्पोक्तसिद्धिप्रदाम्॥
इन्द्राक्षीं द्विभुजां देवीं पीतवस्त्रद्वयान्विताम्।
वामहस्ते वज्रधरां दक्षिणेन वरप्रदाम्॥
इन्द्रादिभिः सुरैर्वन्द्यां वन्दे शंकरवल्लभाम्।
एवं ध्यात्वा महादेवीं जपेत् सर्वार्थसिद्धये॥
इन्द्राक्षीं नौमि युवतीं नानालंकारभूषिताम्।
प्रसन्नवदनाम्भोजामप्सरोगणसेविताम्॥

इन्द्र उवाच

कवच पाठ—

इन्द्राक्षी पूर्वतः पातु पात्वाग्नेय्यां दशेश्वरी।
कौमारी दक्षिणे पातु नैऋंत्यां पातु पार्वती॥

वाराही पश्चिमे पातु वायव्ये नारसिंह्यपि।
उदीच्यां कालरात्री मामैशान्यां सर्वशक्तयः॥
भैरव्यूर्ध्वं सदा पातु पात्वधो वैष्णवी सदा।
एवं दश दिशो रक्षेत् सर्वांगं भुवनेश्वरी॥

इन्द्राक्षी-मन्त्र

१. ॐ नमो भगवत्यै इन्द्राक्ष्यै महालक्ष्म्यै सर्वजनवशंकर्यै सर्वदुष्टग्रहस्तम्भिन्यै स्वाहा।

२. ॐ नमो भगवति पिंगलभैरवी त्रैलोक्यलक्ष्मि त्रैलोक्यमोहिनीन्द्राक्षि मां रक्ष हुं फट् स्वाहा।

ॐ नमो भगवति भद्रकालि महादेवि कृष्णवर्णे तुंगस्तनि शूर्पहस्ते कवाटवक्षः स्थले कपालधरे परशुधरे चापधरे विकृतरूपधरे विकृतरूपे महाकृष्णसर्पयज्ञोपवीतिनि भस्मोद्वलितसर्वगात्रीन्द्राक्षि मां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

३. ॐ नमो भगवति प्राणेश्वरि पद्मासने सिंहवाहने महिषासुरमर्दिन्युष्णज्वरपित्तज्वरवातज्वरश्लेष्मज्वरकफज्वरालापज्वरसंनिपातज्वरकृत्रिमज्वरकृत्यादिज्वरैकाहिकज्वरद्व्याहिकज्वरत्र्याहिकज्वरचतुराहिकज्वरपंचाहिकज्वरपक्षज्वरमासज्वरषण्मासज्वरसंवत्सरज्वर - सर्वांगज्वरान् नाशय नाशय हर हर जहि जहि दह दह पच पच ताडय ताडयाकर्षयाकर्षय विद्विषः स्तम्भय स्तम्भय मोहय मोहयोच्चाटयोच्चाटय हुं फट् स्वाहा।

४. ॐ ह्लीं ॐ नमो भगवति प्राणेश्वरि पद्मासने लम्बोष्ठि कम्बुकण्ठिके कलि कामरूपिणि परमन्त्रपरयन्त्रपरतन्त्रप्रभेदिनि प्रतिपक्षविध्वंसिनि परबलदुर्गविमर्दिनि शत्रुकरच्छेदिनि सकलदुष्टज्वरनिवारिणि भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसयक्षयमदूतशाकिनीडाकिनीकामिनीस्तम्भिनीमोहिनीवंशकरीकुक्षिरोगशिरोरोगनेत्ररोगक्षयापस्मारकुष्ठादिमहारोगनिवारिणि मम सर्वरोगान् नाशय नाशय ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः हूं फट् स्वाहा।

५. ॐ ऐं श्रीं हुं दुं इन्द्राक्षि ! मां रक्ष रक्ष, मम शत्रून् नाशय नाशय, जलरोगान् शोषय शोषय, क्रूरानरीन् भंजय भंजय, दुःखव्याधीन् स्फोटय स्फोटय मनोग्रन्थिप्राणग्रन्थिशिरोग्रन्थीन् काटय काटय, इन्द्राक्षी मां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

६. ॐ नमो भगवति माहेश्वरि महाचिन्तामणि दुर्गे सकलसिद्धेश्वरि सकलजनमनोहारिणि कालकालरात्र्यनलेऽजितेऽभये महाघोररूपे विश्वरूपिणि मधुसूदनि महाविष्णुस्वरूपिणि नेत्रशूलकर्णशूलकटिशूलपक्षशूलपाण्डुरोगकमलादीन नाशय नाशय वैष्णवि ब्रह्मास्त्रेण विष्णुचक्रेण रुद्रशूलेन यमदण्डेन वरुणपाशेन वासववज्रेण सर्वानरीन् भंजय भंजय यक्षग्रहराक्षसग्रहस्कन्दग्रहविनायकग्रहबालग्रहचौरग्रहकूष्माण्डग्रहादीन् निगृह्ण निगृह्ण, राजयक्ष्मक्षयरोगतापज्वरनिवारिणि।

इन मन्त्रों का मूलपाठ करके किसी एक का जप करें।

इन्द्राक्षी-स्तोत्रम्

इन्द्राक्षी नाम सा देवी दैवतैः समुदाहृता।
गौरी शाकम्भरी देवी दुर्गानाम्नीति विश्रुता ॥१॥
कात्यायनी महादेवी चन्द्रघण्टा महातपाः।
सावित्री सा च गायत्री ब्राह्मणी ब्रह्मवादिनी ॥२॥
नारायणी भद्रकाली रुद्राणी कृष्णपिङ्गला।
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्री तपस्विनी ॥३॥
मेघस्वना सहस्राक्षी विकटाङ्गी जलोदरी।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला ॥४॥
अजिता भद्रदाऽऽनन्दा रोगहर्त्री शिवप्रिया।
शिवदूती कराली च प्रत्यक्षपरमेश्वरी ॥५॥
इन्द्राणी इन्द्ररूपा च इन्द्रशक्तिः परायणा।
सदा सम्मोहिनी देवी सुन्दरी भुवनेश्वरी ॥६॥
एकाक्षरी परा ब्राह्मी स्थूलसूक्ष्मप्रवर्तिनी।
नित्यं सकलकल्याणी भोगमोक्षप्रदायिनी ॥७॥
महिषासुरसंहर्त्री चामुण्डा सप्तमातृका।
वाराही नारसिंही च भीमा भैरवनादिनी ॥८॥
श्रुतिः स्मृतिर्धृतिर्मेधा विद्या लक्ष्मीः सरस्वती।
अनन्ता विजयापर्णा मानस्तोकापराजिता ॥९॥

भवानी पार्वती दुर्गा हैमवत्यम्बिका शिवा।
शिवा भवानी रुद्राणी शंकरार्द्धशरीरिणी ॥१०॥
ऐरावतगजारूढा वज्रहस्ता वरप्रदा।
भ्रामरी काञ्चिकामाक्षी क्वणन्माणिक्यनूपुरा ॥११॥
त्रिपाद्भस्मप्रहरणा त्रिशिरा रक्तलोचना।
शिवा च शिवरूपा च शिवभक्तिपरायणा ॥१२॥
मृत्युंजया महामाया सर्वरोगनिवारिणी।
ऐन्द्री देवी सदा कालं शान्तिमाशु करोतु मे ॥१३॥
भस्मायुधाय विद्महे, रक्तनेत्राय धीमहि, तन्नो
ज्वरहरः प्रचोदयात्।
एतत् स्तोत्रं जपेन्नित्यं सर्वव्याधिनिवारणम्।
रणे राजभये शौर्ये सर्वत्र विजयी भवेत् ॥१४॥
एतैर्नामपदैर्दिव्यैः स्तुता शक्रेण धीमता।
सा मे प्रीत्या सुखं दद्यात् सर्वापत्तिनिवारिणी ॥१५॥
ज्वरं भूतज्वरं चैव शीतोष्णज्वरमेव च।
ज्वरं ज्वरातिसारं च अतिसारज्वरं हर ॥१६॥
शतमावर्तयेद् यस्तु मुच्यते व्याधिबन्धनात्।
आवर्त्तयन् सहस्रं तु लभते वाञ्छितं फलम् ॥१७॥
एतत्स्तोत्रमिदं पुण्यं जपेदायुष्यवर्द्धनम्।
विनाशाय च रोगाणामपमृत्युहराय च ॥१८॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१९॥

इस स्तोत्र का स्वयं इन्द्र ने अपने संकट का निवारण करने के लिए पाठ किया था। इसकी १०० अथवा एक हजार आवृत्ति करने से इच्छित फल की प्राप्ति, आयुष्य की वृद्धि, रोगों का नाश तथा अप-मृत्यु दूर होती है।

(ग) महाविद्या वन दुर्गा-मन्त्र-प्रयोग

(क) पूर्वाभास—तन्त्रशास्त्रों की यह विशेषता है कि आराध्य देवता की आराधना को सामान्य से अधिक तीव्र और तीव्रतर बनाने

के लिए उसके साथ बीजमन्त्रों का संयोजन करने का आदेश करते हैं। आराधकगण भी उसी पद्धति से इष्टदेव की कृपा प्राप्त कर मन्त्र के वास्तविक स्वरूप को देख लेते हैं। इसी से मन्त्रों में विविधता आती है और यथेष्ट लाभ पाने में वे सहकारी बनते हैं। महाविद्या वनदुर्गा के भी अनेक मन्त्र हैं, अनेक साधकों ने उनका दर्शन किया है तथा उनके प्रयोगों को भी प्रस्तुत किया है।

(ख) मन्त्र-विधान : विनियोग—अस्य श्रीमहाविद्या वनदुर्गा महामन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः अन्तर्यामि नारायण-किरात-रूपेश्वर महाविद्या वनदुर्गादेवता हुं बीजं, स्वाहा शक्तिः क्लीं कीलकं मम वनदुर्गाप्रसाद-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—ईश्वरऋषये नमः (शिरसि), पङ्क्तिच्छन्दसे नमः (मुखे), अन्तर्यामिनारायण-किरातरूपेश्वर-महाविद्यावनदुर्गा-देवताभ्यो नमः (हृदये), हुं बीजाय नमः (गुह्ये), स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः), क्लीं कीलकाय नमः (नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

कर-हृदयादि-न्यास—हंसिनी ह्लां (अंगु० हृदयाय०), शङ्खिनी ह्लीं (तर्जनी० शिरसे०), चक्रिणी ह्लूं (मध्यमा० शिखा०), गदिनी ह्लैं (अना० कवचाय०), शूलिनी ह्लौं (कनि० नेत्र०), त्रिशूलवर-धारिणी ह्लः (करतल० अस्त्राय०)।

ध्यान—

असिशङ्खकृपाणखेटबाणान्, सधनुशूलकतर्जनीं दधाना।
मम सा महिषोत्तमाङ्गसंस्था, नवदुर्गासदृशी श्रियेऽस्तु दुर्गा॥१॥
हेमप्रख्यामिन्दुखण्डात्ममौलिं, टङ्कारिष्टाभीतिहस्तां त्रिनेत्राम्।
हेमाब्जस्थां पीतवस्त्रां प्रसन्नां, देवीं दुर्गां दिव्यरूपां नमामि॥२॥
महिषमस्तकनृत्यविनोदिनि, स्फुटरणन्मणिनूपुर मेखले।
जननि रक्षण-मोक्षविधायिनि, जयसि शुम्भ-निशुम्भनिषूदिनि॥३॥
निर्जित्य दैत्यानखिलाञ्जगद्द्रुहः, शान्तामनन्तोरगभोगशायिनीम्।
भक्ताखिलोपद्रवहेतुभञ्जिनीं, देवीं प्रपद्ये दिविषद्भिरीडिताम्॥४॥

मूलमन्त्र—ॐ श्रीं ह्लीं क्लीं हुं उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितं यदि शक्यमशक्यं वा दुर्गे भगवति तन्मे शमय स्वाहा।

इस उपासना में कन्या पूजन करना अत्यावश्यक है। विधि आगे देखें।

(घ) आसुरी-दुर्गा मन्त्र-प्रयोग

(क) **प्रारम्भिक परिचय**—भगवती दुर्गा की साधना के सौम्य और क्रूर दोनों ही प्रकार के मन्त्रप्रयोग यामल-ग्रन्थों में मिलते हैं। सौम्यभावना एवं सौम्यकर्म में साधक को विशेष कामना नहीं रहती है। वह केवल यही चाहता है कि मुझ पर माता की कृपा बनी रहे। मां की कृपा को चाह में सभी कामनाओं की पूर्ति समा जाती है। किन्तु जब कोई विशेष परिस्थिति के कारण शत्रुओं से घिर जाता है, उसकी विपरीत गति-विधियों से परेशानियां बढ़ जाती हैं तथा संकटों से छूटने का कोई मार्ग नहीं दिखाई देता तो माता के शत्रुसंहारक रूप का स्मरण करना पड़ता है। ऐसे रूपों में एक रूप है—"आसुरी दुर्गा" का। इस सम्बन्ध में वर्णन आता है—'स्कन्द-कार्तिकेय ने शिवजी से षट्कर्मों का रहस्य पूछा था तब शिवजी ने 'तन्त्रसिद्धिरनेकधा'—'तन्त्रसिद्धि अनेक प्रकार की होती है' ऐसा कहकर आसुरी दुर्गा के विभिन्न स्वरूप और विभिन्न मन्त्रों का विधान बतलाया। साथ ही **सहदेवी-आसुरी 'राजिका-आसुरी'** आदि के प्रयोग भी दिखलाये।

आसुरीदुर्गामन्त्र-बिधान : विनियोग—अस्य श्री आसुरीदुर्गा-मन्त्रस्याङ्गिरसऋषिः विराट्छन्दः आसुरी दुर्गा देवता ॐ बीजं स्वाहा शक्तिः मम श्रीआसुरीदुर्गाप्रसादपूर्वकमभीष्टकर्मसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—आङ्गिरसर्षये नमः (शिरसि), विराट्छन्दसे नमः (मुखे), आसुरीदुर्गादेवतायै नमः (हृदये), ॐ बीजाय नमः (गुह्ये), स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः), विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

कर-हृदयादि और कर न्यास[1]—ॐ कटुके कटुकपत्रे हुं फट् स्वाहा(हृदयाय० अंगु०), सुभगे आसुरि हुं फट् स्वाहा (शिरसे० तर्ज०), रक्ते रक्तवाससे हुं फट् स्वाहा (शिखायै० मध्यमा०), अथर्वणस्य दुहिते हुं फट् (कवचाय० अना०), अघोरे घोरकर्मकारिके हुं फट् (नेत्र० कनि०), अमुकस्य[2] गतिं दह दह उपविष्टस्य गुदं दह दह सुप्तस्य मनो

१. यहां पहले हृदयादि और बाद में करन्यास का विधान है।
२. यहां साध्य का नाम षष्ठीविभक्ति के एकवचन में बनाकर लें।

दह प्रबुद्धस्य हृदयं दह दह हन हन पच पच भगं दर मथ-मथ तावद् दह पच यावन्मे वशमायाति हुं फट् (अस्त्राय० करतल०)।

ध्यान – शरच्चन्द्रकान्तिर्वरत्रिशूलं, शृणिं हस्तपद्मैर्दधानाम्बुजस्था। अरीणां वराकादियुक्ता पवित्रा, मुदाथर्वपुत्री करोत्वाशुनाशम् ॥

मूलमन्त्र—ॐ ह्रीं कटुके कटुकपत्रे सुभगे आसुरि रक्ते रक्तवाससे अथर्वणदुहिते अघोरे घोरकर्मकारिके अमुकस्य गतिं दह दह उपविष्टस्य गुदं दह दह सुप्तस्य मनो दह दह प्रबुद्धस्य हृदयं दह दह हन हन पच पच भगं दर मथ मथ तावद् दह पच यावन्मे वशमायाति हुं फट् स्वाहा।

इस मन्त्र का १० हजार जप, घृत और राजिका (राई) से हवन तथा अन्य दशांश करे। फिर प्रयोग के लिए राई के पौधे का पंचांग लेकर उसे १०० मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित कर के उसकी धूप से जिसको धूपित करे वह वश में होवे।

३. अन्य प्रयोग—(१) लाल कम्बल का आसन बिछाकर उस पर आसुरी गायत्री का जप करे। गायत्री मन्त्र—ॐ ह्रीं आसुरिदिव्यायै विद्महे, ॐ ऐं अथर्ववेदाय धीमहि ॐ ह्रौं हुं फट् प्रचोदयात्।

इससे इच्छित कार्य में सफलता मिलती है।

२. अर्क के पत्ते पर राई पीसकर उससे एक अंगुष्ठ के बराबर आसुरी की मूर्ति बनाये। प्राण-प्रतिष्ठा करके मन्त्र द्वारा उसकी पूजा करे और कृष्णपक्ष की अष्टमी से सात दिन तक उसके समक्ष आसुरी मन्त्र का जप करे। इससे कार्यसिद्धि होती है।

३. सहदेव्यासुरी का प्रयोग इस प्रकार है : इसमें सहदेवी लाकर उसकी प्रतिष्ठा और पूजन करे तथा काक आसन से बैठकर एक पैर का अंगूठा चलाते हुए—"ॐ ह्रीं सहदेव्यासुरि तिष्ठ तिष्ठ किं पुरुषि ॐ किस किस्त्ये यः शक्यमसि किंवा सर्वदुष्टक्षयं कुरु कुरु स्वाहा" इस मन्त्र का १ हजार जप करे। इससे शत्रु का विनाश होता है। प्रतिक्रियाशूलिनी दुर्गा एवं दुर्गातन्त्रोक्त ऐसे ही अन्य बहुत-से प्रयोग हैं, किन्तु ये अति कठिन हैं और इनके करने से किसी का अनिष्ट होने का प्रायश्चित लगता है जिसका निवारण न हो तो साधक को कष्ट

उठाना पड़ता है। अतः ऐसे प्रयोग न करना ही उत्तम है। यह केवल परिचय के लिए लिखा है।

(ङ) कुमारी-पूजन-प्रयोग

१. कुमारी-पूजन क्यों? रुद्रयामल, नीलतन्त्र, योगिनीतन्त्र आदि ग्रन्थों में 'सर्वविद्यास्वरूपा हि कुमारी नात्र संशयः' इस कथन की पुष्टि करते हुए सभी प्रकार के शक्ति-साधकों के लिए कुमारी-पूजन आवश्यक बतलाया है। कुमारी-पूजा के फल के बारे में कहा गया है कि—

कुमारी-पूजनफलं वक्तुं नार्हामि सुन्दरि!।
जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि॥

इसके अनुसार अनेक जिह्वा और अनेक मुखों से भी इस पूजा का महत्त्व वर्णित नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, जिस स्थान पर कन्या-पूजा होती है वह स्थान पुण्यतम हो जाता है, कन्याओं की सविधि पूजा करके उन्हें जो वस्त्रादि दिए जाते हैं वे अनन्त पुण्यफल देने वाले होते हैं। भगवती इस पूजा से अति प्रसन्न होती हैं तथा उनके साथ ही बाल भैरव की भी पूजा करनी चाहिए—ऐसा भी निर्देश है। पूजा के लिए कितनी आयु की कन्याओं को चुनना चाहिए? इस पर भी पर्याप्त निर्देश हैं। यथा—'एकवर्षा भवेत् सन्ध्या' आदि। एक से आरम्भ कर सोलह वर्ष तक कन्याएं प्रतिपदा से पूर्णिमा तक पूज्य हैं। १. सन्ध्या, २. सरस्वती, ३. त्रिधामूर्ति, ४. कलिका, ५. सुभगा, ६. उमा, ७. भिल्लिनी, ८. कुब्जिका, ९. कालसन्दर्भा, १०. अपराजिता, ११. रुद्राणी, १२. भैरवी, १३. महालक्ष्मी, १४. पीठनायिका, १५. क्षेत्रज्ञा और १६. अम्बिका ये उनके नाम हैं। अन्य मन्त्रों में और भी विशेष व्यवस्थाएं दी हैं जिनमें आयुक्रम का विभाजन करते हुए उनके स्वरूप का और पूजन-फल का संकेत है। इन कन्याओं में जाति-विचार अपेक्षित नहीं माना गया, सभी देवीरूप हैं ऐसा मानकर भक्ति-पूर्वक पूजा करें।

२. पूजा-विधान—'साधक नित्यक्रिया से निवृत्त होकर पूजा के दिन से एक दिन पूर्व कुमारिका के घर जाए। वहां मूलमन्त्र-स्मरणपूर्वक नारिकेल और सुपारी अर्पित करे और प्रार्थना करे कि

भगवती कुमारिका ! मैं आपको पूजन के लिए निमन्त्रित करता हूं। आप पधारकर कृतार्थ करें।" दूसरे दिन नित्यपूजा के पश्चात् पूजागृह से अन्यत्र आसन पर कन्या को बिठाकर उसके चरण प्रक्षालित करे। तब पूजागृह में लाकर उत्तम पीठ पर पश्चिमाभिमुख बिठाएं। उसके सम्मुख स्वयं अपने आसन पर बैठकर कुमारीपूजन का संकल्प करे। गुरु और गणपति वन्दनपूर्वक मूल विधा से तीन प्राणायाम करें और पीठपूजापूर्वक कुमारिका में देवी का आवाहन,[1] ध्यान, पूजन आदि करके भोजन कराए। जब तक वह भोजन करे तब तक अपने इष्टमन्त्र का जप करे। भोजन कर लेने पर हस्तप्रक्षालनादि कराए और ताम्बूल समर्पित कर आरती उतारे तथा यथाशक्ति वस्त्र, अलंकार दक्षिणा आदि भेंट करे और प्रणाम करके विसर्जित करे।

पूजा-मन्त्र—प्रत्येक दिन की कुमारिका के चतुर्थी विभक्त्यन्त नाम के पहले 'ऐं ह्रीं श्रीं हूं हसौः' इन बीजों को तथा अन्त में 'नमः' लगाये।

यदि नवरात्र अथवा दशरात्र की पूजा करनी हो तो उसके लिए 'प्रथमं शैलपुत्रीति द्वितीयं ब्रह्मचारिणी' के क्रम से पूजा करे तथा 'ऐं ह्रीं क्लीं शैल पुत्र्यै नमः' के मन्त्रों से पूजा सामग्री अर्पित करे।

बाल भैरव की पूजा में 'कर कलित कपालः' अथवा 'वन्दे बालं' इत्यादि पद्यों से ध्यान-प्रणाम करके "ॐ ह्रीं वं वटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु वटुकाय ह्रीं ॐ" इस मन्त्र के साथ 'बाल भैरवाय नमः' जोड़-कर पूजा करे।

रुद्रयामल में कुमारीतर्पणस्तोत्र, कुमारीकवच और अन्य स्तोत्र भी दिए गए हैं। उनमें से एक संक्षिप्त स्तोत्र आगे दिया जा रहा है, इसका भक्तिपूर्वक पाठ करें।

---

१. आवाहन-मन्त्र है—'मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृकारूपधारिणीम्।
नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यामावाहयाम्यहम्।।

३. कुमारी-स्तोत्रम्

जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्ति स्वरूपिणि।
पूजा गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोस्तुते ॥१॥
त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिवर्षां ज्ञानरूपिणीम्।
त्रैलोक्य-वन्दितां देवीं त्रिमूर्ति पूजयाम्यहम् ॥२॥
कालात्मिकां कलातीतां कारुण्यहृदयां शिवाम्।
कल्याणजननीं देवीं कल्याणीं पूजयाम्यहम् ॥३॥
अणिमादिगुणाधाराम् अकाराद्यक्षरात्मिकाम्।
अनन्तशक्तिकलां लक्ष्मीं रोहिणीं पूजयाम्यहम् ॥४॥
कामाचारीं शुभा कान्तां कालचक्रस्वरूपिणीम्।
कामदां करुणोदारां कालिकां पूजयाम्यहम् ॥५॥
चण्डवीरां चण्डमायां चण्डमुण्डप्रभञ्जनीम्।
पूजयामि सदा देवीं चण्डिकां चण्डविक्रमाम् ॥६॥
सदानन्दकरीं शान्तां सर्वदेव-नमस्कृताम्।
सर्वदेवात्मिकां लक्ष्मीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम् ॥७॥
दुर्गमे दुस्तरेकार्य्ये, भवदुःखविनाशिनीम्।
पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गां दुर्गार्त्तिनाशिनीम् ॥८॥
सुन्दरीं सर्व्ववर्णाभां सुखसौभाग्यदायिनीम्।
सुभद्राजननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम् ॥९॥
इति कुमारीस्तोत्रम्

गायत्री-साधना और रुद्रयामल

सिद्धविद्या गायत्री का महत्त्व

सर्ववेद सारभूता एवं उपासना-मार्ग के मंगल-प्रस्थान में प्रथम सोपान गायत्री-मन्त्र ही माना गया है। द्विज—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य कुल में उत्पन्न एवं यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत वर्ग आदिकाल से गायत्री माता की उपासना से आत्मबल, मनोबल और लौकिक-सम्पदाओं के बल को प्राप्त करके इस लोक में सुखी रहते हुए पार-लौकिक प्रेयस् की प्राप्ति के द्वार उद्घाटित करने में सक्षम होता रहा

इसके पश्चात् इस पद्य के अनुसार बनने वाले गायत्री-मन्त्र की महत्ता व्यक्त की है, जिसमें मन्त्र सम्बन्धी भिन्न-भिन्न दोष एवं पूर्वापर क्रियागत विचारों के भय से मुक्त रहते हुए भी इसका यदि जप किया जाता है, तो भी यह सर्वसिद्धि देता है, ऐसा कहा है। साथ ही इसके उत्कीलन के लिए आदि और अन्त में तीन बीज लगाकर जपने का निर्देश दिया है। इसी के साथ 'संजीवन' तथा 'सम्पुट' की विधि भी कथित है।[1]

उपर्युक्त मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा हैं, त्रिष्टुप् छन्द है, गायत्री देवता है, तार—ॐ बीज, श्रीं शक्ति तथा भद्रिका कीलक है। धर्मार्थकाम-मोक्ष के लिए विनियोग कहा गया है। तार आदि सभी बीजों को ब्रह्मा, विष्णु और शिवाश्रित करके षडंगन्यास तथा उपर्युक्त तीनों बीजों के षड्दीर्घरूप से देहन्यास करना चाहिए। इस प्रकार किए गए न्यासों से साधक देवीमय होकर सर्वविध सिद्धि को प्राप्त होता है। यहां गायत्री का ध्यान इस प्रकार वर्णित है—

पञ्चवक्त्रां चतुर्हस्तां प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनाम्।
जटा-किरीट-षट्कुक्षिं, त्रिपदीं च स्फुरत्-प्रभाम् ॥४९॥
अक्षसूत्राम्बुजे दिव्ये दधतीं दक्षहस्तके।
वामे कमण्डलुं चैव वरमुद्राविभूषिताम् ॥५०॥
रत्न - कुण्डल - केयूर - हार - कङ्कण - नूपुरैः।
शोभितां रत्नपीठस्थां गायत्रीं मोक्षदायिनीम् ॥५१'।

वहीं गायत्री देवी की गायत्री भी इस प्रकार दिखलाई है—

ॐ ऐं श्रीं गायत्रीदेव्यै विद्महे चतुर्विशाक्षर्यै च धीमहि,
तन्नस्त्रिपदी प्रचोदयात् ॥ॐ श्रीं ऐं॥

पूजा के पश्चात् सुमुख-सम्पुट आदि चौबीस मुद्राओं का प्रदर्शन आवश्यक बतलाया है।[2]

गायत्री-साधना से सम्बद्ध इसी पटल में दस प्रयोग भी वर्णित हैं जिनके करने से सर्वविध सिद्धि प्राप्त होती है। यथा—१. स्तम्भन,

१. उत्कीलन, संजीवन तथा सम्पुट की विधियां भी स्पष्ट नहीं हैं।
२. अन्य तन्त्रों में जप के पश्चात् आठ—'सुरभि, ज्ञान, वैराग्य, योनि, शंख, पंकज, लिंग और निर्वाण मुद्राएं दिखाने का भी आदेश है।

२. मोहन, ३. मारण, ४. आकर्षण, ५. वशीकरण, ६. विद्वेषण, ७. शान्तिक, ८. पौष्टिक आदि। इनके लिए एकान्त में रात्रि में पूजन तथा १०,०००, मन्त्र जप, दशांश हवन—जिसमें घृत, पायस और चन्दन का प्रयोग किया जाए। ऐसे प्रयोगों में विभिन्न अन्य वस्तुएं, स्थान, काल, मालाएं आदि का भी स्वतन्त्र विधान है जिसे अन्य ग्रन्थों तथा गुरुजनों से जानना चाहिए। वैसे प्रयोग की दृष्टि से कार्यारम्भ के दिन विशेष नक्षत्रों का होना अधिक उपयोगी बतलाया है। जैसे शुक्रवार को पुष्य नक्षत्र के दिन प्रयोग करने से वशीकरण—आकर्षण होता है। साधक के जन्मनक्षत्र और जन्मदिन पर भी दस हजार गायत्री जप करना आवश्यक बताया है। इससे निरोगिता और आयुष्य-वृद्धि होती है।

मन्त्रोद्धार की विधि बतलाते हुए कहा गया है कि—

बिन्दु-त्रिकोण-दशकोण-दशार-वृत्त—
नागास्त्र-षोडशदलाख्य-शरच्चरित्रम्।
भू-मन्दिरत्रयमिदं परमार्थ-यन्त्रं,
सर्वार्थ-साधनकरं परमार्थ देव्याः॥

अर्थात्—गायत्री-यन्त्रराज की रचना में १. बिन्दु, २. त्रिकोण, ३. दशकोण, ४. दशारवृत्त, ५. अष्टदल, ६. षोडशदल तथा ८. भूपुर-त्रय की योजना करनी चाहिए। ऐसा यन्त्र सर्वार्थ-साधन करने वाला कहा गया है।

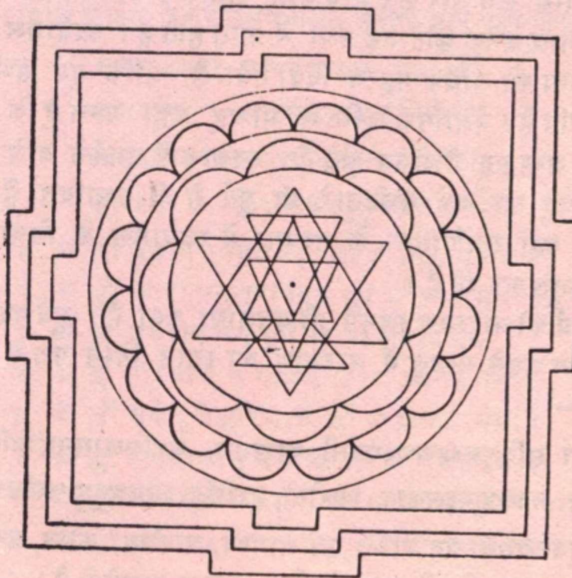
इस यन्त्र की आवरण-पूजा में जो 'लयांगपूजा' का विधान है उसमें सर्वप्रथम १—**भूपुर** की पूजा होती है जिसमें दस दिक्पाल क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान आठों दिशाओं में तथा ऊर्ध्व में ब्रह्मा और अधोभाग में विष्णु की पूजा की जाती है। तदनन्तर २—**भूपुर की तीन रेखाओं में** दिव्यौघ, सिद्धौघ तथा मानवौघ (गुरु परम्परा) की पूजा करके ३—**षोडश दल** में लक्ष्मी, कीर्ति, धृति, धन्या, स्थिति, शान्ति, विभा, मति, गति, भ्रान्ति, नति, वाणी, प्रभा, शोभा, क्रिया और नीति देवियों की पूजा होती है।

४. **अष्टदल** में ब्राह्मी, नारायणी, चण्डी, शाम्भवी, अपराजिता, कौमारी, वाराही तथा नारसिंहिका-भैरवी देवियों की रुरु, चण्ड, कराल, संहार, भीषण, कालाग्नि, उन्मत्त एवं विकराल भैरवों के साथ

पूजा करने का विधान है। यन्त्र के यहां तक के भाग को **'शिवधाम'** कहा गया है।

इसके पश्चात् **बाह्य दशकोण** में—सरस्वती, शाश्वती, दुर्गा, सावित्री, ब्रह्मवादिनी, श्रीमती, कुब्जिका, चम्पा, तारिणी और विश्व-मंगला की पूजा विहित है। **अन्तर्दशार** में—त्रिपुरा, कालिका, तारा, सुमुखी बगलामुखी, बाला, बैखरी, तुर्या, छिन्ना तथा भुवनेश्वरी देवी की पूजा करनी चाहिए। ये दोनों चक्रभाग **'सौरधाम'** माने जाते हैं। तदनन्तर त्रिकोण में गंगा, यमुना और सरस्वती की अर्चना करके बिन्दु पीठ में 'त्रिपदा गायत्री' तथा पद्मासनस्थ चतुर्मुख (ब्रह्मा) की पूजा का विधान है। यहीं त्रिकोण के चारों ओर अक्षसूत्र, पद्मलगुड और कुसुम तथा चारों वेदों की पूजा करें। इस प्रकार यन्त्रपूजा करने से गायत्री-माता की कृपा प्राप्त होती है और जपादि में शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—

(ङ) सर्वार्थ-साधनकर-गायत्री-यन्त्र



रुद्रयामलोक्त नवग्रह-साधना

(क) ग्रहों की विशिष्टता

शास्त्रों का वचन है कि—

"ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहा राज्यं हरन्ति च।"

इसके अनुसार ग्रहों की शक्ति अत्यन्त प्रभावकारी है। इसीलिए जन्मकुण्डली, वर्षकुण्डली अथवा प्रश्नकुण्डली के अनुसार ग्रहों की अनुकूलता को सभी चाहते हैं। सूर्यादि नौ ग्रहों को देवस्वरूप मानकर उन्हें प्रसन्न रखने के लिए ज्योतिष शास्त्र एवं तन्त्रादि शास्त्रों में अनेक प्रकार के उपाय दिखाए गए है। ग्रहों की स्थिति, दृष्टि अथवा संगति के आधार पर भी उनकी अनुकूलता और प्रतिकूलता का ज्ञान होता है। ये अपने क्षेत्रस्थान के अनुसार दशाओं में भी अपना प्रभाव दिखाते हैं। अतः यदि ग्रह अनुकूल न हों तो उस समय उनकी शान्ति के लिए प्रयत्न करना आवश्यक होता है।

सौम्य, सम और क्रूर भाव वाले ग्रहों के वैदिक, पौराणिक एवं तान्त्रिक मन्त्र अनेक छोटे-बड़े रूपों में प्राप्त होते हैं। रुद्रयामल में सूर्य की उपासना को अधिक महत्त्व दिया गया है, क्योंकि सूर्य सभी ग्रहों का अधिपति है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह कहा जाता है कि सूर्य के तेज से ही अन्य ग्रह तेजोमय होते हैं। आकाश में चमकने वाले ग्रह ही नहीं, अपितु छोटे-बड़े सभी तारे भी सूर्य से ही प्रभावित हैं। अतः सर्वप्रथम यहां सूर्योपासना के सम्बन्ध में रुद्रयामल के विचार एवं प्रयोग प्रस्तुत कर रहे हैं।

सूर्य को नारायण स्वरूप ही बतलाया गया है। सूर्य का ध्यान करते समय उसके मण्डल में नारायण का ध्यान निम्न पद्य से किया जाता है—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती, नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान मकरकुण्डलवान किरीटी, हारीहिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः॥

सूर्योपासना ग्रह शान्ति एवं आयुष्य, आरोग्य, कीर्ति, धन, पुत्र, पौत्र, सौभाग्य आदि की प्राप्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

(ख) सूर्योपासना के मन्त्र

१. वैदिक अष्टाक्षर मन्त्र—ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः।

२. लक्ष्मी प्राप्ति के लिए—(क) ॐ घृणिः सूर्यं आदित्यः श्रीं। (ख) ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं घृणिः सूर्य आदित्यः ह्रीं क्लीं श्रीं ॐ प्रयच्छ मे लक्ष्मीम्।

३. सूर्य गायत्री—ॐ सप्ततुरंगाय विद्महे, सहस्रकिरणाय धीमहि, तन्नो रविः प्रचोदयात्।

इनके वैदिक मन्त्र, यन्त्र और तान्त्रिक बीज मन्त्र प्रसिद्ध हैं। अतः उनका यहां तन्त्रमिश्रित वैदिक मन्त्रों वाले सर्व रोग निवारक १-तृचाकल्प और २-हंसकल्प के २४-२४ नमस्कारों के प्रयोग दे रहे हैं। ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनका प्रयोग करने से बहुत ही लाभ होता है।

(ग) तृचाकल्प नमस्कार[1] (२४ नमस्कार विधि)

आचम्य प्राणानायम्य। संकल्पः। ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त फलप्राप्त्यर्थं श्रीसवितृ सूर्यनारायण प्रीत्यर्थं च तृचाकल्पविधिना नमस्काराख्यं कर्म करिष्ये।

[पात्र में जल लेकर उसमें गन्ध, अक्षत और पुष्प लेकर]

ध्यान करें— **ध्येयः सदा सवितृमण्डल मध्यवर्ती,**
नारायणः सरसिजासन-संनिविष्टः।
केयूरवान मकरकुण्डलवान किरीटी,
हारी हिरण्मयवपुधृतशंखचक्रः॥

१. ॐ ह्रां उद्यन्नद्य मित्रमहः ह्रां ॐ मित्राय नमः।
२. ॐ ह्रीं आरोहन्नुत्तरां दिवं ह्रीं ॐ रवये नमः।
३. ॐ ह्रूं हृद्रोगं मम सूर्यं ह्रूं ॐ सूर्याय नमः।
४. ॐ ह्रैं हरिमाणं च नाशय ह्रैं ॐ भानवे नमः।
५. ॐ ह्रौं शुकेषु मे हरिमाणं ह्रौं ॐ खगाय नमः।
६. ॐ ह्रः रोपणाकासु दध्मसि ह्रः ॐ पूष्णे नमः।
७. ॐ ह्रां अथो हारिद्रवेषु मे ह्रां ॐ हिरण्यगर्भाय नमः।
८. ॐ ह्रीं हरिमाणं निदध्मसि ह्रीं ॐ मरीचये नमः।

---

१. ये नमस्कार सूर्य नमस्कार व्यायाम की पद्धति से भी किए जाते हैं।

९. ॐ ह्रूं उदगादयमादित्यः ह्रूं आदित्याय नमः।
१०. ॐ ह्रैं विश्वेन सहसा सह ह्रैं ॐ सवित्रे नमः।
११. ॐ ह्रौं द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् ह्रौं ॐ अर्काय नमः।
१२. ॐ ह्रः मो अहं द्विषते रधम् ह्रः ॐ भास्कराय नमः।
१३. ॐ ह्रां ह्रीं उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवं ह्रां ह्रीं ॐ मित्ररविभ्यां नमः।
१४. ॐ ह्रूं ह्रैं हृद्रोगं मम सूर्यं हरिमाणं च नाशय ह्रूं ह्रैं ॐ सूर्यभानुभ्यां नमः।
१५. ॐ ह्रौं ह्रः शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ह्रौं ह्रः ॐ खगपूषभ्यां नमः।
१६. ह्रां ह्रीं अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ह्रां ह्रीं ॐ हिरण्यगर्भमरीचिभ्यां नमः।
१७. ॐ ह्रूं ह्रैं उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ह्रूं ह्रैं ॐ आदित्य सवितृभ्यां नमः।
१८. ॐ ह्रौं ह्रः द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधं ह्रौं ह्रः ॐ अर्कभास्कराभ्यां नमः।
१९. ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवं हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ॐ मित्ररविसूर्यभानुभ्यो नमः।
२०. ॐ ह्रौं ह्रः ह्रां ह्रीं शुकेषु हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ह्रौं ह्रः ह्रां ह्रीं खगपूषहिरण्यगर्भमरीचिभ्यो नमः।
२१. ॐ ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ॐ आदित्यसवित्रर्क भास्करेभ्योनमः।
२२-२४. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवं हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥१॥ शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ॥२॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम् ।।३।। ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ॐ मित्ररविसूर्यभानुखगपूषहिरण्यगर्भ-मरीच्यादित्यसवित्रर्क भास्करेभ्यो नमः। (तीनों नमस्कार एक साथ करें।

२५. ॐ श्री सवित्रे सूर्यनारायणाय नमः।

आदित्यस्य नमस्कारान् ये कुर्वन्ति दिने दिने।
जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नैव जायते ।।१।।
नमो धर्मविधानाय नमस्ते कृतसाक्षिणे।
नमः प्रत्यक्षदेवाय भास्कराय नमो नमः ।।२।।

अनेन तृचाकल्पनमस्काराख्येन कर्मणा भगवान् श्रीसवितृसूर्य-नारायणः प्रीयताम्। न मम।

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
सूर्यपादोदकं तीर्थं जठरे धारयाम्यहम् ।।३।।

इससे तीर्थ जल लेकर आचमन करें।

(घ) हंसकल्प नमस्कारः

आचम्य प्राणानायम्य। तिथिर्विष्णुस्तथा वारो नक्षत्रं विष्णुरेव च। योगश्च करणं विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ।।१।। अद्य पूर्वोच्चारितैवं गुणविशेषेण विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ममात्मनः श्रुतिस्मृति-पुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं श्रीसवितृसूर्यनारायणदेवता प्रीत्यर्थं च श्रीहंस-कल्पेनोक्तविधिना यथाशक्ति नमस्काराख्यं कर्म करिष्ये।

अथ ध्यानम्—ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती०

(इत्यादि पूर्ववत्)

१. ॐ ह्रां हंसः शुचिषत् ॐ ह्रां मित्राय नमः।
२. ॐ ह्रीं वसुरन्तरिक्षसत् ॐ ह्रीं रवये नमः।
३. ॐ ह्रूं होता वेदिषत् ॐ ह्रूं सूर्याय नमः।
४. ॐ ह्रैं अतिथिर्दुरोणसत् ॐ ह्रैं भानवे नमः।
५. ॐ ह्रौं नृषत् ॐ ह्रौं खगाय नमः।
६. ॐ ह्रः वरसत् ॐ ह्रः पूष्णे नमः।

७. ॐ ह्लां ऋतसत् ॐ ह्लां हिरण्यगर्भाय नमः ।
८. ॐ ह्लीं व्योमसत् ॐ ह्लीं मरीचये नमः ।
९. ॐ ह्लूं अब्जा गोजाः ॐ ह्लूं आदित्याय नमः ।
१०. ॐ ह्लैं ऋतजाऽअद्रिजा ॐ ह्लैं सवित्रे नमः ।
११. ॐ ह्लौं ऋतम् ॐ ह्लौं अर्काय नमः ।
१२. ॐ ह्लः बृहत् ॐ ह्लः भास्कराय नमः ।
१३. ॐ ह्रां ह्रीं हंसः शुचिसद्वसुरन्तरिक्षसत् ॐ ह्रां ह्रीं मित्ररविभ्यां नमः ।
१४. ॐ ह्लूं ह्लैं होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ॐ ह्लूं ह्लैं सूर्यभानुभ्यां नमः ।
१५. ॐ ह्लौं ह्लः नृषद्वरसत् ॐ ह्लौं ह्लः खगपूषभ्यां नमः ।
१६. ॐ ह्लां ह्लीं ऋतसद्व्योमसत् ॐ ह्लां ह्लीं हिरण्यगर्भमरीचिभ्यां नमः ।
१७. ॐ ह्लूं ह्लैं अब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाः ॐ ह्लूं ह्लैं आदित्यसवितृभ्यां नमः ।
१८. ॐ ह्लौं ह्लः ऋतं बृहत् ॐ ह्लौं ह्लः अर्कभास्कराभ्यां नमः ।
१९. ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं मित्ररविसूर्यभानुभ्यो नमः ।
२०. ॐ ह्लौं ह्लः ह्लां ह्लीं नृषद्वरसदृतसद् व्योमसत् ॐ ह्लौं ह्लः ह्लां ह्लीं खगपूषहिरण्यगर्भमरीचिभ्यो नमः ।
२१. ॐ ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः अब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋतं बृहत् ॐ ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः आदित्यसवित्रर्कभास्करेभ्यो नमः ।
२२-२४. ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजाऽऋतुजाऽअद्रिजाऽऋतम्बृहत् ॥१॥ ॐ ह्लां ह्लीं ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः मित्ररविसूर्यभानुखगपूष हिरण्यगर्भमरीच्यादित्यसवित्रर्कभास्करेभ्यो नमः ।

२५. ॐ श्रीसवित्रे सूर्यनारायणाय नमः।
आदित्यस्य नमस्कारान् ० इत्यादि
पूर्ववत्।

(इति तीर्थं गृहीत्वाऽऽचमनं कुर्यात्)[1]

(ङ) अन्य ग्रहों के विविध उपाय

सूर्य के अतिरिक्त चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ग्रहों की प्रसन्नता और उनके द्वारा प्राप्त हो रही पीड़ाओं को नष्ट करने के लिए वैदिक मन्त्र और तान्त्रिक मन्त्रों का प्रयोग भी रुद्रयामल द्वारा प्रतिपादित है। ग्रहों के सर्वांगीण परिचय के लिए एक तालिका यहां प्रस्तुत है, जिसके द्वारा पाठक स्वयं ही उनकी वास्तविक स्थिति का अनुमान कर सकते हैं और उनके अशुभ फल-दान काल में करने योग्य उपायों का भी स्वयं ज्ञान प्राप्त कर उचित लाभ प्राप्त करें।

नोट : पाठकगण को सूचित किया जाता है कि नवग्रह परिचय तालिका पृष्ठ २५६ पर देखें।

---

१. श्रीसूर्योपासना के लिए अन्य साहित्य—
  १. आदित्याथर्वशीर्ष (आह्निक सूत्रावली—बम्बई में मुद्रित)
  २. आदित्यहृदय (वाल्मीकि रामायण से संकलित—"ततो युद्धपरिश्रान्तम्" इत्यादि।)
  ३. सूर्याष्टक (नवग्रह स्तोत्रों में प्रथम स्तोत्र)
  ४. सूर्यषट्पदी (याज्ञवल्क्य प्रणीत, बृहत्स्तोत्ररत्नाकर खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई से प्रकाशित में)
  ५. सूर्यशतक (मयूर भट्ट प्रणीत)
  ६. तृच भास्कर प्रयोग (श्रीभास्कर राय मखी प्रणीत)
  ७. सूर्य के वैदिक, पौराणिक और तान्त्रिक मन्त्र "घृणिः सूर्य आदित्योम्" आदि।
  ८. चन्द्रलामाहात्म्य (भास्कर राय मखी कृत टीका सहित)
  ९. सूर्य पंचांग (पटल, हृदय, शतक, पूजा पटल और सहस्रनाम)
  १०. सूर्य सूक्त (विभ्राट् बृहदादि सूकत रुद्राष्टाध्यायी में चतुर्थ अध्याय)

नवग्रह—सर्वांगीण परिचय तालिका

ग्रह	स्वराशि	उच्च रा.	नीच रा.	स्व नक्षत्र	दशा वर्ष	रत्न	धातु	धान्य	वस्त्र	जपनीय मन्त्र	जप संख्या	समिधा
सूर्य	सिंह	मेष	तुला	कृ.उ.फा.उषा.	६	माणिक	सुवर्ण	गेहूं	लाल	ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः	७०००	अर्क
चन्द्र	कर्क	वृष	वृश्चिक	रो.ह.श्र.	१०	मोती	रजत	चावल	सफेद	ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः सोमाय नमः	११०००	पलाश
मंगल	मे.वृश्चि.	मकर	कर्क	मृ.चि.ध.	७	मूंगा	ताम्र	मसूर	लाल	ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः	१००००	खदिर
बुध	मि.क.	कन्या	मीन	श्ले.ज्ये.रे.	१७	पन्ना	कांस्य	मूंग	हरा	ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः	९०००	अपामार्ग
गुरु	ध.मी.	कर्क	मकर	पुन.वि.पूभा.	१६	पुखराज	कांस्य	चना दाल	पीला	ॐ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः	१९०००	पीपल
शुक्र	वृ.तु.	मीन	कन्या	पूफा.पूषा.भ.	२०	हीरा	रजत	चावल	सफेद	ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः	१६०००	गूलर
शनि	म.कु.	तुला	मेष	पु.अनु.उभा.	१९	नीलम	लोहा	उड़द	काला	ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनैश्चराय नमः	२३०००	शमी
राहु	वृष	मिथुन	धनु	आ.स्वा.श.	१८	गोमेदक	सीसा	तिल	नीला	ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः	१८०००	दूर्वा
केतु	वृश्चि.	कन्या	मीन	म.मू.अश्वि.	७	लहसुनिया	लोहा	तिल	नीला	ॐ स्त्रां स्त्रीं स्त्रौं सः केतवे नमः	१७०००	कुशा

सभी ग्रहों की प्रसन्नता एवं आत्मरक्षा के लिए निम्नलिखित कवच का पाठ अत्यन्त उपयोगी है।

(च) नवग्रह कवच

ॐ शिरो मे पातु मार्तण्डः कपालं रोहिणीपतिः।
मुखमंगारकः पातु कण्ठं च शशिनन्दनः॥१॥
बुद्धि जीवः सदा पातु हृदयं भृगुनन्दनः।
जठरं च शनिः पातु जिह्वां मे दितिनन्दनः॥२॥
पादौ केतुः सदा पातु वाराः सर्वांगमेव च।
तिथयोऽष्टौ दिशः पान्तु नक्षत्राणि वपुः सदा॥३॥
अंसौ राशिः सदा पातु योगश्च स्थैर्यमेव च। ॐ

फलस्तुति

सुचिरायुः सुखी पुत्री युद्धे च विजयी भवेत्॥४॥
रोगात् प्रमुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
श्रियं च लभते नित्यं रिष्टिस्तस्य न जायते॥५॥
यः करे धारयेन्नित्यं तस्य रिष्टिर्न जायते।
पठनात् कवचस्यास्य सर्वपापात् प्रमुच्यते॥६॥
मृतवत्सा च या नारी काकवन्ध्या च या भवेत्।
जीववत्सा पुत्रवती भवत्येव न संशयः॥७॥

उपर्युक्त रक्षा-कवच का नित्य पाठ करने से तथा आवश्यकता पड़ने पर रोगी का स्पर्श करके पाठ करने से रोग शान्त होता है। इसके ३ श्लोकों का ग्रहण में पुरश्चरण और भोजपत्र पर लिखकर धारण करने का भी विधान है। नित्य पाठ से पाप नाश होता है।

ग्रहों की प्रसन्नता के लिए उनके स्तोत्रों का पाठ; उपयुक्त वस्तुओं का दान तथा वारों के अनुसार ग्रहों के रंग वाले पुष्पों द्वारा उनके सहस्रनामों से उनके यन्त्रों अथवा प्रतिमाओं पर अर्चन करने का बहुत महत्त्व है और ऐसे प्रयोग तत्काल शुभ फल प्रदान करते हैं। अतः उन्हें भी प्राप्त करके पूजा-अर्चना करें। ग्रहों के धान्य से भी पूजा कर सकते हैं।

वैष्णव उपासना के तान्त्रिक विधान

दशमहाविद्या के समान ही भगवान् विष्णु के दस अवतार प्रसिद्ध हैं। पौराणिक विधानों से श्लोकात्मक मन्त्रों द्वारा इन अवतारों की उपासना की जाती है। रुद्रयामल तन्त्र तथा अन्य तन्त्रों में इन देवताओं की उपासना के लिए तान्त्रिक मन्त्र-विधान भी प्राप्त होते हैं। उनमें से कुछ मन्त्रों का यहां उल्लेख करना आवश्यक मानकर लिख रहे हैं।

(क) **वैष्णवाष्टाक्षरी मन्त्र**—विनियोग—अस्य श्रीवैष्णवाष्टाक्षरी मन्त्रस्य साध्यनारायणऋषिः देवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता अं बीजं, आय शक्तिः, मम चतुर्वर्गफलप्राप्तये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—साध्यनारायणाय ऋषये नमः (शिरसि), देवी-गायत्रीछन्दसे नमः (मुखे), परमात्म देवतायै नमः (हृदये), अं बीजाय नमः (गुह्ये), आय शक्तये नमः (पादयोः), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-हृदयादिन्यास—क्रुद्धोल्काय स्वाहा (अंगुष्ठा० हृदयाय०), महोत्काय स्वाहा (तर्जनी० शिरसे०), वीरोल्काय (मध्यमा० शिखायै०), द्यूल्काय स्वाहा (अना० कवचाय०), सहस्रोल्काय स्वाहा (कनि० अस्त्राय०)।

अष्टांगन्यास—ॐ (हृत्), नं (शिरः), मों (शिखा), नां (कवचम्), रां (नेत्रम्), यं (अस्त्रम्), णां उदानाय नमः (उदरस्याग्रे), यं पृष्ठाय नमः (पृष्ठभागे)।

ध्यान—अर्कौकाभं किरीटान्वितमकरलसत्कुण्डलं दीप्तिराजत्-
केयूरं कौस्तुभाभाशबलरुचिरहारं सपीताम्बरं च।
नानारत्नांशु भिन्नाभरणशतयुजं श्रीधराश्लिष्टपार्श्वं,
वन्दे दोस्सत्त्वचक्राम्बुरुहदरगदं विश्ववन्द्यं मुकुन्दम्॥

मूल मन्त्र—ॐ नमो नारायणाय। (३२ हजार जप)

विशिष्ट प्रयोग—(१) उपर्युक्त मन्त्र से दही, मधु, घृत और चार अंगुल गडूची की समिधा से युक्त हवन करने से मृत्यु का निवारण होता है। (२) शुद्ध जल को २५ बार अभिमन्त्रित करके नित्य पीने से रोग नाश होता है। (३) प्रति दिन अपनी भोजन सामग्री को सात बार अभिमन्त्रित करके उपयोग में लेने से आरोग्य प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार 'ॐ **नमो भगवते वासुदेवाय**' यह **द्वादशाक्षरी** मन्त्र भी सिद्ध मन्त्र है। इसका जप करने से सभी कार्यों में सफलता मिलती है।

'अच्युताय नमः अनन्ताय नमः गोविन्दाय नमः' यह **१८ अक्षर** का मन्त्र सर्वविध रोगों की निवृत्ति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कोई भी दवा आदि लेने से पूर्व इस मन्त्र से उस दवा को अभिमन्त्रित कर लेना चाहिए। रुग्णावस्था में निरन्तर स्मरण करते रहना पूर्ण लाभकारी है।

'विष्णुसहस्रनाम' का पाठ भी तन्त्रों में बहुत उपयोगी बतलाया है। गुरुवार एवं रविवार को इसके पाठ का विशेष फल होता है।

भगवान् विष्णु के अवतारों में नृसिहावतार प्रसिद्ध है। उनका बीजमन्त्र है 'क्ष्रौं'। इसका जप करने से भय तथा दुःस्वप्न नष्ट होते हैं। लक्ष्मी प्राप्ति के लिए लक्ष्मी नृसिंह भगवान् के मन्त्र का जप उत्तम माना गया है। इसका विधान इस प्रकार है।

(ख) लक्ष्मी नृसिंह मन्त्र विधान—अस्य श्रीलक्ष्मीनृसिंहमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः अतिच्छन्दः श्रीलक्ष्मीनृसिंहो देवता श्रीं बीजं ह्रीं शक्तिः श्रीलक्ष्मीनृसिंहदेवताप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—ब्रह्मणे ऋषये नमः (शिरसि), अतिच्छन्दसे नमः (मुखे), श्रीलक्ष्मीनृसिंहदेवतायै नमः (हृदये)। श्रीं बीजाय नमः (गुह्ये), ह्रीं शक्तये नमः पादयोः। विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-हृदयादिन्यास—'श्रां, श्रीं, श्रूं, श्रैं, श्रौं, श्रः' इन बीजों से क्रमशः न्यास करें।

ध्यान— वामांकस्थश्रियायुक्तं चक्रशङ्खाब्जधृक्करम्।
पीताम्बरं सर्वभूषं प्रसन्नं नृहरिं भजे॥

मूल मन्त्र—ॐ श्रीं ह्रीं जय जय लक्ष्मीप्रियाय नित्यप्रमुदित चेतसे लक्ष्मीश्रितार्धदेहाय क्ष्रौं ह्रीं नमः।

इसी प्रकार अघोर नृसिंह, भूतावेशकर आदि नामों से अन्य श्रीनृसिंह के बहुत से मन्त्र हैं, जिनके लिए मूल ग्रन्थ और विशिष्ट गुरु से ज्ञान प्राप्त करें।

(ग) 'वरलाभार्थ रुक्मिणीवल्लभ का मन्त्र'—यह मन्त्र भी पूर्ण सफलता दिलाने वाला है। इसका विधान इस प्रकार है—

विनि०—अस्य श्रीरुक्मिणीवल्लभमन्त्रस्य नारदऋषिः अनुष्टुप् छन्द : श्रीरुक्मिणीवल्लभो देवता ममोत्तमवरलाभार्थं जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—नारदर्षये नमः (शिरसि), अनुष्टुप्छन्दसे नमः (मुखे), रुक्मिणीवल्लभदेवतायै नमः (हृदये), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-हृदयादिन्यास—ॐ (अंगु० हृदयाय०), नमः (तर्जनी शिरसे), भगवते (मध्यमा शिखायै), रुक्मिणीवल्लभाय (अना० कवचाय०), स्वाहा (करतल० अस्त्राय०)।

ध्यान— भगवन् देवदेवेश, रुक्मिणीवल्लभप्रभो।
कृपया पतिकामायै, देहि मे वरमुत्तमम्॥

मूल मन्त्र—ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय।

(घ) सिद्ध शालग्राम मन्त्र विधि—अस्य श्री शालग्राम मन्त्रस्य साध्य नारायण ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीलक्ष्मीनारायणो देवता मम सर्वाभीष्टफल प्राप्तये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—साध्यनारायणर्षये नमः (शिरसि), अनुष्टुप् छन्दसे नमः (मुखे), श्रीलक्ष्मीनारायणदेवतायै नमः (हृदये) विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-हृदयादिन्यास—ॐ नमो भगवते (अंगु० हृदयाय०), विष्णवे (तर्जनी० शिरसे०) श्रीशालग्रामनिवासिने (मध्यमा० शिखायै०) सर्वाभीष्टफलप्रदाय (अना० कवचाय०), सकलदुरितनिवारणे (कनि० नेत्रद्वयाय), शालग्रामाय स्वाहा (करतल० अस्त्राय०)।

ध्यान—तुल्यप्रभं तपनकोटिभिरब्जचक्र-
कौमोदकी-दरविराजित-पाणिपद्मम्।
लक्ष्मीमहीसहितमात्तविचित्रभूषं,
नारायणं कपिशवाससमाश्रयामि॥

मूल मन्त्र—ॐ नमो भगवते विष्णवे श्रीशालग्रामनिवासिने सर्वाभीष्टफलप्रदाय सकलदुरितनिवारिणे शालग्रामाय स्वाहा।

(ङ) विद्यागोपाल मन्त्र—अस्य श्री विद्यागोपालमन्त्रस्य नारद ऋषिः गायत्रीछन्दः श्रीकृष्णो देवता श्रीं बीजं ह्रीं शक्तिः सौः कीलकं मम विद्या-प्राप्त्यर्थं श्रीगोपालप्रीतये जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास—नारदर्षये नमः (शिरसि), गायत्री छन्दसे नमः (मुखे), श्रीकृष्णदेवतायै नमः (हृदये), श्रीं बीजाय नमः (गुह्ये), ह्लीं शक्तये नमः (पादयोः), सौः कीलकाय नमः (नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

करहृदयादि न्यास—ऐं क्लीं कृष्णाय (अंगु० हृदयाय०), ह्लीं गोविन्दाय (तर्ज० शिरसे०), श्रीं गोपीजन (मध्यमा० शिखायै०), वल्लभाय (अना० कवचाय०), स्वाहा सौः (कनि० नेत्रद्वयाय०); विनियोगाय नमः (करतल० अस्त्राय०)।

ध्यान—वामोर्ध्वहस्ते दधतं विद्यासर्वस्वपुस्तकम्।
अक्षमालां च दक्षोर्ध्वे स्फाटिकीं मातृकामयीम्॥
शब्दब्रह्ममयीं वेणुमधः पाणिद्वयेरितम्।
गायन्तं पीतवपुषं श्यामलं कोमलच्छविम्॥
बर्हिबर्हकृतोत्तंसं सर्वज्ञं सर्ववेदिभिः।
उपासितं मुनिगणैरुपतिष्ठेद् हरिं सदा॥

मूल मन्त्र—ऐं क्लीं कृष्णाय ह्लीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा सौः।

वैष्णव अवतारों में ही श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सीता जी के अवतार भी सर्वपूज्य हैं। इनके मन्त्रों में मुख्यतः नामाक्षरों के प्रथम अक्षर में अनुस्वार (नाद-बिन्दु रूप) लगाकर बीज मन्त्र बनाया जाता है और उसी के साथ चतुर्थ्यन्त 'नाम' और 'नमः' जोड़कर मन्त्र बनाया जाता है। इस दृष्टि से श्रीराम, सीता-राम और श्रीलक्ष्मण आदि के मन्त्रों का परिचय भी दर्शनीय है—

दशाक्षरी श्रीराम मन्त्र—अस्य श्रीराममन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीजानकीवल्लभ देवता ममैश्वर्यप्राप्तये जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास—अगस्त्यर्षये नमः (शिरसि), गायत्री छन्दसे नमः (मुखे), श्रीजानकीवल्लभदेवतायै नमः (हृदये), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर हृदयादि न्यास—मूल मन्त्र द्वारा।

ध्यान—श्रीरामः सर्वलोकानां सर्वदुःखनिवारकः।
ददातु प्रत्यहं मह्यं जानकीवल्लभः श्रियम्॥

मूल मन्त्र—श्रीजानकीवल्लभाय स्वाहा।

२३ अक्षरी श्रीराम मन्त्र—अस्य श्रीराममन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः बृहतीच्छन्दः श्रीराम देवता ह्रीं बीजं नमः शक्तिः मम सर्वैश्वर्य-सर्व-सौभाग्य-सर्वलोकवश्य-विद्या ज्ञान सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि०—अगस्त्यर्षये नमः (शिरसि), बृहतीच्छन्दसे नमः (मुखे) श्रीराम देवतायै नमः (हृदये), ह्रीं बीजाय नमः (गुह्ये) नमः शक्तये (पादयोः), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर हृदयादि—रां, रीं, रूं, रैं, रः (इन छह बीजों से)।

ध्यान—कालाम्भोधर कान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासितं,
मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि।
सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवं,
पश्यन्तं मुकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे॥

मूल मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं द्रां दाशरथाय सीतावल्लभाय त्रैलोक्य नाथाय नमः।

सीताराम मन्त्र—अस्य श्रो सीताराममन्त्रस्य सुयज्ञ ऋषिः जगती छन्दः सीतारामदेवता श्रीं बोजं स्वाहा शक्तिः मम श्रीसीताराम प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि०—सुयज्ञर्षये नमः (शिरसि), जगती छन्दसे नमः (मुखे), सीतारामदेवताभ्यां नमः (हृदये), श्रीं बीजाय नमः (गुह्ये), स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर हृदयादि न्यास—ॐ क्लीं (अंगु० हृदयाय०) श्रीं श्रीं (तर्जनी० शिरसे०), रां रामाय नमः (मध्यमा० शिखायै०), श्रीं सीतायै स्वाहा (अना० कवचाय०), रां श्रीं श्रीं (कनि० नेत्रद्वयाय०), क्लीं ॐ (करतल० अस्त्राय०)।

ध्यान—तप्ताष्टापदभां विदेहतनयां रामांकपीठस्थितां,
तद्वक्त्रेक्षणतत्परामनिमिषां हस्तस्थिताब्जोत्पलाम्।
रामं दाशरथिं रमाकुचलसद् हस्तं तदास्येक्षणं,
कस्तूरीरचितं स्वदक्षिण करं ध्यायेदभीष्टाप्तये॥

मूल मन्त्र—ॐ क्लीं श्रीं श्रीं रां रामाय नमः श्रीं सीतायै स्वाहा रां श्रीं श्रीं क्लीं ॐ।

इसी प्रकार उग्रकर्म के लिए—ॐ नमः सीतापतये रामाय हन हन हुं फट्। मन्त्र का प्रयोग होता है।

लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के मन्त्र

(१) ॐ लं लक्ष्मणाय नमः। (२) ॐ भं भरताय नमः। (३) ॐ शं शत्रुघ्नाय नमः।

इन मन्त्रों के अगस्त्य ऋषि, गायत्री छन्द तथा लक्ष्मणादि देवता लं बीज और नमः शक्ति हैं। इनके अनुसार विनियोग और ऋष्यादि न्यास बना लें। कर न्यास और हृदयादि न्यास मूल मन्त्रों से करें। ध्यान के लिए निम्नलिखित पद्य सभी के लिए समान है—

द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पद्मनिभक्षेणम्।
धनुर्बाणकरं रामसेवा-संसक्तमानसम्॥

इनके अतिरिक्त इनके स्तोत्र, कवच, शतनाम, सहस्रनाम आदि भी प्राप्त होते हैं जिनका गुरुप्रदत्त उपदेश के अनुसार स्मरण-अर्चन करना चाहिए।

हनुमद् उपासना की तान्त्रिक अभिव्यक्ति

रुद्रावतार, पवनपुत्र, अजर-अमर, अखण्ड ब्रह्मचारी एवं प्रबल-पराक्रमी भगवान् श्रीहनुमान की उपासना का सूक्ष्म संकेत वेद-मन्त्रों में प्रतिपादित है और सकल साधना मन्त्रों में शिरोमणि ओंकार के मकाराक्षर-शिव के अवतार रूप में इनका प्रादुर्भाव पुराणों में विस्तार से निरूपित है। रामायण रूप महामाला के महनीय रत्न श्रीहनुमान की उपासना से बुद्धि, बल, कीर्ति, धीरता, निर्भीकता, आरोग्य, सुदृढ़ता और वाक्पटुता की प्राप्ति होती है, यह बात आनन्दरामायण में इस प्रकार कही गई है—

बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयत्वमरोगता।
सुदाढ्यं वाक्स्फुरत्वं च हनुमत्स्मरणाद् भवेत्॥८/१३/१६॥

तन्त्र-वाङ्मय में—गारुड़ी तन्त्र, रुद्रयामल, मन्त्रमहार्णव, मन्त्र-महोदधि, सुदर्शन संहिता, अगस्तिसंहिता, नारदपुराणान्तर्गत भागवत-

तन्त्र, तन्त्रसार[1], प्रपंचसार आदि ग्रन्थों में श्रीहनुमान की तान्त्रिक साधना के मन्त्र, कवच, शतनाम, सहस्रनामादि दिए हैं और यही कारण है कि इनकी पूजा-उपासना सर्वत्र व्याप्त है।

(क) भगवान श्रीहनुमान के मन्त्र

शरणागत-वत्सल हनुमान जी की उपासना शीघ्र फल प्रदान करती है। ये यथाशीघ्र सर्वविध संकट दूर करते हैं। इनकी उपासना 'वीर' और 'दास' दोनों रूपों की होती है। विपत्ति-निवारण के लिए वीर-रूप की तथा सुख-समृद्धि की प्राप्ति के लिए दास रूप की आराधना करनी चाहिए। वीर रूप के लिए राजस उपचार एवं दास-रूप के लिए सात्त्विक उपचारों का प्रयोग होता है। अनुष्ठान-प्रकाश, हनुमदुपासना कल्पद्रुम आदि में इसका विशेष वर्णन है। यहां कुछ मन्त्र प्रस्तुत हैं—

(१) हौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं हस्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः। यह बारह अक्षरों वाला महामन्त्रराज है। इसके विनियोगादि इस प्रकार हैं—

विनियोग—अस्य श्रीहनुमन्महामन्त्रराजस्य श्रीरामचन्द्र ऋषिः, जगतीच्छन्दः, श्रीहनुमान्, देवता, ह्सौं बीजं, हस्फ्रें शक्तिः श्रीहनुमत्-प्रसादसिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास—श्रीरामचन्द्र ऋषये नमः (शिरसि)। जगती-च्छन्दसे नमः (मुखे)। श्रीहनुमद्देवतायै नमः (हृदये)। ह्सौं बीजाय नमः (गुह्ये)। हस्फ्रें शक्तये नमः (पादयोः)। (इसमें कीलक नहीं है)। विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

मन्त्रोक्त छः बीजों से करन्यास एवं षडंगन्यास करें। पूरे मन्त्र के एक-एक अक्षर से—'१. मस्तके, २. ललाटे, ३. नेत्रयोः, ४. मुखे, ५. कण्ठे, ६. बाह्वोः, ७. हृदये, ८. कुक्ष्योः, ९. नाभौ, १०. लिंगे, ११. जान्वोः १२. चरणयोः' बोलते हुए द्वादशांग न्यास करें।

इसी प्रकार छः बीज और दो पदों से—'१. मस्तके, ललाटे, ३. मुखे, ४. हृदये, ५. नाभौ, ६. ऊर्वोः, ७. जङ्घयोः, ८. चरणयोः' बोलते हुए अष्टांग न्यास करें।

---

१. महामहोपाध्याय श्रीकृष्णानन्द आगमवागीश कृत इस ग्रन्थ के तृतीय परिच्छेद में श्रीहनुमान की गुह्य वीरसाधना-पद्धति वर्णित है।

ध्यान—उद्यत्कोटघर्कसङ्काशं जगत्प्रक्षोभकारकम्।
श्रीरामांघ्रिध्याननिष्ठं, सुग्रीवप्रमुखार्चितम्॥
महाबलसमायुक्तं भक्तभीति-निवारकम्।
वित्रासयन्तं नादेन राक्षसान् मारुतिं भजे॥

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्र का १२ हजार जप करें। फिर दही, दूध और घी मिले हुए धान से दशांश हवन करें। इस विधान में हनुमद्मन्त्र और उसकी विस्तृत पूजा का भी विधान है; किन्तु उसे विस्तार भय से नहीं दे रहे हैं। इच्छुकजन गुरुजनों से ज्ञान प्राप्त करें। यह प्रयोग—

विद्यां वापि धनं वापि राज्यं वा शत्रुविग्रहम्।
तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम्॥

इस वचन के अनुसार सभी वांछित फलों को प्राप्त कराता है।

(ख) **अन्य प्रयोग**—अष्टमी या चतुर्दशी को मंगलवार अथवा रविवार के दिन तेल, बेसन और उड़द के आटे से बनाई हुई हनुमान जी की मूर्ति को प्राण प्रतिष्ठा करके तेल और घी का दीपक जलाएं तथा विधिवत् पूजन कर पूआ, भात, शाक, मिठाई, बड़े, पकौड़ी आदि का भोग लगाएं। विशेष यह है कि इसमें २७ पान के पत्ते, सुपारी आदि मुख शुद्धि की वस्तुएं रखकर उन्हें तीन-तीन आवरण वाले बीड़े बनाकर हनुमान जी को अर्पित करें। फिर आरती, स्तुति आदि करके अपना मनोरथ निवेदन करें और प्रार्थनापूर्वक विसर्जन करें। इसमें उपर्युक्त मन्त्र का जप और उसी मन्त्र से पूजन करने पर सभी कामनाओं की शीघ्र पूर्ति होती है। यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन तथा उन्हें मान देकर दक्षिणादानपूर्वक यह प्रयोग सम्पन्न करना चाहिए।

२. **ॐ ऐं श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं।**
यह ग्यारह बीजों का मन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियों का दाता है।

३. **नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा।**
यह अठारह अक्षरों का मन्त्र है।

४. **हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्।**

५. **ह पवननन्दनाय स्वाहा।** इत्यादि मन्त्र भी महत्त्वपूर्ण हैं।

शाबर मन्त्रों के समान ही हनुमान जी के मन्त्र भी बहुत से प्राप्त होते हैं। उनमें से एक मन्त्र इस प्रकार है—

६. **ॐ यो यो हनूमन्त फलफलित धग्धगिति आयुरास परुडाह।** यह २५ अक्षरों का मन्त्र प्लीहा रोग दूर करने में प्रयुक्त होता है। जिसको यह रोग हो उसके पेट पर पान का पत्ता रखें और उस पर आठ पर्तें लपेटा हुआ वस्त्र रखकर उसे ढक दें। फिर हनुमान जी का स्मरण करके उस पर बांस का एक टुकड़ा रखें। बाद में बेर की लकड़ी से बनी छड़ी लेकर उसे जंगली पत्थर से प्रकट की गई आग पर उक्त मन्त्र से सात बार तपायें, फिर उस छड़ी से पेट पर रखे हुए बांस के टुकड़े पर सात बार प्रहार करें। इससे 'प्लीहा' रोग नष्ट हो जाता है।

बन्धन मुक्ति के लिए

७. **"हरि मर्कट मर्कट वाम करे परिमुञ्चति मुञ्चति शृंखलिकाम्।"** इस मन्त्र को दायें हाथ पर बायें हाथ से लिखकर मिटा दें और १०८ बार इसका जप करें।

ब्रह्मचर्य रक्षा एवं तत्त्व ज्ञान के लिए

८. **ॐ नमो हनुमते मम मदनक्षोभं संहर संहर आत्मतत्त्वं प्रकाशय प्रकाशय हुं फट् स्वाहा।**

भूत-प्रेत नाश के लिए

९. **ॐ श्रीमहाञ्जनेयाय पवनपुत्रावेशयावेशय ॐ श्रीहनुमते फट्।**

इन मन्त्रों के विनियोग, न्यास, ध्यान, पीठ पूजा आदि भी विस्तार से प्राप्त होते हैं, उन्हें साधना के इच्छुक गुरु कृपा से प्राप्त करें।

रुद्रयामल में एकमुखी, पंचमुखी और एकादशमुखी हनुमान की विशिष्ट उपासना वर्णित है। इनके मन्त्र, स्तोत्र, कवच आदि भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा विद्वानों का कथन है। 'श्रीहनुमद् दीपदान' का भी बड़ा माहात्म्य है। सनत्कुमार संहिता में रुद्रयामल के नाम से ही इसका विस्तृत वर्णन द्रष्टव्य है।

पंचमुखहनुमत् कवच में निम्नलिखित मन्त्र प्रयोग सिद्ध बतलाए हैं—

१. प्रेतबाधानिवारण के लिए—

ॐ दक्षिणमुखाय पंचमुखहनुमते करालवदनाय नारसिंहाय नारसिंहाय ॐ हां हीं हूं हौं हः सकलभूतप्रेतदमनाय स्वाहा। (१० हजार जप तथा अष्टगन्ध से हवन)।

२. विषापहार के लिए—

ॐ पश्चिममुखाय गरुडाननाय पंचमुखहनुमते मं मं मं मं मं सकलविषहराय स्वाहा। (दीपावली के दिन अर्धरात्रि में हनुमानजी के सम्मुख घृतदीप जलाकर १० हजार जप)।

३. शत्रुसंकट निवारण के लिए—

ॐ पूर्वकपिमुखाय पंचमुखहनुमते टं टं टं टं टं सकलशत्रुसंहरणाय स्वाहा। (१५ हजार जप)।

४. महामारी, अमंगल एवं ग्रहदोष निवारण के लिए—

ॐ उत्तरमुखाय आदि वराहाय लं लं लं लं लं सी हं सी हं नील-कण्ठमूर्तये लक्ष्मणप्राणदात्रे वीरहनुमते लंकोपदहनाय सकल सम्पत्ति-कराय पुत्र पौत्राद्यभीष्ट कराय ॐ नमः स्वाहा।

५. वशीकरण के लिए—

ॐ नमो भगवते पंचवदनाय हनुमते ऊर्ध्वमुखाय हयग्रीवाय रुं रुं रुं रुं रुं रुद्रमूर्तये सकललोक वशकराय वेदविद्यास्वरूपिणे ॐ नमः स्वाहा।

(ग) पंचमुखी-वीर-हनुमत्कवच-स्तोत्र

विनियोगः—ॐ अस्य श्रीपंचमुखिहनुमत्कवचस्तोत्रमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः श्रीहनुमत्परमात्मा देवता पंचमुखी हनुमानिति बीजं मं वायुपुत्रायेति शक्तिः अंजनीसूनुरिति कीलकं श्रीपंचमुखि-वीरहनुमत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास—ब्रह्मणे ऋषये नमः (शिरसि), गायत्रीच्छन्दसे नमः (मुखे), श्रीहनुमत्परमात्म देवतायै नमः (हृदये), पंचमुखि-हनुमद् बीजाय नमः (गुह्ये), मं वायुपुत्रायेति शक्तये नमः (पादयोः), अंजनी-सूनुरिति कीलकाय नमो(नाभौ), श्रीपंचमुखि-वीरहनुमत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर हृदयादि न्यास—ॐ रां अंजनीसुताय (अंगु० हृदयाय०), ॐ रीं रुद्रमूर्तये (तर्जनी० शिरसे०), ॐ रूं वायुपुत्राय (मध्यमा० शिखायै०), ॐ रैं अग्निगर्भाय (अना० कवचाय०), ॐ रौं रामदूताय (कनि० नेत्रत्रयाय०)ॐ रः ब्रह्मास्त्रनिवारणाय(करतल० अस्त्राय फट्)। इसके पश्चात् कवच जप का विनियोग कहा है जिसमें श्रीहनुमान के स्वरूप का वर्णन भी है।

पंचवक्त्रहनुमते श्रीरामचन्द्रदूताय अंजनीपुत्राय वायुसुताय महाबलाय सीताशोकदुःखनिवारणाय लंकादहन-लोकोपद्रवहननाय महाबलप्रचण्डाय फाल्गुनसखाय कोलाहल-प्रशम-सकलब्रह्माण्डविश्व-रूपाय सप्तसमुद्र-निरालम्बलंघनाय पिंगलनयनाय अमितविक्रमाय भीमविक्रमाय सूर्यबिम्बफलसेविताय दंष्ट्रि-निरालङ्कृताय संजीवनी-सालंकृताय दशग्रीवमर्दनाय श्रीरामचन्द्रपादुकाय प्रथमब्रह्माण्डनायकाय लक्ष्मणप्राणदात्रे रक्षकाय अंगद-लक्ष्मणाय महाकपिसैन्यप्राणनिर्वाह-काय दशकन्धरविध्वंसनाय रामेष्ट महाफाल्गुनाय सीतासमेतरामचन्द्र-वर प्रसादकाय षट्प्रयोगसाधकाय मम पंचमुखिहनुमत्कवच जपे विनियोगः।

इसके पश्चात् पंचमुख हनुमान का ध्यान कहा है, जिनमें उनके १. कपिवक्त्र, २. नारसिंहवक्त्र, ३. गरुड़वक्त्र, ४. वराहवक्त्र एवं ५. हयवक्त्र का वर्णन और भुजा-आयुध आदि के भिन्न-भिन्न ध्यानों का फल भी निर्दिष्ट है। यथा—

ॐ पञ्चवक्त्रं महाभीमं त्रिपञ्चनयनैर्युतम्।
सूर्यकोटि-कराभासं कपिवक्त्रं सुतेजसम्॥१॥
बाहुभिर्दशभिर्युक्तं सर्वकामार्थ-सिद्धिदम्।
पूर्वं तु वानरं वक्त्रं कोटिसूर्यसमप्रभम्॥२॥
दंष्ट्राकरालवदनं भृकुटी कुटिलेक्षणम्।
आसीनं दक्षिणे वक्त्रे नारसिंहं महाद्भुतम्॥३॥
अत्युग्रतेजो ज्वलितं भीषणं भयनाशनम्।
पश्चिमे गारुडं वक्त्रं वज्रतुल्यं महाबलम्॥४॥
सर्वनाग प्रशमनं विषरोग-निवारणम्।
उत्तरे सूकरं वक्त्रं पाताल-सिद्धिदं नृणाम्॥५॥

ऊर्ध्वं हयाननं घोरं दानवान्तकरं परम्।
येन वक्त्रेण विप्रेन्द्र ! सर्वा विद्या विनिर्ययुः ॥६॥
एतत्पञ्चमुखं तस्य ध्यायतामभयङ्करम्।
खड्गं त्रिशूलं खट्वाङ्गपाशमङ्कुश-पर्वताः ॥७॥
भिन्दिपालं च मुद्राश्च ज्ञानमुद्रा प्रकीर्तिता।
दोर्मुष्टिविगता मूर्ध्नि आयुधैर्दशभिर्भुजैः ॥८॥
एतान्यायुधजालानि धारयन्तं भजाम्यहम्।
प्रेतासनोपविष्टं च सर्वाभरण-भूषितम् ॥९॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवं हनुमद्विश्वतो मुखम् ॥१०॥
पञ्चास्यमच्युतमनेक विचित्र वर्णं,
चक्रं सुशङ्खविधृतं कपिराजवर्यम्।
पीताम्बराहिमुकुटैरुपशोभिताङ्गं,
पिङ्गाक्षमाद्यमनिशं मनसा स्मरामि ॥११॥
पञ्चास्यमच्युतमनेकविचित्रवर्णं,
श्रीशङ्ख चक्र रमणीय भुजाग्रदेशम्।
पीताम्बरं मुकुटकुण्डलनूपुराङ्ग-
मुद्योतितं कपिवरं हृदि भावयामि ॥१२॥
चन्द्राभं चरणारविन्दयुगलं कौपीनमौञ्जीधरं,
नाभ्यां वै कटिसूत्रयुक्तवसनं यज्ञोपवीतं शुभम्।
हस्ताभ्यामवलम्ब्य चाञ्जलिपुटे हारावलीं कुण्डलं,
बिभ्रद्दीर्घशिखां प्रसन्नवदनं वन्देऽञ्जनानन्दनम् ॥१३॥

श्रीहनुमान जी की उपासना में नित्य-नैमित्तिक कर्मगत निरन्तरता रहने से काम्यकर्मों में शीघ्र सफलता मिलती है। 'श्रीहनुमत् पंचांग' के अनुसार भी अन्य तन्त्र एवं कवचादि प्राप्त होते हैं। 'नरपति-जयचर्या' में हनुमद् नवार्ण, हनुमत्पताका, रक्षाविधि, पिच्छकविधि, होमविधि, मण्डूक तथा कलिकुण्ड यन्त्रविधि भी दी गई हैं। 'मन्त्र-महोदधि' में भी इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

(घ) इनमें अनुभव सिद्ध दो मन्त्र इस प्रकार हैं—

१. ॐ नमो हनुमते सर्वग्रहान् भूत-भविष्यद् वर्तमानान् दूर-समीपस्थान् सर्वकालदुष्टबुद्धीनुच्चाटयोच्चाटय परबलान् क्षोभय क्षोभय मम सर्वकार्याणि साधय साधय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं फट्। घे घे घे ॐ शिव सिद्धं ॐ ह्रां ॐ ह्रीं ॐ ह्रूं ॐ ह्रैं ॐ ह्रौं ॐ ह्रः स्वाहा। पर कृत-यन्त्र-मन्त्र-पराहंकार-भूत-प्रेत-पिशाच दृष्टि-सर्वविघ्न-दुर्जन चेष्टा कुविद्या सर्वोग्रभयानि निवारय निवारय बन्ध बन्ध लुण्ठ लुण्ठ विलुंच विलुंच किलि किलि किलि सर्वकुयन्त्राणि दुष्टवाचं हुं फट् स्वाहा।

२. ॐ नमो हनुमते शोभिताननाय यंशोऽलंकृताय अञ्जना-गर्भसम्भूताय रामलक्ष्मणानन्दकाय कपिसैन्यप्रकाशनपर्वतोत्पाटनाय सुग्रीव साह्यकरण परोच्चाटन कुमारब्रह्मचर्य गम्भीर शब्दोदय ॐ ह्रीं सर्वदुष्टग्रहनिवारणाय स्वाहा। इत्यादि।

हनुमद्-दीपदान का भी बहुत महत्त्व है जिसके सम्बन्ध में विशेष ज्ञातव्य अन्य ग्रन्थों से प्राप्त करें।

सर्वोपयोगी मन्त्र-स्तोत्रादि संग्रह

(क) **मन्त्र एवं स्तोत्रों की भूमिका**—'आवश्यकता के अनुसार आविष्कार होता है' यह बात बहुत ही प्रसिद्ध है। मन्त्र शास्त्र की अपनी स्वतन्त्र व्यवस्था है। यद्यपि पूर्वाचार्यों ने त्रैकालिक दीर्घ-दृष्टि से मानव-मात्र की आवश्यकताओं का आकलन करके उनकी पूर्ति के लिए सभी सम्भव उपायों को संग्रहीत किया है, तथापि साधना करने वाले की व्यापक दृष्टि एवं कर्त्तव्य शक्ति का उसमें होना अत्यावश्यक है। मन्त्र, स्तोत्र, यन्त्र, तन्त्र, योग तथा अन्य उपायों के **'समष्टि-क्रिया'** और **'व्यष्टि-क्रिया'** के रूप में दो विभाग हैं। जिसमें प्रधानतः इष्टदेव पर ही पूर्ण रूप से अवलम्बित रहकर उपासना की जाती है और अपनी समस्त आवश्यकताओं को बिना व्यक्त किए उसी पर छोड़ दिया जाता है, वह है समष्टि-क्रिया। व्यष्टि-क्रिया में प्रत्येक तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए स्वतन्त्र रूप से क्रिया की जाती है। ऐसी क्रिया में एक निश्चित काल में निश्चित पद्धति से उपासना होती है।

उपर्युक्त दोनों क्रियाओं में भी एक पद्धति **'सर्वाश्रया'** होती है जिसमें मन्त्र एवं स्तोत्रादि सभी का यथोचित आश्रय अपेक्षित होता है और द्वितीय पद्धति है **'एकाश्रया'**। इसमें किसी एक पद्धति का आश्रय

लेकर साधना करने का विधान है। हमने इन दोनों ही प्रकारों को पूर्व-दर्शित विवरणों में मुख्यतः 'रुद्रयामल' के माध्यम से प्रस्तुत किया है। साथ ही यह भी ध्यान रखा है कि जिन विषयोंका रुद्रयामल में संकेत मिलता है अथवा आज जो अंश उपलब्ध नहीं हैं, उनका अन्य तन्त्र ग्रन्थों से संकलन करके भी कुछ अंशों में लेखन किया है।

इसी परम्परा में कुछ और आवश्यक प्रयोगों का संग्रह यहां दे रहे हैं। प्रयोगकर्ताओं को इनसे लाभ उठाने के लिए न्यास-ध्यानादि की विधियां पूर्वोक्त पद्धति से ज्ञात कर लेनी चाहिएं।

(ख) गणपति मन्त्र एवं स्तोत्र

१. **गणपति का विघ्न विनाशन मन्त्र**—"ॐ गं गणपतये विघ्न विनाशिने नमः।

२. **लक्ष्मीविनायक मन्त्र**—ॐ श्रीं गं सौम्याय गणपतये वर वर वरदे सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।

३. **श्वेतार्क गणपति मन्त्र**—ॐ नमो भगवते विनायकाय प्रसन्नाय ह्रीं स्वाहा। (पुष्य नक्षत्र में श्वेतार्क की जड़ की मूर्ति बनाएं। १०८ मन्त्र जप कर मूर्ति को अभिमन्त्रित करें। उसके पश्चात् मधु और घृत में मूर्ति का ७ दिन तक अधिवास करके निकालें तथा पंचामृत से स्नान कराकर १०८ कनेर के पुष्प, १०८ अखण्ड चावल एवं १०८ गूगल की गोलियों द्वारा मन्त्र से हवन करें। इस प्रकार पूरी विधि करके मूर्ति को पनघट पर गाड़ दें। वहां यदि किसी का घड़ा फूटे तो समझना कि मूर्ति चैतन्य है। फिर मूर्ति निकालकर घर लाएं और विधिवत् प्रतिष्ठा करके पूजा करें। प्रतिदिन नैवेद्य में मोदक रखें। धन्य-धान्य-लक्ष्मी प्राप्त होते हैं)।

४. **ऋणहर गणपति का विनियोग**—अस्य श्रीऋणहरणकर्तृ-गणपतिस्तोत्रमन्त्रस्य सदाशिव ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीऋणहरणकर्तृ-गणपतिर्देवता ग्लौं बीजं शक्तिः गौं कीलकं मम सकल ऋणनाशने विनियोगः।

(ऋष्यादि न्यास पूर्ववत् तथा कर-हृदयादि-न्यास मूल मन्त्र से करें)।

ध्यान—ॐ सिन्दूरवर्णं द्विभुजं गणेशं, लम्बोदरं पद्मदले निविष्टम्।
ब्रह्मादि देवैः परिसेव्यमानं, सिद्धर्युतं तं प्रणमामि देवम्॥

जप मन्त्र—ॐ गणेश ऋणं छिन्धि छिन्धि वरेण्यं हुं नमः फट् ।

स्तोत्र—सृष्टयादौ ब्रह्मणा सम्यक् पूजितः फल सिद्धये ।

सदैव पार्वतीपुत्रः, ऋणनाशं करोतु मे ॥१॥

त्रिपुरस्य वधात् पूर्वं शम्भुना सम्यगर्चितः ।

सदैव पार्वतीपुत्रः, ऋणनाशं करोतु मे ॥२॥

हिरण्यकशिप्वादीनां, वधार्थं विष्णुनार्चितः ।

सदैव पार्वतीपुत्रः, ऋणनाशं करोतु मे ॥३॥

महिषस्य वधे देव्या, गणनाथः प्रपूजितः ।

सदैव पार्वतीपुत्रः, ऋणनाशं करोतु मे ॥४॥

इस स्तोत्र का पाठ एवं मूल मन्त्र का जप करते रहने से कर्ज से छुटकारा मिलता है ।

सन्तान-गणपति-स्तोत्र

नमोऽस्तु गणनाथाय सिद्धिबुद्धियुताय च ।

सर्वप्रदाय देवाय पुत्र-वृद्धि-प्रदाय च ॥१॥

गुरूदराय गुरवे गोप्त्रे गुह्यासिताय ते ।

गोप्याय गोपिताशेष-भुवनाय चिदात्मने ॥२॥

विश्वमूलाय भव्याय विश्वसृष्टिकराय ते ।

नमो नमस्ते सत्याय सत्यपूर्णाय शुण्डिने ॥३॥

एकदन्ताय शुद्धाय सुमुखाय नमो नमः ।

प्रपन्न-जनपालाय प्रणतार्ति-विनाशिने ॥४॥

शरणं भव देवेश सन्तर्ति सुदृढां कुरू ।

भविष्यन्ति च ये पुत्रा मत्कुले गणनायक ॥५॥

ते सर्वे तव पूजार्थं निरताः स्युर्वरो मतः ।

पुत्रप्रदमिदं स्तोत्रं सर्वसिद्धि-प्रदायकम् ॥६॥

उपर्युक्त 'सन्तान-गणपति-स्तोत्र' का भक्तिपूर्वक नित्य पाठ करने से सन्तान प्राप्ति होती है । नित्य प्रातः श्रीगणपति की दूर्वा से पूजा करें और यथाशक्ति गणेश मन्त्र का जप करें तथा इस स्तोत्र के २१, अथवा ११ पाठ करें ।

(ग) सन्तान कामेश्वरी-प्रयोग

शक्ति उपासना के क्रम में 'सन्तान कामेश्वरी' प्रयोग का बड़ा महत्त्व है। जिन महिलाओं को गर्भ-निरोध हो जाता हो अथवा गर्भ सम्बन्धी अन्य दोषों के कारण जिन्हें सन्तान प्राप्ति नहीं होती हो, उनके लिए यह प्रयोग शीघ्र फलदायक है। यन्त्र पूजा, मन्त्र जप एवं औषध प्रयोग ये तीन क्रम होते हैं। यहां इनका संक्षेप में निर्देश इस प्रकार है—

यन्त्र—भोज पत्र पर शुभ मुहूर्त में अष्ट गन्ध से मध्य में शक्ति त्रिकोण, बाहर षट्कोण, उसके बाहर अष्ट दल और भूपुर बनाकर यन्त्र बना लें और उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करें तथा षोडशोपचार पूजा करें। जितने दिन जप चले, पूजा करते रहना चाहिए।

मन्त्र विनियोग—अस्य श्रीसन्तानकामेश्वरी-महामन्त्रस्य मन्मथ ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीसन्तानकामेश्वरी देवता क्लीं बीजं श्रीं शक्तिः श्रीं कीलकं (अमुक्याः) मम सन्तानप्राप्तये। वृद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—मन्मथऋषये नमः (शिरसि), त्रिष्टुप् छन्दसे नमः (मुखे) श्रीसन्तानकामेश्वरी देवतायै नमः (हृदये), क्लीं बीजाय नमः (गुह्ये), श्रीं शक्तये नमः (पादयोः), श्रीं कीलकाय नमः (नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर हृदयादि०—ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः (इन छः कूटों द्वारा)।

ध्यान—भजे कामेश्वरीं देवीं शिवाङ्के रूपसन्निभाम्।
व्रतानुष्ठान-मात्रेण आशु सन्तानवर्धिनीम्॥

पंचोपचार मानस पूजन करके जप करें।

मूल मन्त्र—ॐ क्लीं ऐं ह्रीं श्रीं नमो भगवति सन्तानकामेश्वरि गर्भविरोधं निरासय निरासय सम्यक् शीघ्रं सन्तानमुत्पादयोत्पादय स्वाहा।

औषध प्रयोग—ऋतुकाल के पश्चात् सन्तान के इच्छुक पति और पत्नी जौ के आटे में शकर मिलाकर ७ गोलियां चने के बराबर आकार की बना लें और उन्हें उपर्युक्त (२१) मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित कर लें और एक ही दिन में खा लें।

सन्तान-प्राप्ति के लिए अन्य प्रयोगों में 'सन्तान-गोपाल' मन्त्र का प्रयोग प्रसिद्ध है। अहल्याकृत-स्तोत्र पाठ हरिवंश पुराणोक्त स्तोत्र

पाठ, हरिवंश पुराण श्रवण तथा विशिष्ट औषधोपचार से भी लाभ होता है। 'ललिता सहस्रनाम' के अन्त में दी गई फलश्रुति में लिखा है कि—इस सहस्रनाम के पाठ से नवनीत को अभिमन्त्रित करके सन्ताना-भिलाषिणी स्त्री को खिलाने से पुत्र प्राप्ति होती है। इसी प्रकार के अन्य अनेक प्रयोग मिलते हैं उनमें से किसी एक को विधि और श्रद्धा के साथ करने से अवश्य लाभ होता है।

धनदा-लक्ष्मी-स्तोत्र

सद्य: धन प्राप्ति के लिए यह स्तोत्र महत्त्वपूर्ण है। शिव मन्दिर, केले का वन, बिल्व वृक्ष के मूल अथवा देवी के मन्दिर में हविष्य भोजन, ब्रह्मचर्य पालन करते हुए स्तोत्र के प्रतिदिन १०० पाठ करने से लक्ष्मी प्राप्त होतो है। ११००० का पुरश्चरण करें। मूल पाठ इस प्रकार है—

धनदे धनपे देवि, दानशीले दयाकरे।
त्वं प्रसीद महेशानि यदर्थं प्रार्थयाम्यहम् ॥१॥
धरामरप्रिये पुण्ये, धन्ये धनद-पूजिते।
सुधनं धार्मिकं देहि, यजमानाय सत्वरम् ॥२॥
रम्ये रुद्रप्रियेऽपर्णे, रमारूपे रतिप्रिये।
शिखासख्यमनोमूर्ते ! प्रसीद प्रणते मयि ॥३॥
आरक्त चरणाम्भोजे, सिद्धि-सर्वार्थदायिनि।
दिव्याम्बरधरे दिव्ये, दिव्यमाल्यानुशोभिते ॥४॥
समस्तगुणसम्पन्ने, सर्वलक्षण-लक्षिते।
शरच्चन्द्रमुखे नीले, नीलनीरद लोचने ॥५॥
चञ्चरीक - चमू - चारु - श्रीहार - कुटिलालके।
दिव्ये दिव्यवरे श्रीदे, कलकण्ठरवामृते ॥६॥
हासावलोकनैर्दिव्यैर्भक्ताचिन्तापहारके।
रूप-लावण्य - तारुण्य - कारुण्यगुणभाजने ॥७॥
क्वणत्-कङ्कण-मञ्जीरे, रस-लीलाऽऽकराम्बुजे।
रुद्रव्यक्त-महत्तत्त्वे, धर्माधारे धरालये ॥८॥

प्रयच्छ यजमानाय, धनं धर्मैक-साधनम् ।
मातस्त्वं वाऽविलम्बेन, ददस्व जगदम्बिके ॥९॥
कृपाब्धे करुणागारे, प्रार्थये चाशु सिद्धये।
वसुधे वसुधारूपे, वसु-वासव-वन्दिते ॥१०॥
प्रार्थिने च धनं देहि, वरदे वरदा भव।
ब्रह्मणा ब्राह्मणैः पूज्या, त्वया च शङ्करो यथा ॥११॥
श्रीकरे शङ्करे श्रीदे! प्रसीद मयि किङ्करे।
स्तोत्रं दारिद्रय-कष्टार्त-शमनं सुधन-प्रदम् ॥१२॥
पार्वतीश-प्रसादेन-सुरेश किङ्करे स्थितम् ।
मह्यं प्रयच्छ मातस्त्वं त्वामहं शरणं गतः ॥१३॥

यह स्तोत्र स्वयं धनदा द्वारा ही कथित है। इसकी फलश्रुति में कहा गया है कि—इसके पाठ से धन-लाभ, दरिद्रता का नाश और सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है। यह भगवती धनदा लक्ष्मी कामधेनु-स्वरूप है। इस स्तोत्र में दिए गए सम्बोधन पदों की नमोऽन्त नामावली बनाकर लक्ष्मी जी का अर्चन भी किया जा सकता है।

लक्ष्मी-प्राप्ति की इच्छा करना अत्यन्त स्वाभाविक है; किन्तु प्रायः देखा जाता है कि उसके लिए उपासना में श्रम नहीं किया जाता है। जिस प्रकार उद्योग करने से लक्ष्मी प्राप्त होती है, उसी प्रकार उपासना में भी पूरी तरह से श्रम होना चाहिए। कलियुग में सिद्ध-मन्त्रों के जप और स्तोत्रों के पाठ से सामान्य लाभ तो तत्काल हो जाता है; किन्तु स्थायी लाभ के लिए जपादि का 'कलौ चतुर्गुणाः प्रोक्ताः' के अनुसार चौगुना प्रयोग करना चाहिए और निराश न होकर निरन्तर साधना करते रहना चाहिए।

रुद्रयामल-प्रोक्त बुद्धि बढ़ाने के उपाय

बुद्धि की प्रधान देवता सरस्वती है। दूसरे प्रधान देव गणपति की भी प्रसिद्धि है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य देव विद्या-बुद्धि प्रदान नहीं करते। प्रत्येक देव का मूल स्वरूप ब्रह्ममय है। ब्रह्माण्ड में व्याप्त समस्त शक्तियों के वे अधिपति हैं। वे अपने भक्त के अभीष्ट की पूर्ति के लिए सदा समर्थ हैं। इसी दृष्टि से भगवान हनुमान

से भी विद्या-बुद्धि प्राप्ति की प्रार्थना की जाती है। तन्त्रों में ऐसे अनेक प्रयोग वर्णित हैं जिनके द्वारा ज्ञान-प्राप्ति एवं प्राप्त-ज्ञान की अभिवृद्धि के कार्य सिद्ध होते हैं।

भगवान् के अट्ठाइस नामों का स्मरण इस कार्य के लिए महत्त्वपूर्ण बतलाते हुए रुद्रयामल में 'प्रज्ञावर्धन-स्तोत्र' दिखलाया गया है। इस स्तोत्र की फल-श्रुति में कहा गया है कि—

'उत्कृष्ट श्रद्धा से युक्त होकर यदि कोई इन २८ नामों का त्रिकाल स्मरण करता है तो वह यदि मूक हो तब भी परम वाचाल—उत्तम वक्ता बन जाता है। ये नाम महामन्त्रमय हैं, अतः इनके स्मरण से महान् प्रज्ञा प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है।' इसके प्रयोग की प्रक्रिया इस प्रकार है—

पुष्य-नक्षत्र से इसे आरम्भ करके आगे आने वाले पुष्य नक्षत्र तक इसके नित्य पाठ करें। पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर १० बार (२८ बार, १०८ बार अथवा इससे अधिक) पाठ किए जाएं। ऐसा करने से इस स्तोत्र का पुरश्चरण भी हो जाता है। पाठ करने से पूर्व भगवान् कार्तिकेय का ध्यान करें तथा अन्य सभी विधान—जो कि अनुष्ठान के निमित्त निर्दिष्ट हैं, उनका पालन करें। मूर्ति, चित्र अथवा यन्त्र की पूजा भी की जा सकती है। पाठ के लिए केवल इन नामों के आदि में 'ॐ' तथा अन्त में 'नमः' लगाकर मन्त्र इस प्रकार बनाने चाहिएं—

१. ॐ योगोश्वराय नमः। २. ॐ महासेनाय नमः।
३. ॐ कार्तिकेयाय नमः। ४. ॐ अग्निनन्दनाय नमः।
५. ॐ सनत्कुमाराय नमः। ६. ॐ सेनान्ये नमः।
७. ॐ स्वामिने नमः। ८. ॐ शंकरसम्भवाय नमः।
९. ॐ गाङ्गेयाय नमः। १०. ॐ ताम्रचूडाय नमः।
११. ॐ ब्रह्मचारिणे नमः। १२. ॐ शिखिध्वजाय नमः।
१३. ॐ तारकारये नमः। १४. ॐ उमापुत्राय नमः।
१५. ॐ क्रौञ्चारातये नमः। १६. ॐ षडाननाय नमः।
१७. ॐ शब्दब्रह्मसमूहाय नमः। १८. ॐ ॐ सिद्धाय नमः।
१९. ॐ सारस्वताय नमः। २०. ॐ गुहाय नमः।
२१. ॐ भगवते सनत्कुमाराय नमः। २२. ॐ भोगमोक्षप्रदाय नमः।
२३. ॐ प्रभवे नमः। २४. ॐ शरजन्मने नमः।

२५. ॐ गणाधीशपूर्वजाय नम :   २६. ॐ मुक्तिमार्गकृते नमः।
२७. ॐ सर्वारातिप्रमाथिने नमः। २८. ॐ वांछितार्थ-प्रदायका नमः।

मूल पाठ—प्रज्ञावर्द्धन-स्तोत्रम्

योगीश्वरो महासेनः कार्तिकेयोऽग्नि-नन्दनः।
सनत्कुमारः सेनानीः स्वामी शङ्कर-सम्भवः॥१॥
गाङ्गेयस्ताम्रचूडश्च, ब्रह्मचारी शिखिध्वजः।
तारकारिरुमापुत्रः, क्रौञ्चारातिः षडाननः॥२॥
शब्द-ब्रह्मसमूहश्च, सिद्धः सारस्वतो गुहः।
सनत्कुमारो-भगवान्, भोगमोक्षप्रदः प्रभुः॥३॥
शरजन्मा गणाधोश-पूर्वजो मुक्तिमार्गकृत्।
सर्वाराति-प्रमाथो च, वाञ्छितार्थ-प्रदायकः॥४॥

फलश्रुति—

अष्टाविंशतिनामानि, त्रिकालं तु हि यः पठेत्।
प्रकर्षश्रद्धयायुक्तो, मूको वाचस्पतिर्भवेत्॥५॥
महामन्त्रमयानां च, महानाम्नां प्रकीर्तनात्।
महाप्रज्ञामवाप्नोति, नात्र कार्या विचारणा॥६॥
पुष्यनक्षत्रमारभ्य, दशवारं पठेन्नरः।
पुष्यनक्षत्रपर्यन्ताश्वत्थमूले दिने दिने॥७॥
पुरश्चरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।

[इति श्रीरुद्रयामलरहस्ये प्रज्ञावर्द्धनस्तोत्रं सम्पूर्णम्।]

आरूढा सरस्वती स्तोत्र

प्रार्थना एवं प्रणति के पद्य

आरूढा श्वेतहंसैर्भ्रमति च गगने दक्षिणे चाक्षसूत्रं,
वामे हस्ते च दिव्याम्बरकनकमयं पुस्तकं ज्ञानगम्यम्।
सा वीणां वादयन्ती स्वकरजपैः शास्त्र-विज्ञानशब्दैः,
क्रीडन्ती दिव्यरूपा करकमलधराभारती सुप्रसन्ना॥१॥

श्वेतपद्मासना देवी श्वेतगन्धानुलेपना।
सा च तैर्मुनिभिः सर्वैर्ऋषिभिः स्तूयते सदा ॥२॥
या कुन्देदुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणा वरदण्डमण्डितकरा या श्वेत पद्मासना॥
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिर्देवैः सदा वन्दिता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥३॥
शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं,
वीणा-पुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्॥
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥४॥

बीजमन्त्रगर्भित स्तुति

ह्लीं ह्लीं हृद्यैकबीजे शशिरुचिकमले कल्पविस्पष्टशोभे,
भव्ये भव्यानुकूले कुमतिवनदवे विश्ववन्द्याङ्घ्रिपद्मे।
पद्मे पद्मोपविष्टे प्रणतजनमनोमोदसम्पादयित्रि,
प्रोत्फुल्लज्ञानकूटे हरिनिजदयिते देवि संसारसारे ॥५॥
ऐं ऐं ऐं दृष्टमन्त्रे कमलभवमुखाम्भोजभूते स्वरूपे,
रूपारूपप्रकाशे सकलगुणमये निर्गुणे निर्विकारे।
न स्थूले नैव सूक्ष्मेऽप्यविदितविभवे नापि विज्ञानतत्त्वे,
विश्वे विश्वान्तराले सुरवरनमिते निष्कले नित्यशुद्धे ॥६॥
ह्लीं ह्लीं ह्लीं जाप्यतुष्टे हिमरुचिमुकुटे वल्लकीव्यग्रहस्ते,
मातर्मातर्नमस्ते दह दह जडतां देहि बुद्धिं प्रशस्ताम्।
विद्ये वेदान्तवेद्ये परिणतपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे,
मार्गातीतस्वरूपे भव मम वरदा शारदे शुभ्रहारे ॥७॥
धीं धीं धीं धारणाख्ये धृतिमतिनतिभिर्नामभिः कीर्तनीये,
नित्ये नित्ये निमित्ते मुनिगणनमिते नूतने वै पुराणे।
पुण्ये पुण्यप्रवाहे हरिहरनमिते नित्यशुद्धे सुवर्णे,
मातर्मात्रार्धतत्त्वे मतिमतिमतिदे माधव-प्रीतिमोदे ॥८॥
ह्लूं ह्लूं ह्लूं स्वस्वरूपे दह दह दुरितं पुस्तकव्यग्रहस्ते,
सन्तुष्टाकारचित्ते स्मितमुखि सुभगे जृम्भिणि स्तम्भविद्ये।
मोहे मुग्धप्रवाहे कुरु मम विमतिध्वान्तविध्वंसमीड्ये,
गीर्वाग्गीर्वाग्भारति त्वं कविवररसनासिद्धिदे सिद्धिसाध्ये ॥९॥

आत्मनिवेदन

स्तौमि त्वां त्वां च वन्दे मम खलु रसनां नो कदाचित्त्येजेथा,
मा मे बुद्धिर्विरुद्धा भवतु न च मनो देवि मे यातु पापम्।
मा मे दु:खं कदाचित्क्वचिदपि विषयेऽप्यस्तु मे नाकुलत्वम्,
शास्त्रे वादे कवित्वे प्रसरतु मम धीर्मास्तु कुण्ठा कदापि ॥१०॥
इत्येतै: श्लोकमुख्यै: प्रतिदिनमुषसि स्तौति यो भक्तिनम्रो,
वाणीं वाचस्पतेरप्यविदितविभवो वाक्पटुमृष्टकण्ठ:।
या स्यादिष्टार्थलाभै: सुतमिव सततं वर्धते सा च देवी,
सौभाग्यं तस्य लोके प्रभवति कविता विघ्नमस्तं प्रयाति ॥११॥
निर्विघ्नं तस्य विद्या प्रभवति सततं चाश्रुतग्रन्थबोध:,
कीर्तिस्त्रैलोक्यमध्ये निवसति वदने शारदा तस्य साक्षात्।
दीर्घायुर्लोकपूज्य: सकलगुणनिधि: सन्ततं राजमान्यो,
वाग्देव्या: सम्प्रसादात्त्रिजगति विजयी सत्सभासु प्रपूज्य: ॥१२॥

फलश्रुति

ब्रह्मचारी व्रती मौनी त्रयोदश्यां निरामिष:।
सारस्वतो जन: पाठात्सकृदिष्टार्थलाभवान् ॥१३॥
पक्षद्वये त्रयोदश्यामेकविंशतिसङ्ख्यया।
अविच्छिन्न: पठेद्धीमान् ध्यात्वा देवीं सरस्वतीम् ॥१४॥
सर्वपापविनिर्मुक्त: सुभगो लोकविश्रुत:।
वांछितं फलमाप्नोति लोके ऽस्मिन्नात्र संशय: ॥१५॥
ब्रह्मणेति स्वयं प्रोक्तं सरस्वत्या: स्तवं शुभम्।
प्रयत्नेन पठेन्नित्य सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१६॥

यह स्तोत्र अत्यन्त लाभप्रद है। बाल्यकाल से ही इसका पाठ बालकों द्वारा करवाने की परम्परा है। इसका नित्य पाठ करते रहने से बुद्धि तीव्र होती है, स्मृति-शक्ति बनी रहती है, प्रतिभा का विकास होता है तथा दोनों पखवाड़ों की त्रयोदशी को इसके २१ पाठ करने से वांछित फल की प्राप्ति होती है।

श्रीचामुण्डा[1] स्तोत्रम् (नवार्ण मन्त्र-गर्भित)

ऐं बीजं परमात्मनिःश्वसितभूवेदादिवर्णात्मकं,
ये भक्त्या मनसा जपन्ति परमं तेषां सुवाक्ज्ञानदाम्।
अम्बां मद्धृदयाम्बरस्थपरचिद्रूपामनन्तास्पदां,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थसंसिद्धये॥१॥
ह्रींकाराम्बररंगनर्तनकरीमोंकारलक्ष्यां परा-
मोंकारात्मकवर्णलक्ष्यविभवामाकारहीनां शिवाम्।
साकारां वरदाभयाङ्कुशमहापाशान् करैर्बिभ्रतीं,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थसंसिद्धये॥२॥
क्लींकाराख्यमहामर्णि रतिपतिः प्राप्यांगहीनः परं,
ग्रीवापादविहीनकोऽपि मदनो यस्याः प्रसादान्मुदा।
त्रीन् लोकान् कुसुमेषुभिर्विजितवान् तां वेदसारात्मिकां,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थसंसिद्धये॥३॥
चार्वङ्गीमतिसुन्दरीमभयदामम्भोजमध्यस्थितां,
चार्वङ्गीकृतगानवाद्यरसिकां शास्त्राद्यवाच्याकृतिम्।
चार्वाकादिसमस्तशास्त्रनिवहप्रोक्तादिशक्त्यात्मिकां,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थसंसिद्धये॥४॥
मुण्डाद्यैः सुरशत्रुभिः कृतमहाकष्टापदां नाशिनीं,
मुण्डप्रोतसुमाल्यशोभितगलां मुक्तिप्रदस्वाङ्घ्रिकाम्।
मूढैर्ज्ञानविहीनकैः पशुनिभैर्ज्ञातुं त्वशक्यां जनैः,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थसंसिद्धये॥५॥
डामर्यादिसमस्तभूतनिवहैः सेव्यां सदानन्ददां,
डाकिन्यादिसुयोगिनीपरिलसत् षट्चक्रसंचारिणीम्।

---

१. यहां 'चामुण्डा' पद का अर्थ इस प्रकार किया गया है—
चमू अज्ञानकार्यसेनां वियदादिसमूहरूपां डाति डलयोरैक्यात्।
लाति आदत्ते स्वात्मसाक्षात्कारेण नाशयति इति **चामुण्डा**॥
अर्थात् अज्ञान कर्मरूप तथा आकाशादि समूह रूप जो सेना है उसे अपने आत्मसाक्षात्कार के द्वारा नष्ट करने वाली।

डम्भोपेतजनैः कृताचंनविधौ सन्तुष्टिहीनान्तरां,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थसंसिद्धये ॥६॥
यैर्लोभाद् विहितोऽन्नदानरहितो यज्ञः सगर्वं जनै-
स्तेषामन्तकरूपिणीमरिभयानर्थप्रदात्री रुषा।
यैर्भक्त्या स्तुतिपूजनादि रचितं तेषामभीष्टार्थदां,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थसंसिद्धये ॥७॥
विद्वद्वृन्दकृतार्चनस्तुतिनुतिप्रीतां विधिप्रार्थितां,
विद्वद्वृन्दसुपूजनादिकरणे सन्तुष्टचित्तां सदा।
विद्यां वीरनुताम्बुजाङ्घ्रियुगलां वीरापवर्गप्रदां,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थसंसिद्धये ॥८॥
चेतोम्भोजविहारिणीं मम मनः प्रोद्भूतभीहारिणीं,
चेतोऽतीतपदस्थितां वरचिदानन्दाकृतिं शान्तिदाम्।
चेतोवृत्त्यनुसारिकर्मफलदां चिन्तामणिं श्रीकरीं,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थसंसिद्धये ॥९॥
श्रीशान्ताचलनायकाम्बुजपदासक्तस्वचित्तैः सदा,
श्रीशान्त्यादिगुणान्वितैर्वरचिदानन्दाख्यनाथात्मभिः ।
दत्तात्मामृतपानमत्तहृदयानन्तस्य वक्त्रोद्भवं,
शान्तिं शं शममातनोतु पठतां स्तोत्रं महानन्ददम् ॥१०॥

रुद्रयामलोक्त 'यक्षिणी-कल्प' के प्रयोग

(१) यक्षिणी-परिचय

यक्षों की गणना देव-योनि विशेष में की जाती है। इनकी जाति का प्रधान अधिपति 'कुबेर' है। कुबेर शिवजी के मित्र, इन्द्र की निधियों के भण्डारी, धन के अधिदेवता आदि अनेक रूपों में मान्य है। कुबेर की प्रजा में यक्ष और यक्षिणियां भी स्वतन्त्र सत्ता-सम्पन्न एवं साधकों की कामना-पूर्ति करने वाली हैं। यक्षिणी वस्तुतः तो कुबेर की पत्नी के रूप में प्रधान देवी है और भगवती दुर्गा के समान ही अनन्त शक्ति सम्पन्न मानी जाती है। कुबेर के सेवक यक्ष और उनकी महारानी की सेविकाएं अथवा परिवार देवियां यक्षिणियां भी देव-देवियों के समान उपास्य हैं। ये उपासित होकर साधकों की सभी कामनाएं पूर्ण करती हैं।

यक्षिणियां कितनी हैं ? यह कहना कठिन है; किन्तु रुद्रयामल के **'यक्षिणी-कल्प'** के अनुसार निम्नलिखित यक्षिणियों की साधना सर्वसुलभ मानी गई है—

१. विद्यायक्षिणी,	२. कुबेर यक्षिणी,
३. जनरंजिनी,	४. चन्द्रिका,
५. घण्टाकर्णी,	६. शङ्खिनी,
७. कालकर्णी,	८. विशाखा,
९. मदना,	१०. श्मशानी,
११. महामाया,	१२. भिक्षिणी,
१३. माहेन्द्री,	१४. विकला,
१५. कपालिनी,	१६. सुलोचना,
१७. पद्मिनी,	१८. कामेश्वरी,
१९. मानिनी,	२०. शतपत्रिका,
२१. मदन मेखला	२२. प्रमदा,
२३. विलासिनी,	२४. मनोहरा
२५. अनुरागिनी	२६. चन्द्रद्रवा,
२७. विभ्रमा,	२८. वटवासिनी,
२९. सुरसुन्दरी, और	३०. कनकावती।

इन यक्षिणियों के अतिरिक्त वनस्पति में निवास करने वाली यक्षिणियां भी अनेक हैं जिनकी साधना उन वनस्पतियों में ही की जाती है। उनमें प्रमुख हैं—

१. बिल्व-यक्षिणी,	२. निर्गुण्डी०,
३. अर्क०,	४. श्वेत गुंजा,
५. तुलसी०,	६. कुश०,
७. पिप्पल०,	८. आम्र०,
९. उदुम्बर०,	१०. अपामार्ग०,
११. धात्री०,	१२. सहदेवी०,
१३. पलाश०,	१४. बदरी०,
१५. स्नुही०,	१६. पुनर्नवा०,
१७. निम्निणी०,	१८. निम्ब०,
१९. कुमारी०	२०. शंखपुष्पी आदि।

इनके अतिरिक्त 'वन्दा' के पौधों की भी यक्षिणियां हैं। यह बन्दा एक प्रकार का पौधा होता है, जो किसी दूसरे पेड़ पर उगकर उसका रस पीते हुए बढ़ता है। ऐसे कतिपय चमत्कारी बन्दों के प्रयोग भी यक्ष-यक्षिणी के मन्त्रों से किए जाते हैं।[1]

२. प्रत्येक यक्षिणी के मन्त्रों का संग्रह

उपर्युक्त यक्षिणियों के नाम और मन्त्र इस प्रकार हैं—

१. **विद्यायक्षिणी**—ह्रीं वेदमातृभ्यः स्वाहा।

२. **कुबेर यक्षिणी**—ॐ कुबेर यक्षिण्यै धनधान्यस्वामिन्यै धन-धान्य समृद्धि मे देहि दापय स्वाहा।

३. **जनरञ्जिनी यक्षिणी**—ॐ क्लीं जनरंजिनि स्वाहा।

४. **चन्द्रिका यक्षिणी**—ॐ ह्रीं चन्द्रिके हंसः क्लीं स्वाहा।

५. **घण्टाकर्णी यक्षिणी**—ॐ पुरं क्षोभय भगवति गम्भीर स्वरे क्लैं स्वाहा।

६. **शङ्खिनी यक्षिणी**—ॐ शङ्खधारिणि शङ्खाभरणे ह्रां ह्रीं क्लीं क्लीं श्रीं स्वाहा।

७. **कालकर्णी यक्षिणी**—ॐ क्लौं कालकर्णिके ठः ठः स्वाहा।

८. **विशाला यक्षिणी**—ॐ ऐं विशाले ह्रां ह्रीं क्लीं स्वाहा।

९. **मदना यक्षिणी**—ॐ मदने मदने देवि मामालिगय संगं देहि देहि श्रीः स्वाहा।

१०. **श्मशानीं यक्षिणी**—ॐ हूं ह्रीं स्फूं श्मशानवासिनि श्मशाने स्वाहा।

११. **महामाया यक्षिणी**—ॐ ह्रीं महामाये हुं फट् स्वाहा।

१२. **भिक्षिणी यक्षिणी**—ॐ ऐं महानादे भिक्षिणि ह्रां ह्रीं स्वाहा।

१३. **माहेन्द्री यक्षिणी**—ॐ ऐं क्लीं ऐन्द्रि माहेन्द्रि कुलुकुलु चुलुचुलु हंसः स्वाहा।

१४. **विकला यक्षिणी**—ॐ विकले ऐं ह्रीं श्रीं क्लैं स्वाहा।

१५. **कपालिनी यक्षिणी**—ॐ ऐं कपालिनि ह्रां ह्रीं क्लीं क्लैं क्लौं हससकल ह्रीं फट् स्वाहा।

---

१. हमारे द्वारा लिखित 'तन्त्र-शक्ति' ग्रन्थ में 'वनस्पति-तन्त्र' प्रकरण में इनकी विधि दी गई है। वहीं देखें।

१६. **सुलोचना यक्षिणी**—ॐ क्लीं सुलोचने देवि स्वाहा।

१७. **पद्मिनी यक्षिणी**—ॐ ह्रीं आगच्छ पद्मिनि वल्लभे स्वाहा।

१८. **कामेश्वरी यक्षिणी**—ॐ ह्रीं आगच्छ कामेश्वरि स्वाहा।

१९. **मानिनी यक्षिणी**—ॐ ऐं मानिनि ह्रीं एहि एहि सुन्दरि हस हसमिह संगमिह स्वाहा।

२०. **शतपत्रिका यक्षिणी**—ॐ ह्रां शतपत्रिके ह्रां ह्रीं श्रीं स्वाहा।

२१. **मदन मेखला यक्षिणी**—ॐ क्रों मदनमेखले नमः स्वाहा।

२२. **प्रमदा यक्षिणी**—ॐ ह्रीं प्रमदे स्वाहा।

२३. **विलासिनी यक्षिणी**—ॐ विरूपाक्षविलासिनि आगच्छागच्छ ह्रीं प्रिया मे भव प्रिया मे भव क्लैं स्वाहा।

२४. **मनोहरा यक्षिणी**—ॐ ह्रीं आगच्छ मनोहरे स्वाहा।

२५. **अनुरागिणी यक्षिणी**—ॐ ह्रीं आगच्छानुरागिणि मैथुनप्रिये स्वाहा।

२६. **चन्द्रद्रवा यक्षिणी**—ॐ ह्रीं नमश्चन्द्रद्रवे कर्णाकर्णकारणे स्वाहा।

२७. **विभ्रमा यक्षिणी**—ॐ ह्रीं विभ्रमरूपे विभ्रमं कुरु कुरु एहि एहि भगवति स्वाहा।

२८. **वट यक्षिणी**—ॐ एहि एहि यक्षि यक्षि महायक्षि वटवृक्ष निवासिनि शीघ्रं मे सर्वं सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

२९. **सुरसुन्दरी यक्षिणी**—ॐ आगच्छ सुरसुन्दरि स्वाहा।

३०. **कनकावती यक्षिणी**—ॐ कनकावति मैथुनप्रिये स्वाहा।

वनस्पति-वासिनी यक्षिणियां

१. **बिल्व यक्षिणी**—ॐ क्लीं ह्रीं ऐं ॐ श्रीं महायक्षिण्यै सर्वैश्वर्यप्रदात्र्यै ॐ नमः श्रीं क्लीं ऐं आं स्वाहा। (ऐश्वर्य-प्राप्ति)

२. **निर्गुण्डी यक्षिणी**—ॐ ऐं सरस्वत्यै नमः। (विद्यालाभ)

३. **अर्क यक्षिणी**—ॐ ऐं महायक्षिण्यै सर्वकार्यसाधनं कुरु कुरु कुरु स्वाहा। (सर्वकार्य साधन)

४. **श्वेतगुञ्जा यक्षिणी**—ॐ जगन्मात्रे नमः। (सन्तुष्टि)

५. **तुलसी यक्षिणी**—ॐ क्लॉं क्लीं तुलस्यै नमः। (राज्यसुख)
६. **कुशयक्षिणी**—ॐ वाङ्मयायै नमः। (वाक्सिद्धि)
७. **पिप्पल यक्षिणी**—ॐ ऐं क्लीं मे धनं कुरु कुरु स्वाहा।
(धन लाभ)
८. **आम्र यक्षिणी**—ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रूं पुत्रं देहि देहि स्वाहा।
(पुत्रप्रद)
९. **उदुम्बर यक्षिणी**—ॐ ह्रीं श्रीं शारदायै नमः। (विद्याप्राप्ति)
१०. **अपामार्ग यक्षिणी**—ॐ ह्रीं भारत्यै नमः। (ज्ञानप्राप्ति)
११. **धात्रीयक्षिणी**—ऐं क्लीं नमः। (अशुभ निवारण)
१२. **सहदेवीयक्षिणी**—ॐ नमो भगवति सहदेवि सद्बलदायिनी सद्देववत् कुरु कुरु स्वाहा।

साधना-प्रकार—इसी प्रकार यक्षिणियों के भी मन्त्र भिन्न हैं। बन्दों के मन्त्र भी प्राप्त होते हैं। 'अष्टसिद्धि' और 'दत्तात्रेय-तन्त्र' में भी इस विषय को पल्लवित किया गया है। इन यक्षिणियों की साधना में काल की प्रधानता है और स्थान का भी महत्त्व है। जिस ऋतु में जिस वनस्पति का विकास हो वही ऋतु इनकी साधना में लेनी चाहिये। वसन्त ऋतु को सर्वोत्तम माना गया है। दूसरा पक्ष श्रावण मास (वर्षा ऋतु) का है। स्थान की दृष्टि से एकान्त अथवा सिद्धपीठ कामरूया आदि उत्तम कहे गये हैं। साधक को उक्त साध्य वनस्पति की छाया में निकट बैठकर उस यक्षिणी के दर्शन की उत्सुकता रखते हुए एक मास तक मन्त्रजप करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

साधना से पूर्व आषाढ़ की पूर्णिमा को क्षौरादि कर्म करके शुभ मुहूर्त में बिल्वपत्र के नीचे बैठकर शिव को षोडशोपचार पूजा करे तथा 'रुद्राभिषेक' पूर्वक त्र्यम्बक मन्त्र के ५ हजार जप करे और पूरे श्रावण मास में इसी तरह पूजा-जप के साथ प्रति दिन कुबेर की पूजा करके निम्नलिखित कुबेर मन्त्र का १०८ जप करे—

ॐ यक्षराज नमस्तुभ्यं शङ्कर प्रिय बान्धव।
एकां मे वशगां नित्यं यक्षिणीं कुरु ते नमः॥

इसके पश्चात् अभीष्ट यक्षिणी के मन्त्र का जप करे। ब्रह्मचर्य और हविष्यान्न भक्षण आदि नियमों का पालन आवश्यक है। प्रति दिन कुमारी-पूजन करे और जप के समय बलि नैवेद्य पास रखे। जब यक्षिणी

मांगे तब वह अर्पित करे। वर मांगने की कहने पर यथोचित वर मांगे। द्रव्य-प्राप्त होने पर उसे शुभ कार्य में ही खर्च करे।

यह विषय अति रहस्यमय है। सत्र की बलि सामग्री, जप संख्या, जप-माला आदि भिन्न-भिन्न हैं। अतः किसी योग्य साधक गुरु की देख-रेख में पूरी विधि जानकर साधना करें। क्योंकि यक्षिणी देवियां अनेक रूप में दर्शन देती हैं उससे भय भी होता है।

रुद्रयामल दर्शित रसकल्प और उसके प्रयोग

'रुद्रयामल' की विशेषताओं में एक विशेषता यह भी है कि इसमें रस से सम्बद्ध अनेक वस्तुओं के कल्पों का भी विस्तार से कथन हुआ है। वर्तमान 'केमेस्ट्री' के सन्दर्भ में प्राचीन शास्त्रों का कितना योगदान है? यह समझने के लिए हमें 'रुद्रयामल' के एक भाग **'रसकल्प'** का अवलोकन करना चाहिए। इसी प्रकार एक अन्य संग्रह ग्रन्थ हमें प्राप्त है जिसे रुद्रयामलान्तर्गत **'धातुमञ्जरी'** कहा गया है। इन दोनों ग्रन्थों का परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि—तन्त्रज्ञ विद्वान् तान्त्रिक कर्मों की सिद्धि के लिये—'आत्मरक्षा एवं उपयुक्त सामग्री-साधन भी अत्यावश्यक मानते हैं।

प्राचीन महर्षि सुदृढ़ शरीर, द्वन्द्व सहिष्णु, नीरोग, दीर्घायु एवं पूर्ण परिश्रमी होते थे। तभी वे दीर्घकालिक कठोर से कठोर तप—अनुष्ठान करने से पीछे नहीं हटते थे। योग-साधना से जिस प्रकार वे शारीरिक बल और आध्यात्मिक चिन्तन पर दृढ़ रहते थे, उसी प्रकार विभिन्न चिकित्साशास्त्रीय रसायनादि के सेवन से स्वस्थ और दीर्घ-जीवी बने रहते थे। उनकी आयु हजारों वर्षों की होती थी और वे सैकड़ों वर्ष एक स्थिति में रहकर क्षुधा-तृषा से मुक्त होकर साधना में लीन रहते थे। इसका मुख्य कारण रसायन-सेवन ही था।

(क) **रसकल्प संग्रह का परिचय**—प्रस्तुत 'रस-कल्प' में—"पारद—मारणविधि, महारस, रस, उपरसः ४ प्रकार का गन्धक, अनेक प्रकार की सौराष्ट्री-फिटकरी, ३ प्रकार के कासिस,—(पुष्प कासिस, हारकासिस सहित), दो प्रकार के गैरिक, सुवर्ण मारने के विड—(नौसादर चूलिक, लवण, गन्धक, चित्रार्द्रभस्म और गोमूत्र के योग से), ताम्रसत्त्व, रसक सत्त्व (जस्ता) आदि के प्रयोग दिखलाये हैं।

'धातु-मञ्जरी'-संग्रह का परिचय—रुद्रयामल के अन्तर्गत धातु सम्बन्धी विषयों का किसी आचार्य ने स्वतंत्र संकलन करके इसे ग्रन्थ-रूप दिया है। इतिहासज्ञ इसे यद्यपि १६वीं शती में संग्रहीत मानते हैं तथापि 'रुद्रयामलान्तर्गत' ऐसा स्पष्ट लिखा होने से इसकी विषय-विवेचना सम्बन्धी प्राचीनता तो सुरक्षित है ही, इसमें महादेव और पार्वती के संवाद के रूप में विषय का प्रतिपादन हुआ है, जिसमें वर्णित कुछ बातें इस प्रकार हैं—

१. **प्रधाना धातवः प्रोक्ता रङ्ग-लोहक-ताम्रकाः।**

रांगा, लोहा और तांबा ये प्रधान धातु कहे गये हैं।

२. **रजतेनैव संयुक्ता धातोरुत्तमता सदा ॥१२॥**

चांदी के साथ संयुक्त होने पर ही धातु की सदा उत्तमता होती है।

३. **मध्यमा सत्त्वजा धातुर्नीचा च त्रपुसीसयोः।**
त्रपुताम्रसंयोगेन जाता धातुश्च मध्यमा ॥१३॥

त्रपु और ताम्र के संयोग से बनने वाली सत्त्वजा धातु मध्यम है। त्रपु और सीसा के योग से बनने वाली धातु निकृष्ट है।

४. **शुल्व-खर्पर-संयोगे जायते पित्तलं शुभम् ॥६३॥**

शुल्व-तांबा और खर्पर—जस्ता के योग से पीतल बनता है।

५. **बङ्ग-ताम्र-संयोगेन जायते तेन कांस्यकम् ॥६५॥**

बंग और तांबे के संयोग से कांसा बनता है।

६. **खर्परैः सह पारदं दिव्यं किञ्चित् प्रमेलयेत्।**
जायते रसको नाम नाना रोगहरो-भवेत् ॥६८॥

जस्ता और पारे के संयोग से 'रसक' बनता है। (वैसे तो रसक और खर्पर दोनों एक ही पदार्थ के नाम हैं किन्तु यह रसक पारे के मेल से बना 'जिंक-एमलगम' उससे विशिष्ट है) यह रसक अनेक रोगों का नाशक है।

७. **नागस्तु रहतेर्हीनो मृतधातुस्तु जायते।**
स एव कोमलाग्निस्थः सिन्दूरं जायते ध्रुवम् ॥६९॥

नाग-सीसा कोमलाग्नि में गरम करने से सिन्दूर में परिणत हो जाता है।

इनके अतिरिक्त यहां सुवर्ण, चांदी, तांबा, जस्ता, रांगा-बंग, सीसा और लोहा—इन धातुओं के शास्त्रीय पर्याय भी दिये हैं।

दाह-जल-तेजाब और तांबे के योग से तूतिया—नीला थोथा बनता है। यह भी यहां वर्णित है। इसी सन्दर्भ में १०० भाग बंग में १ भाग पारद मिलाने से शुद्ध चांदी का निर्माण तथा सीसे और तांबे के संयोग से सोना बनाने का विधान भी इस प्रकार दिया है—

नागस्य सम्भवं ताम्रं मध्ये मेलापनं कृतम्।
विभागे तु कृते तत्र जायते कुम्पिका शुभा ॥६७॥
तन्मध्ये गालयेन्नागं त्रिवारं यत्नपूर्वकम्।
जायते निर्मलं स्वर्णंमुदितं चैव कुम्पिके ॥६८॥

धातुओं की प्राप्ति के स्थानों का उल्लेख भी इस ग्रन्थ की विशिष्टता है। धातुओं को शुद्ध करने की विधि, धातुओं को मृदु बनाना, मृदुता का लोप करना, स्नेह, क्षार, तैल, विष, एवं धातुओं के भेद—कालायस—काला लोहा, ताम्र, कांस्य, सीसा, त्रपु-रांगण, वैक्रान्तक—एक प्रकार का लोहा, आरकूट—पीतल आदि और उनके गुण-धर्मों का परिज्ञान 'धातु-मंजरी' के विषयों में समाविष्ट है।

यामल-तन्त्र के साधक विभिन्न तान्त्रिक उपासनाओं में अपने शरीर की शुद्धि और रोगादि से सुरक्षा हेतु आयुर्वेदीय-रसायन-प्रक्रियाओं से पूर्ण परिचित होते थे, तभी तो दीर्घकाल तक वे साधनाओं को स्वस्थता-पूर्वक सम्पन्न करते थे।

(ख) **'रसार्णव-कल्प' का परिचय**—ऐसे ही अन्य संग्रह **'रस-रत्नाकर'** (श्लो० सं० ५७८) **'रस-हृदय'** (१८ पटल ६७५ पत्रात्मक) तथा **'रसार्णव-कल्प'** के नाम से भी प्राप्त होते हैं। इनमें तान्त्रिक दृष्टि को अपनाते हुए विशेष रूप से **'वनस्पति-कल्प'**, **'औषधि-कल्प'** तथा **'उदक-कल्प'** पर विचार प्रस्तुत किये हैं। आज विज्ञानवेत्ताओं ने विभिन्न परीक्षणों से यह सुसिद्ध कर दिया है कि वृक्ष और उसके अवयव—१. मूल, २. शाखा, ३. पत्र, ४. पुष्प आर ५. फल मानव के लिए अनेक रूप से प्रयोग करने पर वे बहुत उपयोगी होते हैं। आयुर्वेद के प्रणेता महर्षियों ने इन वृक्ष-पंचांगों के माध्यम से ही चिकित्सा-पद्धति का विस्तार किया है जिसे अन्य चिकित्सा-पद्धतियों में साक्षात् ग्रहण

की अपेक्षा उनके सत्त्व, रस, गन्ध आदि की प्रक्रिया अपना कर विशेष विस्तार दिया है।

प्राचीन आचार्यों की यह निश्चित मान्यता थी कि वृक्ष दैवी-शक्ति सम्पन्न हैं और उनकी इस शक्ति को जागृत करने के लिए मन्त्रों के द्वारा उनका अभिमन्त्रण आवश्यक है। यही कारण है कि पवित्र भूमि में बीजों का शुभ मुहूर्त में मन्त्र-जपपूर्वक वपन, सेचन और उपयुक्त स्थिति में उनके किसी भी अंश का ग्रहण करने के लिए तन्त्र-पद्धति के साथ मन्त्र-विधान का आश्रय लेकर सब कार्य किये जाते थे। ऐसे विधान और मन्त्रादि आयुर्वेद के ऋषिप्रणीत ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं।

१. वनस्पति-कल्प

रुद्रयामल के रस-कल्प में 'वनस्पति-कल्प' के अन्तर्गत निम्न-लिखित वनस्पतियों के कल्प दिये हैं—

१. अपराजिता, २. ब्रह्मदण्डी, ३. अश्वगन्धा, ४. मुशली, ५. अस्थिश्रृंखला, ६. ज्योतिष्मती, ७. श्वेतार्क, ८. गन्धक, ९. तालक, १०. रक्तवज्री, ११. उच्चटा, १२. ईश्वरी, १३. तृणज्योति, १४. एक-वीरा, १५. देवदाली (पीत एवं अन्य), १६. कटुतुम्बी, १७. क्षीरकंचुकी, १८. रुदन्ती, १९. नागमण्डल, २९. सोमराजी, २१. ताम्रवन, २२. मयूरगिरि, २३. अंकोलवृक्ष, २४. शाल्मली, २५. बिल्व तथा २६. एरण्ड आदि।

औषधि-कल्प में निम्नलिखित औषधियों के कल्प दिये हैं—

१. लक्ष्मणा, २. करंज, ३. पुनर्नवा, ४. कृष्ण-हरिद्रा, ५. कटु-रोहिणी, ६. अंकोल, ७. काकजंघा, ८. करक, ९. निर्गुण्डी, १०. इन्द्रवारुणी, ११. भृंगराज, १२. त्रिफला, १३. मुण्डी, १४. चित्रक, १५. मण्डूक, १६. लांगली, १७. रक्तगुंजा, १८. मण्डूक-ब्राह्मी, १९. वन्दा, २०. वाचुकी, २१. निम्ब, २२. श्वेतार्क, २३. शुण्ठी, २४. पाठा, २५. भूकन्द तथा २६. शिवलिंगी आदि।

२. **'उदक-कल्प'** में नीचे बताये हुए कल्प निम्नलिखित हैं—

१. शैलोदक, २. विषोदक, ३. चन्द्रोदक, ४. कर्तरिजल, ५. घृतोदक, ६. कृष्णोदक, ७. भू-शैलोदक, ८. दुर्गन्धोदक, ९. खुरसा-जल, १०. उष्णोदक, ११. रक्तोदक, १२. कुष्ठोदक आदि।

आचार्य चरक, सुश्रुत और वाग्भट आदि ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि—देवार्चन एवं अभिमन्त्रण-पूर्वक औषध-सेवन से शीघ्र ही मानसिक और शारीरिक व्याधियां शान्त होती हैं। आयुर्वेद का ही वचन है—

जन्मान्तर-कृतं पापं व्याधि-रूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जप - होम - सुरार्चनैः ॥

पुराकाल में ऋषि-महर्षि दैवी-शक्तियों से सम्पन्न इन औषधियों से इतनी अधिक आत्मीयता रखते थे कि जीवन के बाह्य कार्य-कलापों के अतिरिक्त आन्तरिक उपासनाओं में भी निरन्तर सहायता प्राप्त करते थे। मन्त्र-साधना में मन्त्राक्षरों की औषधियों से स्नान, भस्म, तिलक, धूप और माला-निर्माण आदि करके मन्त्रसिद्धि करते थे। आज भी कतिपय साधक इनके उपयोग से असाध्यों को साध्य बनाने का सामर्थ्य रखते हैं। उदक-कल्प के प्रयोगों में सूर्य-किरणों का तेजस्तत्त्व प्राप्त करके **अभिमन्त्रण** होने से और भी अधिक लाभ होता है। वृक्षों की पूजा, परिक्रमा, कच्चे सूत से आवरण तथा उनकी छाया में बैठकर मन्त्रजप, भोजन आदि विधान हमारे लौकिक जीवन में बहुत ही गहराई से प्रयुक्त होते हैं, यह सभी जानते हैं। औषधियों का धारण भी महत्त्व रखता ही है। मूलिका जड़, पत्र-पुष्प के प्रयोग सभी रुद्रयामल के रसार्णव-कल्प में विस्तार से दर्शित हैं। इसीलिये हम प्रार्थना करते हैं—

मूले ब्रह्मा त्वचि विष्णुः, शाखासु च महेश्वरः।
पत्रे पत्रे देवनाथो, वृक्षराज! नमोऽस्तु ते॥ इत्यादि।

(ग) पञ्चामरा-योग

योग-सिद्धि प्राप्ति के लिये यौगिक देह बनाना अत्यावश्यक है। जैसे किसी उत्तमोत्तम मेहमान के आने अथवा बुलाने से पूर्व हम उनके योग्य आवास-निवास की पूरी समुचित व्यवस्था करते हैं, उसी प्रकार विभिन्न मलों से दूषित इस शरीर में सर्वातिशायी परमात्मा और उनकी महनीय शक्ति के निवास के लिये योग्य व्यवस्था करना अत्यावश्यक है। आन्तरिक-शुद्धि से पूर्व बाह्य-शुद्धि के लिए रुद्रयामल में **'पञ्चामरा-साधन'** का निर्देश दिया है। इसी में पांच अमर-वस्तु—

१. दूर्वा ग्रन्थियुक्त, २. विजया (भांग), ३. बिल्वपत्र, ४. निर्गुण्डी और ५. काली तुलसी—का प्रयोग होता है। विशेष यह है कि—इनमें विजया के पत्र दुगुने और अन्य चार समान भाग में लेकर उनका पृथक्-पृथक् चूर्ण बना लें तथा उनका मिश्रण करते समय नीचे बताये गये मन्त्रों का एक बार पाठ करें—

१. ॐ त्वं दूर्वेऽमरपूज्ये त्वममृत-समुद्भवे।
अमरं मां सदा भद्रे कुरुष्व नृहरिप्रिये॥

२. ॐ संविदे ब्रह्मसम्भूते ब्रह्मपुत्रि सदाऽनघे।
भैरवाणां च तृप्त्यर्थे पवित्रा भव सर्वदा॥

३. ॐ काव्यसिद्धिकरी-देवी-बिल्वपत्रनिवासिनि।
अमरत्वं सदा देहि शिवतुल्यं कुरुष्व माम्॥

४. ॐ निर्गुण्डि परमानन्दे योगानामधिदेवते।
रक्ष माममरे देवि भावसिद्धिप्रदे नमः॥

५. ॐ विष्णोः प्रिये महामाये महाकालनिवारिणि।
मां सदा रक्ष तुलसि मामेकममरं कुरु॥

फिर सबको मिलाकर—

"ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतमाकर्षयाकर्षय सिद्धि देहि स्वाहा।"

इस मन्त्र से धेनुमुद्रा, योनिमुद्रा तथा मत्स्यमुद्रा दिखाते हुए प्रणाम करें। यही सात बार बिना मन्त्र के गुरुस्मरण पूर्वक तथा सात बार इष्टमन्त्र बोलते हुए प्रत्येक के साथ 'तर्पयामि नमो नमः' जोड़कर तर्पण करने का भी विधान है। इसके पश्चात्—

"ॐ ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्व वशङ्करि शत्रुकण्ठ त्रिशूलिनि स्वाहा"

इस मन्त्र से चूर्ण का भक्षण करें। इन पांचों वस्तुओं में क्रमशः—गणपति, सरस्वती, शिव, योगिनी तथा विष्णु का निवास होने से ये देवता साधक पर प्रसन्न होकर उसे सिद्धि प्रदान करते हैं। योग-साधकों के लिये १. नेती, २. दन्ती, ३. धौती, ४. नेउली और ५. क्षालिनी के लिये

जो जहां उपदेश किया गया है, वह भी 'पंचामरा-योग' के नाम से निर्दिष्ट है।

इस योग से कुण्डलिनी-जागरण में भी सहयोग प्राप्त होता है।

पञ्च-तिक्त-प्रयोग

रुद्रयामल के जप-सम्बन्धी निर्देशों में यह भी कहा गया है कि—"जो व्यक्ति जप के समय मुख में 'पंच-तिक्त' वस्तुओं—जिनमें '१. इलायची, २. जायफल, ३. कपूर, ४. लौंग तथा ५. जावित्री' हैं, को रखकर देवी-मन्त्रों का जप करता है और भगवती को जप समर्पित करता है उसको मैं समस्त पृथिवी दे देता हूं। अर्थात् उसके लिये कोई वस्तु अदेय नहीं रहती। ऐसे ही अन्यान्य देवताओं के जप में भी कुछ विशिष्ट वस्तुओं के मुख में रखने का निर्देश है। कौल-मार्गियों के लिये ये पंचतिक्त ही 'कौल' हैं क्योंकि ये कुल-वृक्षों से उत्पन्न हैं।'[1]

---

१. यथा—

(क) पंचतिक्तं मुखे क्षिप्त्वा जपं कृत्वा समर्पयेत्।
तस्याहं सकलां पृथ्वीं ददामि पुरुषोत्तम॥
कौलं च पंच तिक्तं स्यात् कौलं कुलसमुद्भवम्।
तस्माद् देयं प्रयत्नेन देव्याश्चोद्भवमिच्छता॥
एला जातीफलं चैव कर्पूरं च लवंगकम्।
जातिपत्रं तथा देवि! पंचतिक्तमिदं प्रियम्॥

(ख) पूजा पद्धतियों में 'ताम्बूलादि-सुरभितवदनः' ऐसा भी कहा गया है। अतः सुगन्धित ताम्बूल भक्षण करके भी देवी-पूजा की जाती है।

एक बात और

'परिचय' और 'प्रयोग' विभागों में वर्णित विषयों के अध्ययन से यह पूर्णतया ज्ञात हो जाता है कि **'रुद्रयामल'** वस्तुतः तन्त्रशास्त्र का विश्वकोश है। इससे जिन-जिन विषयों को हमने सर्वसाधारण पाठकों के लिये उपयोगी एवं करने योग्य प्रयोगों को समझा, उनका यथामति संकलन किया है। प्रयोग-प्रक्रिया की गहनता में हम इसलिए नहीं गये हैं कि वह एक अत्यन्त गम्भीर विषय है, उसकी सूक्ष्मता लेखन मात्र से स्पष्ट नहीं हो सकती। आन्तरिक चक्रों के सूक्ष्मतम अंकनों को बिना चित्रों के कैसे समझाया जा सकता और उनके भिन्न-भिन्न स्थानों पर विराजमान देव, देवियाँ, परिवार देव-देवियां, लोकपाल, क्षेत्रपाल आदि के पूजाविधानों और उनके अन्तर्विधानों में पिरोये हुए मन्त्रों और बीजमन्त्रों की गूड व्यवस्था को प्रत्यक्ष कराने के लिए प्रायोगिक निदर्शन भी उतने ही आवश्यक थे जैसा कि इस उदाहरण से ज्ञात हो सकेगा—

"कण्ठस्थान में विराजित षोडशदल कमल में महामोहनाशिनी भगवती शाकिनी देवी का स्थान है। इस स्थान का जागरण होने पर योगार्थ ज्ञान होता है जिसे रुद्रयामल में 'कण्ठसंचार' कहा गया है। यह कण्ठसंचार क्रिया अन्य विभिन्न क्रियाओं से ओत-प्रोत है। भगवान् रुद्र ने इसके लिए पूछा है कि—मुझे कण्ठसंचार और उससे सम्बद्ध क्रियाओं का ज्ञान दो। तब, उस प्रसंग से 'राक्षसी क्रिया, रिपुविद्वेषी, मंगलोदय, विनयाह्लाद, कालसाधन, नवीनता, ध्यान कुलपीठसाधन, कुण्डली-साधन, साधककुल, वर्णध्यान, दलभेद, स्फूर्तिविद्यावियोग, पूर्वज्ञान-समोदय, समरसप्राप्ति, काय-कल्प, कामदेव मन्थन, देहव्यवस्थिति तथा भावज्ञान" आदि की ज्ञान-प्राप्ति के भी प्रश्न उपस्थित किये हैं और दयामयी माता ने अत्यन्त विस्तार से इन्हें समझाया है। यथा—

कण्ठ में षोडशदल है, उसके मध्य में कर्णिकामण्डल है, उसके बाहर एक चतुरस्र और अन्दर कर्णिका में एक षट्कोण है। पुनः बाहर चार द्वारों से शोभित एक नौखण्डी गृह है जो भूबिम्बषट्क से स्थित है। वहीं ऊपर चांदनी छाई हुई है ओर वहां मधुपुरी है जो कि कर्णिका में

है, उसके मध्य में आठ पुरियों का प्रकाश है जो कि कौलक्रिया साधन की सिद्धि के लिये है। (देखें पटल ६४ तथा पद्य-१६ से २६) यहां पूर्वादि दिशाओं में प्रेमकलाधिनाथ आठ देव विराजित हैं जो अपने-अपने गृहों की रक्षा करते हुए कण्ठगत षोडशदल कमल को प्रकाशित करते हैं। इस कमल के मध्य में मनोन्मनीनाथ सर्वोत्तम मणिजटित मन्दिर है और उस मन्दिर के सभी दिक्कोणों में वामा-ज्येष्ठा आदि शक्तियां स्थित हैं जिनके स्वरूप और मन्त्रों का स्मरण कर अर्चन किया जाता है। चूंकि ये शक्तियां योगिमातारूप हैं और योगिमुख्यों से समन्वित हैं अतः उनका भी स्मरण होता है। मध्य में मनोन्मनी का पूजन किया जाता है। इनकी पूजा-सामग्री मनः कल्पित होती है, कुछ द्रव्य साक्षात् कल्पित भी होते हैं। यह क्रिया करने पर साकिनी देवी के दर्शन प्राप्त होते हैं।" आदि।

यह एक क्रिया का निदर्शन है। उपर्युक्त प्रश्नों के अनुसार सभी क्रियाएं कैसे सम्पन्न की जाती हैं इसका वर्णन भी वहां दिया है।

इस विवरण से रुद्रयामलीय साधना-विषयों की गम्भीरता आंकी जा सकती है। इसीलिये हमने सार-संग्रह को ही इस ग्रन्थ में प्राथमिकता दी है और उससे सम्बद्ध प्रक्रियाओं को यहां स्पष्ट और सरल रूप में संकलित किया है।

फिर भी कुछ साधक त्वरित फल प्राप्ति के लिए साधना के दुष्कर मार्ग का अवलम्बन न कर सरल से सरलतम मार्ग अपनाना चाहते हैं। ऐसे साधकों के लिए यहां कुछ संक्षिप्त स्तोत्र एवं प्रयोग-विधान संक्षिप्त व सरल ढंग से प्रस्तुत किए जा रहे हैं। जो साधक शीघ्र फलकामी हों और साधना की गहनता में न पड़ना चाहते हों, उनके लिए इन पृष्ठों में ऐसी सामग्री देने का प्रयास किया जा रहा है, जिनके नित्य प्रति पाठ मात्र से भी मनोरथ पूर्ति सम्भव है। ये स्तोत्रादि **'रुद्रयामल'** तन्त्र से ही यहां दिए जा रहे हैं।

१. मणिपूर विभेदकं रुद्रस्तोत्रम्

प्रत्येक साधना के मार्ग में 'योगसिद्धि' सर्वातिशायी उपकरण है। इससे साधना मार्ग की सफलता निश्चित होती है और मानव के लिए यह साधनां हितावह होती है। प्रस्तुत स्तोत्र मणिपूर चक्र के भेदन में सहायक है। योग शास्त्रों के अनुसार शरीर में छह चक्रों में विभिन्न तत्त्वों का स्थायी निवास होता है। इन षट्चक्रों में से 'मणिपूर चक्र' में अन्य तत्त्वों के साथ-साथ अमृत तत्त्व की भी स्थिति मानी जाती है। इस चक्र

के अधिपति देव **'लाकिनीश मृत्युञ्जय'** हैं। उनकी कृपा होने पर चक्र-भेदन एवं अमृत प्राप्ति सहज सम्भाव्य है। अतः इसका पाठ करने से मनुष्य देवत्व को प्राप्त होता है। रुद्रयामल के ४७वें पटल में २३७-३८ संख्यक श्लोकों में इसकी फलश्रुति इस प्रकार बताई गई है—

एतत्स्तोत्रं पठित्वा, स्तौति यः परमेश्वरम्।
याति रुद्रकुलस्थानं, मणिपूरं विभिद्यते॥
एतत्स्तोत्र प्रपाठेन, तुष्टो भवति शंकरः।
खेचरत्वपदं नित्यं, ददाति परमेश्वरः॥

'इस स्तोत्र के पाठ द्वारा जो व्यक्ति परमेश्वर की स्तुति करता है, वह मणिपूर का भेदन कर रुद्रकुल को प्राप्त होता है। इस स्तोत्र के पाठ मात्र से शंकर जी प्रसन्न होते हैं और साधक को देवत्व प्रदान करते हैं।'

स्तोत्र का मूल पाठ निम्नलिखित है। इसमें पाप-निवारण व अमृत-प्राप्ति के लिए ३१ नामों का संकलन किया गया है—

ॐ नमः परमकल्याण नमस्ते विश्वभावन।
नमस्ते पार्वतीनाथ उमाकान्त नमोऽस्तु ते॥१॥
विश्वात्मनेऽविचिन्त्याय गुणाय निर्गुणाय च।
धर्माय ज्ञानमक्षाय नमस्ते सर्वयोगिने॥२॥
नमस्ते कालरूपाय त्रैलोक्यरक्षणाय च।
गोलोकघातकायैव चण्डेशाय नमोऽस्तु ते॥३॥
सद्योजाताय देवाय नमस्ते शूलधारिणे।
कालान्ताय च कान्ताय चैतन्याय नमो नमः॥४॥
कुलात्मकाय कौलाय चन्द्रशेखर ते नमः।
उमानाथ नमस्तुभ्यं योगीन्द्राय नमो नमः॥५॥
शर्वाय सर्वपूज्याय ध्यानस्थाय गुणात्मने।
पार्वतीप्राणनाथाय नमस्ते परमात्मने॥६॥

२. रुद्रमृत्युञ्जय स्तोत्रम्

प्रस्तुत स्तोत्र भगवती आनन्दभैरवी ने आनन्दभैरव के आग्रह पर प्रकट किया था। रोगमुक्त होकर साधना के असिमार्ग पर चलने में इसका नित्य पाठ एक सबल सम्बल है।

स्तोत्र पाठः—

ॐ भजामि शम्भुं सुखमोक्षहेतुं रुद्रं महाशक्तिसमाकुलाङ्गम् ।
रौद्रात्मकं चारु हिमांशुशेखरं कालं गणेशं सुमुखाय शंकरम् ॥१॥
मृत्युञ्जययं जीवनरक्षकं परं शिवं परब्रह्मशरीरमंगलम् ।
हिमांशु कोटिच्छविमादधानं भजामि पद्मद्वयमध्यसंस्थितम् ॥२॥
सर्वात्मकं कामविनाशमूलं तं चन्द्रचूडं मणिपूरवासिनम् ।
चतुर्भुजं ज्ञानसमुद्रचाढ्यं पाशं मृगाक्षं गुणसूत्रव्याप्तम् ॥३॥
धरामयं तेजसमिन्दुकोटिं वायुं जलेशं गगनात्मकं परम् ।
भजामि रुद्रं कुललाकिनीगतं सर्वांगयोगं जयदं सुरेश्वरम् ॥४॥
शुक्रं महाभीमनयं पुराणं प्राणात्मकं व्याधिविनाशमूलम् ।
यज्ञात्मकं कामनिवारणं गुरुं भजामि विश्वेश्वरशंकरं शिवम् ॥५॥
वेदागमानामतिमूलदेशं तदुद्भवं भद्रहितं परापरम् ।
कालान्तकं ब्रह्मसनातनप्रियं भजामि शम्भुं गगनाधिरूढ़म् ॥६॥
शिवागमं शब्दमयं विभाकरं भास्वत्प्रचण्डानलविग्रहं ग्रहम् ।
ग्रहस्थितं ज्ञानकरं करालं भजामि शम्भुं प्रकृतीश्वरं हरम् ॥७॥
छायाकरं योगकरं सुखेन्द्रं मत्तं महामत्तकुलोत्सवाढ्यम् ।
योगेश्वरं योगकलानिधिर्विधि विधानवक्तारमहं भजामि ॥८॥
हेमाचलालंकृतशुद्धवेशं वराभयादाननिदानमूलम् ।
भजामि कान्तं वनमालशोभितं चामूलपद्मामलमालिनं कुलम् ॥९॥
स्वयं पुराणं पुरुषेश्वरं गुरुं मिथ्यामयाह्लादविभाविनं भजे ।
भावप्रियं प्रेमकलाधरं शिवं गिरीश्वरं चारुपदारविन्दम् ॥१०॥
ध्यानप्रियं ज्ञानगभीरयोगं भाग्यास्पदं भाग्यसमं सुलक्षणम् ।
शूलायुधं शूलविभूषितांगं श्रीशंकरं मोक्षफलप्रियं भजे ॥११॥
नमो नमो रुद्रगणेभ्य एवं मृत्युञ्जयेभ्यः कुलचञ्चलेभ्यः ।
शक्तिप्रियेभ्यो विजयादिभूतये शिवाय धन्याय नमो नमस्ते ॥१२॥
बाह्यं त्रिशूलं वरसूक्ष्मभावं विशालनेत्रं तनुमध्यगामिनम् ।
महाविपद्दुःखविनाशबीजं प्रज्ञादयाकान्तिकरं भजामि ॥१३॥
पुरान्तकं पूर्णशरीरिणं गुरुं स्मरारिमाद्यं निजतर्कमार्गगम् ।
अनादिदेवं दिविदोषघातिनं भजामि पञ्चाक्षरपुण्यसाधनम् ॥१४॥
दिगम्बरं पद्ममुखं करस्थं स्थितिक्रियायोगनियोजनं भवम् ।
भावात्मकं भद्रशरीरिणं शिवं भजामि पञ्चाननमर्कवर्णम् ॥१५॥

मायामयं पंकजदामकोमलं दिग्व्यापिनं दण्डधरं हरेश्वरम् ।
त्रिपक्षकं त्र्यक्षरबीजभावं त्रिपद्ममूलं त्रिगुणं भजामि ॥१६॥
विद्याधरं वेदविधानकार्यं कायागतं नीतिनिनादतोषम् ।
नित्यं चतुर्वर्गफलादिमूलं वेदादिसूत्रं प्रणमामि योगम् ॥१७॥
वेदान्तवेद्यं कुलशास्त्रविज्ञं क्रियामयं योगसुधर्मदानम् ।
भक्तेश्वरं भक्तिपरायणं वरं भक्तं महाबुद्धिकरं भजाम्यहम् ॥१८॥
गतागतं गम्यमगम्यभावं समुल्लसत्कोटिकलावतंसम् ।
भावात्मकं भावमयं सुखासुखं भजामि भर्गं प्रथमारुणप्रभम् ॥१९॥
बिन्दुस्वरूपं परिवादवादिनं मध्याह्न सूर्यायुतं सन्निभं नवम् ।
विभूतिदानं निजदानदानं दानात्मकं तं प्रणमामि देवम् ॥२०॥
कुम्भापहं शत्रुनिकुम्भघातिनं दैत्यारिमीशं कुलकामिनीशम् ।
प्रीत्यान्वितं चिन्त्यमचिन्त्यभावं प्रभाकराह्लादमहं भजामि ॥२१॥
त्रिमूर्तिमूलाय जयाय शम्भवे हिताय लोकस्य वपुर्धराय ।
नमो भयाच्छिन्नविघातिने पते नमो नमो विश्वशरीरधारिणे ॥२२॥
तपः फलाय प्रकृतिग्रहाय गुणात्मने सिद्धिकराय योगिने ।
नमः प्रसिद्धाय दयातुराय, वाञ्छाफलोत्साह विवर्धनायते ॥२३॥

शिवममरमहान्तं पूर्णयोगाश्रयन्तं
धरणिधरकराब्जैर्वर्धमानं त्रिसर्गम् ।
विषममरणघातं मृत्युपूज्यं जनेशं
विधिगणपतिसेव्यं पूजये भावयामि ॥२४॥

इस स्तोत्र का नित्य प्रति पाठ करने से साधना के मध्य में रोगादि विकार नहीं सताते हैं। इसमें शिव की स्तुति सुख एवं मोक्ष के लिए की गई है। नमनात्मक स्तुतिपरक यह स्तवन सद्यःफलद है। यदि मणिपूर में हो कुम्भक करके इसका पाठ किया जाए तो साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।

३. रुद्रयामलोक्तं महामृत्युञ्जयस्तोत्रम्—

प्रस्तुत स्तोत्र २५ श्लोकों का है। यह भैरव व देवी के संवाद रूप में बताया गया है। इसके नित्य प्रति पाठ से वैभव, रोगनाश, शत्रु-विजय, मुकदमे या विवाद में जीत, पदप्राप्ति आदि उत्कृष्ट फल मिलते हैं। यह एक तान्त्रिक स्तोत्र है। मन्त्र-यन्त्रविधानगर्भित इस स्तोत्र का पाठ विनियोग, न्यास, ध्यान व मानसी पूजा के पश्चात् करना चाहिए।

प्रथम पांच श्लोकों में स्तोत्र कथन की भूमिका बताई गई है। पश्चात् स्तोत्र के छन्द, ऋषि, देवता व ध्यान के तीन पद्य हैं। यह विवरण कुल १० श्लोकों में बताया गया है। शेष १५ श्लोकों में मूल पाठ व फलश्रुति है। इस स्तोत्र के भैरव ऋषि, गायत्र छन्द, महामृत्युञ्जयदेवता, प्रणव बीज, शक्ति शक्ति हैं। विनियोगादि यहां बताए जा रहे हैं।

विनियोगः—अस्य श्री महामृत्युंजय स्तोत्रमंत्रराजस्य भैरव-ऋषिः गायत्रछन्दः महामृत्युंजयो देवता प्रणवो बीजं शक्तिः शक्तिः हृज्ञं कीलकं सूर्यो दिग्बन्धनं श्रीमहामृत्युंजयप्रीतिपूर्वकं भोगापवर्ग सिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।

न्यासविधिः—भैरव ऋषये नमः शिरसि, गायत्र छन्दसे नमः मुखे, महामृत्युंजयो देवतायै नमः हृदये, प्रणव बीजाय नमः गुह्ये, शक्ति शक्तये नमः पादयोः, हृज्ञ कीलकाय नमः नाभौ, विनियोगाय नमः सर्वांगे।

पश्चात् 'ॐ जूं सः' इन बीज मन्त्रों से करन्यास व षडंगन्यास कर निम्नलिखित ध्यान करें।

ध्यानम् :—

चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तः स्थितं,
मुद्रापाशसुधाक्षसूत्रविलसत्पाणी हिमांशुप्रभम्।
कोटी चन्द्रगलत् सुधाद्भुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं,
भ्रान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावये ॥१॥
पीयूषांशुसुधामणिः करतले पीयूषकुम्भं वहन्,
पीयूषद्युतिसम्पुटान्तरगतः पीयूषधाराधरः।
मां पोयूषमयूखसुन्दरवपुः पीयूषलक्ष्मीसखा,
पीयूषद्रववर्षणस्त्वहरहः प्रीणातु मृत्युञ्जयः ॥२॥
देव दिनेशाग्नि शशांकं नेत्रं, पीयूषपात्रं कलशं दधानम्।
दोर्भ्यां सुधांशुद्युतिमिन्दुचूडं, नमामिमृत्युञ्जयमादिदेवम् ॥३॥

ध्यान करने के पश्चात् मानसोपचार पूजा अथवा संक्षिप्त पूजा करके वक्ष्यमाण स्तोत्र का पाठ करना चाहिए।

मूल पाठः—

चन्द्रमण्डलमध्यस्थं रुद्रं भालेऽतिविस्तृते।
तत्रस्थं चिन्तयेत् साध्यं मृत्युं प्राप्तोऽपि जीवति ॥१॥
मात्राद्यं मातृकामौलिं वेदकल्पतरोः फलम्।
यो जपेत् स भवेद् विश्ववैभवास्पदमीश्वरि ॥२॥
कूर्चं बीजं कुलाचारविचारकुशलः शिवः।
यो जपेत्तस्य वक्त्राब्जे नरीर्नति हि भारती ॥३॥
देवे शाकाशबीजान्ते बिन्दु बिम्बेन्दुमण्डितम्।
चिन्तयेद् यो विभो चित्ते स शिवाद्वयतां लभेत् ॥४॥
हस्‌विसर्गं भृगुं भर्गं सर्वप्रलयकारणम्।
निसर्गतो भजेद् योऽन्तर्लीयते स परे पदे ॥५॥
लक्ष्मीशब्दाक्षरं बिन्दुभूषणं यो जपेत्तव।
करे लक्ष्मीर्मुखे वाणी तस्य शम्भो रणे जय ॥६॥
पालयेति युगं देव! यो जपेद् बीजसन्निधौ।
स सार्वभौमं साम्राज्यं भजेदन्ते स लोकताम् ॥७॥
शरवं वरदां वीर माधवीं सविसर्गकाम्।
जपेद् यः शरदम्भोधधवलं तद् वशी भ्रमेत् ॥८॥
आकाशबीजं साकाशं जपेद् यः कुशसंस्तरे।
सकौलिक शिरो रत्नरञ्जितांघ्रि युगो भवेत् ॥९॥
शंकाबीजं सरेफस्कं शम्भो पद्मासने जपेत्।
कंकालमालाभरणे भविता भैरवोपमः ॥१०॥
हृज्ज्ञबीजं जगद्‌बीजं तेजोरूपं च यो जपेत्।
तस्मै दास्यामि भो शम्भो! निजं धाम सनातनम् ॥११॥
अकारं साकारं गिरीश! तव मन्त्राञ्चलगतं,
जपेद्यो हृत्पद्मे निरुपमपरानन्द मुदितः।
स साम्राज्यं भूमौ भजति रजनीनायककला-
लसन्मौलिप्रान्ते व्रजति शिवसायुज्यपदवीम् ॥१२॥
बिन्दुभूषणत्रिकोणसार - स्वारणस्फुरदजारत्रिवृत्ते।
भूगृहाद्यमिति चक्रमण्डले त्वां निषण्णमुषसि स्मराम्यहम् ॥१३॥
नानाविधानर्घ्य विभूषणाढ्यं, निःशेषपीयूषमयूखबिम्बे।
निषण्णमीशानम शेष शेष,वाणीनुतं मृत्युहरं नमामि ॥१४॥

इति स्तोत्रं दिव्यं सकलमनु राजैकनिकषं,
पठेद् यः पूजान्ते शिव ! शिवगृहे वार्चनविधौ ।
रणे जित्वा वैरान् भजति नृपलक्ष्मीं स्वमहसा,
भवेदन्ते वीरः सकलसुरसेव्यः शिवमयः ॥१५॥

४. सिद्धकुञ्जिका स्तोत्रम्—

रुद्रयामल में इस स्तोत्र की बड़ी प्रशंसा की गई है। सप्तशती का पाठ इसके बिना पूर्ण नहीं माना जाता। स्वतन्त्र रूप से इसका पाठ करने से मारण, मोहन, वशीकरण, स्तम्भन, उच्चाटन आदि सभी सम्भव हैं। नित्य प्रति पाठ करने से असाध्य साधन होता है। इस स्तोत्र को भगवान् शिव ने बनाया है। चण्डी (सप्तशती) पाठ के अंगरूप में व स्वतन्त्र विधि से इसका पाठ करने से सद्यः फल मिलता है। इसके विषय में कहा गया है कि इसका एक स्वतन्त्र पाठ चण्डी के सम्पूर्ण पाठ का फल देने में समर्थ है।

'कुञ्जिकापाठ मात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत्।'

इसका सम्पूर्ण पाठ बताया जा रहा है।

महामाया का ध्यान करके श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करना चाहिए। प्रथम चार श्लोकों में शिव-गौरी के संवाद रूप में इसका माहात्म्य बताया गया है।

स्तोत्र पाठः—

शिव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि कुञ्जिका स्तोत्रमुत्तमम् ।
येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेत् ॥१॥
न कवचं नार्गला स्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् ।
न सूक्तं नापि ध्यानं च न न्यासो न च वार्चनम् ॥२॥
कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् ।
अति गुह्यतरं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वती ! ।
मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ॥
पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ॥४॥

॥ अथ मन्त्रः ॥

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥ ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा ।

॥ इतिमन्त्रः ॥

नमस्ते रुद्र रूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि ।
नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषमर्दिनि ॥
नमस्ते शुम्भ हन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ।
जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे ॥
ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ॥
क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तु ते ।
चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ॥
विच्चे चाभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणि ॥५॥
धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नी वां वीं वूं वागधीश्वरी ।
क्रां क्रीं क्रूं कालिकादेवी शां शीं शूं मे शुभं कुरु ॥६॥
हुं हुं हुंकाररूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनी ।
भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे भवान्यै ते नमो नमः ॥७॥
अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं
धिजाग्रं धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा ॥
पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा ॥८॥
सां सीं सूं सप्तशती देव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे ॥
इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्ति हेतवे ।
अभक्ते नैव दातव्यं गोपितं रक्ष पार्वति ॥
यस्तु कुञ्जिकया देवि ! हीनां सप्तशतीं पठेत् ।
न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ॥

श्लोकों का क्रम व तत्संख्या इसी प्रकार से कही गई है। स्तोत्र में नमस्कारात्मक पद्धति से भगवती के राक्षस संहारी रूप की स्तुति है। पश्चात् बीजाक्षरों में सृष्टि-स्थिति-कामात्मक त्रितयत्व का स्वरूप मानकर सर्वत्र नमस्कारात्मक प्रयोग किया है। पश्चात् अक्षरात्मक एवं विभिन्न बीजमन्त्रात्मक प्रयोग हैं और अन्त में इसे मन्त्र जागरण का हेतु बताते हुए अभक्त य अश्रद्धालु को न देने का निर्देश है।

५. बटुक भैरव तन्त्र साधना

भैरव को रुद्र रूप माना जाता है। ये सद्यः सिद्धिप्रद हैं। जहां अन्य देवता दीर्घकाल की साधना के बाद ही कदाचित प्रसन्न होते हैं, भैरव तुरन्त फल देते हैं। शिवागम सार में बटुक भैरव नाथ के विषय में ऐसा ही कहा गया है—

अन्ये देवास्तु कालेन प्रसन्ना सम्भवन्ति हि।
बटुकः सेवितः सद्यः प्रसीदति ध्रुवं शिवे॥

पीछे भैरवोपासना के सन्दर्भ में पृ० १३१ पर श्री बटुक भैरव नाथ जी का मूलमन्त्र 'ॐ ह्रीं बटुकाय आपदुद्धारणं कुरु कुरु बटुकाय ह्रीं ॐ' बताया गया है। वहीं पर जप विधि भी लिखी गई है। उसी प्रकार इस मन्त्र का जप विधिपूर्वक करने से 'दिनभेद से' फलभेद भी रुद्रयामल में बताया गया है। इस मन्त्र का कामनाभेद से जप करने पर षटकर्म सिद्धि होती है। ये प्रयोग एक दिन में ही सम्पन्न हो जाते हैं।

एकदिवसीयप्रयोगाः—मूल मन्त्र का १०००० जप **रविवार** को प्रातःकाल श्मशान में जाकर करें। उसी दिन अर्धरात्रि में जायफल, जावित्री व कनेर पुष्प मिश्रित घी से १००० आहुतियां देने से शत्रु का स्तम्भन या कामना भेद से क्रिया स्तम्भन होता है।

दोपहर के समय कुएँ के जल से स्नान कर **सोमवार** के दिन गूणी में बैठकर मूलमन्त्र का पूर्वोक्त जप करें। पश्चात् भैंस के घी में दही चीनी मिलाकर दशांश हवन कर भस्म से तिलक करें। जो भी देखेगा वही वशीभूत हो जाएगा।

मंगलवार को अर्धरात्रि में चौराहे पर १०,००० जप करके घी, खीर, लाल चन्दन व औरत के बाल मिलाकर १००० आहुतियां देने से परम भयंकर शत्रु भी नाश को प्राप्त हो जाएगा।

बुधवार को सूर्यास्त से डेढ़ घंटा पहले से ही किसी शून्य आगार में मूल मन्त्र का उक्त संख्यक जप कर घी, खांड, कनेर पुष्प व बेल फल मिलाकर दशांश हवन करने से आकर्षण होता है।

गुरुवार को सूर्योदय के समय नदी किनारे जप करके घी, आंवला व बेल से दशांश हवन करने से वशीकरण होता है।

शुक्रवार को सायंकाल वटवृक्ष के नीचे जप कर घी, दूध, दही,

गन्ने का रस, गो मूत्र व खीर मिलाकर दशांश हवन करने से शत्रु का उच्चाटन होता है।

इन सभी विधानों में जप संख्या १०,००० व हवन संख्या १००० है। स्थान भेद व हवनीय सामग्री में भेद है। रुद्रयामल में इन्हें एकदिवसीय षट्कर्मप्रयोग कहा गया है। बटुक भैरव नाथ की विस्तृत साधना व सिद्धि हमारी 'श्री बटुक भैरव साधना' पुस्तक में देखें। किसी भी साधना में विनियोग, न्यास, ध्यानादि करने से व जपान्त में स्तवन करके अपराध क्षमापन से सहायता मिलती है। जप के समय माला प्रार्थना भी करनी चाहिए। साधक को सदैव शुद्ध मन से एवं भावना शुद्ध रखते हुए आत्म कल्याण या विश्व कल्याण की इच्छा से साधना में लगना चाहिए। दुर्भावना एवं तामसी वृत्ति से की गई साधना आत्मघातक हो सकती है। साधना के मध्य व पहले परान्न भक्षण, दान लेना, मांस स्पर्श आदि से दूर रहकर आहार सत्त्व व मन की शुद्धि रखनी चाहिए।

जिह्वा दग्धा परान्नेन हस्तौ दग्धौ परिग्रहात्।
परस्त्रीभिर्मनोदग्धं मन्त्रसिद्धिः कथं भवेत्॥

किसी भी क्रिया अथवा प्रयोग को करने में प्रत्येक साधक को यह नहीं भूलना चाहिए कि—'हम जिस भवन में प्रवेश कर रहे हैं उसकी पात्रता प्राप्त करके क्रमशः एक-एक सोपान पर चढ़ते हुए अन्तिम शिखर तक पहुंचने का प्रयास करें। उड़कर अथवा छलांग लगाकर पहुंचने का प्रयास सफल नहीं होता।'

शान्त्यै श्रिये सात्त्विक-साधनायै,
लोकोपकाराय च नित्यमेव।
यः साधनायां स्व-मनो नियुङ्क्ते,
प्राप्नोति सोऽत्र स्वतपःफलानि॥

लेखक परिचय एवं शुभाशंसा

'नौसालपुर-थण्या'स्थाः शेखावाटी-समीपगाः ।
पूर्वजा यस्य दुष्काल-प्रभावान्मेड़तां श्रिताः ॥१॥
ततो 'नन्दावता'ग्रामे मालवेषु समागताः ।
पण्डिता 'राम'नामनो ज्योतिःशास्त्र-विचक्षणाः ॥२॥
मानो-खुशाल-लालाजी-चौखा-दौराजि-संज्ञकाः ।
तत्पुत्राः क्रमशस्तत्र लेभिरे जनिमुत्तमाम् ॥३॥
पण्डितस्तेषु दौराजीरवाप तनयत्रयीम् ।
धनराजस्तेषु वैदुष्यात् प्रतापगढ़-भूपतेः ॥
सम्मानं प्राप्य तत्रैव चकार वसतिं निजाम् ।
राजस्थानस्य तद्राज्ये 'प्रतापगढ़'नामके ॥४-५॥
पुत्रस्तद् भगवानजीतिविबुधो ज्योतिर्विदामग्रणी-
रासीद् गुर्जरगौड-विप्रतिलको राज्ञा सुसम्मानितः ।
तस्याभूदथ 'नाथुलाल' इति सन्नामा सुतः पण्डितो,
विद्वन्मण्डन-मण्डनो गणकराड् भक्तः शिवाराधकः ॥६॥
'कृष्णलाल-रमाकान्त' नामनौ सत्सुतौ शुभौ ।
अभूतां शास्त्रनिष्णातौ ज्योतिर्विद्या-विचक्षणौ ॥७॥
साहित्यादि-सुशास्त्रवित् कविवरः पञ्चाङ्गकर्ता पटुः
पुत्रैः पञ्चभिरञ्जितो भुवि रमाकान्ताभिधोऽभूत् तयोः ।
तत्पुत्रः प्रथमः कविर्विनयवान् श्रीरुद्रदेवाभिधो,
नानाग्रन्थविधान-वर्धितयशा दैवीं गिरं सेवते ॥८॥
सीताऽम्बा यस्य तातो गणक-गणवरः श्रीरमाकान्तशर्मा,
विप्रः शाण्डिल्यगोत्रो 'दशपुर-भूविजः देववाग्भक्तिनिष्ठः ।
दाक्षायण्याः पदाब्जश्रितवरशरणो 'रुद्रदेवस्त्रिपाठी',
रुद्र-प्रोक्तं प्रशस्तं रुचिरमरचयद् यामलं साररूपम् ॥९॥
इदं हि मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र- योग-साधनान्वित,
'समग्र-शास्त्र-विश्वकोश'-शंसनाऽभिशंसितम् ।
विलिख्य रुद्रदेव आपर्यंत् स्वराष्ट्रभाषया,
सुसंकलमभिडते च तद् विभातु 'रुद्रयामलम्' ॥१०॥
कृष्णानन्दाप्तविद्येन रमाकान्ताप्तजन्मना ।
प्रणीतं रुद्रदेवेन भासतां 'रुद्रयामलम् ॥११॥